भगवती प्रसाद वाजपेयी

झरोखे की रानी

झरोखे की रानी

प्रकाशक

नवयुग प्रकाशन
बँगलो रोड, दिल्ली

मूल्य : पाँच पचास पैसे

मुद्रक

शोभा प्रिंटर्ज़
ईस्ट पार्क रोड, नई दिल्ली-5

JAROKHAY KI RANI Novel Bhagwati Pd. Vajpai.

एक

झरना मेरी दूसरी पत्नी है। मैंने इसे जिन्दगी की तरह चाहा है, खिली कली-सा प्यार किया है, आँखों से लगाया है।

किन्तु इधर दो मास से कुछ ऐसा अनुभव कर रहा हूँ, कि अब वह मुझे नहीं चाहती। क्यों नहीं चाहती, जब इसकी तह तक पहुँचता हूँ, तो कुछ हाथ नहीं लगता। यों इस बीच ऐसी कोई घटना भी नहीं घटी, जो मेरे इस संदेह को पुष्ट कर सके। किन्तु अब इसमें लेशमात्र भी गुंजाइश नहीं कि वह मुझे नहीं चाहती, हाँ नहीं चाहती।

पहली पत्नी की मृत्यु के पश्चात् मैंने यह निश्चय किया था कि दूसरी बार मंडप में नहीं बैठूंगा। किसी के पीले सुकुमार हाथों को अपने हाथों में नहीं लूंगा। इसलिये नहीं कि पहली पत्नी को मैं बेहद प्यार करता था। वरन् इसलिए कि कुछ ऐसी ही भावनाएं मेरे मन में, चने के अंखुओं की भाँति अँखुवा आयी थीं, जिन्हें मैं कुम्हलाते हुए नहीं देख सकता था।

सच पूछो तो पहली पत्नी की मृत्यु का मेरी इन भावनाओं के साथ कोई संबंध नहीं है। उसकी मृत्यु एक रहस्यात्मक ढंग से ई थी। पर जितने मुँह, उतनी बातें। किसी का कहना था कि सास की ताड़नाओं से ऊब कर, उस बेचारी ने विषपान कर लिया था और किसी ने कहा था सास ने ही उसे विष दे दिया था।' किन्तु मेरी माँ कितनी सरल और साधु प्रकृति की थीं, मुझसे अधिक इस सम्बन्ध में किसी को क्या बोध हो सकता है ?

एक दिन की घटना मुझे आज भी स्मरण है। माँ ने उस दिन मुझे भोजन देकर डांटते हुए कह दिया था—'तुझे बहु को मारने का क्या अधिकार है ? ब्याह कर मैं लायी हूं, तू नहीं। मैं न होती, तो तू कहाँ से होता ?'

आज भी जब कभी उनकी उस क्षुब्ध मुखाकृति का स्मरण आता है, तो मेरा यह दुर्बल गात पीपल के पत्ते-सा प्रकंपित हो उठता है।

मुझे उस समय ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मैं किसी सिंहिनी के सम्मुख जा पड़ा हुँ। मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं क्रोधाग्नि में जलती हुई जवाकुसुम-सी निकली हुइ उन आँखों को, क्षण भर भी देख सकूँ।

तभी गरजते हुए माँ ने कह दिया था—'कान खोलकर सुनले, आज मैं तुझे क्षमा किये दे रही हूं, किन्तु स्मरण रखना, भविष्य में यदि तूने कभी बहू के ऊपर हाथ उठाया, तो मुझसा बुरा कोई न होगा। यह घर तेरा नहीं मेरा है। इसके पश्चात् तर्जनी उठाकर उन्होंने कहा था—'कान पकड़कर घर से निकाल दूंगी। तूने समझ क्या रखा है।'

और तब चुपचाप एक अपराधी की भाँति मैं कक्ष से खिसक आया था।

आप सोच सकते हैं, जो सास-बहू को इस सीमा तक प्यार दे सकती है, वह उसे विष कैसे दे देगी ?

किसी व्यक्ति के प्रति हमारी भावनाएँ सदैव स्थिर नहीं रहतीं, यह मैं स्वीकार करता हूँ। उनमें विपर्यय होता रहता है यह नैसर्गिक भी है। संभव है, माँ के विचारों में भी कालान्तर में कोई परिवर्तन आया हो और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने सचमुच उसे विष दे दिया हो !

किन्तु जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं इस बात को कभी स्वीकार नहीं कर सकता कि माँ ने ही मेरी प्रथम पत्नी को विष देकर मार डाला था। उसकी मृत्यु के तीन मास पश्चात् ही माँ का भी देहावसान हो गया था। उस समय पड़ोसियों ने कहा था—'हाय बहू के शोक में वह बेचारी भी चल बसी !'

प्रथम पत्नी की मृत्यु को मैंने रहस्यात्मक केवल इसलिये कहा था कि अभी तक उसकी मृत्यु के कारणों को कोई नहीं जानता। लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि मैंने स्वयं उसे विष दिया था, क्योंकि वह मेरे मनोनुकूल न थी। उसका रूप इतना आकर्षक न था, कि मैं उसके प्यार में खो जाता सब कुछ भूल जाता !

किसी सीमा तक इस कथन में सचाई है, मैं स्वीकार करता हूँ कि मेरी प्रथम पत्नी में न तो कहीं हार्दिक सौन्दर्य था और न विशेष बाह्य सौन्दर्य ही। सच्ची बात तो यह है कि उसकी मुस्कान में एक अजीब कुटिलता थी। जबकि नारी की मधुर मुस्कान उसके रूप का एक विशिष्ट अंग होती है! उसके गुलाबी अधरों पर जब एक मन्द मुस्कान फूटती है, तो पुरुष के अन्तराल को कटार की भाँति वेधती चली जाती है और वह उफ़ तक नहीं करता! भले ही कालान्तर में वह मन्द मुस्कान तृष्णा की एक टीस बनकर, मानस-निकुंज में अंकुरित हो कर उसकी जीवन-संगिनी बन जाय।

हाँ, तो जब वह हँसती थी, उसके अधरों की चीरन ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे अपनी वास्तविक स्थिति से काफी हद तक आगे बढ़ गयी है। कुछ ऐसा आभास होता था, जैसे उसके मुख में ऐसी एला-स्टिक लगी हो, कि जितना ही उसका विस्तार किया जाय, उतनी ही उसकी वृद्धि होती जाय।

हँसते समय प्रायः उसके सभी दाँत निकल आते थे, जिन्हें देखते ही मन में उबकाई-सी आने लगती थी। बचपन में सहेलियों की देखा-देखी शायद उसने मिस्सी का प्रयोग किया था, इस कारण दाँतों की संधि में काली-काली कीट जम गयी थी। मैंने कई बार उसे साफ़ करने के लिये कहा, किन्तु उसके पास रटा-रटाया एक ही उत्तर होता था—'क्या करूँ ये तो ऐसे ही रहते हैं—साफ़ ही नहीं होते।

पान खाने का भी उसे बेहद शौक था। बकरी की भाँति वह सदैव चपर-चपर पान चबाया करती थी। पान की पीक उसके मुख के दोनों छोरों पर शनैः-शनैः जमा होते-होते अपना एक स्थान बना लेतीं, जिसे देखकर मुझे एक घिनौनापन महसूस होता था।

मैंने सोचा, हो सकता है, पान के अत्यधिक सेवन से उसके दाँतों के बीच कालिख बनी रहती हो। किन्तु नित्य प्रति वह घंटे आध घंटे दातून करती थी, फिर भी मुझे ऐसा लगता, जैसे वे साफ़ नहीं किये गये हैं।

कालान्तर में मैंने यह सोचकर संतोष कर लिया कि उसकी स्वच्छता में कोई कसर नहीं है, उसके दांतो का रंग ही मटमैला है।

जहाँ तक उसकी शक्ल का प्रश्न है, वह नैपाल की तराई में बसने वाली थारुनी जाति की नारी सी लगती थी। मोटी मुखाकृति,

गोल नासिका, छोटी-छोटी आँखें। पाँव बड़े, जिनकी उँगुलियों की मोटाई में अजीव भद्दापन। हथेलियों में तो मुलायमियत थी ही नहीं। उनमें इतना खुरदुरापन वना रहता था। कि स्पर्श करते समय प्रतीत होता, जैसे हाथ किसी वेवाई फटे पाँव पर जा पड़े हैं!

किन्तु इतना सब कुछ होते हुए भी उसमें एक विशेष गुण भी था। वह प्रातः पाँच वजे विस्तर से उठ जाती थी और रात के ग्यारह वजे तक गृह कार्य में जुटी रहती थी। थकान जैसे उसे प्रतीत ही नहीं होती थी। घर का सारा कार्य-भार उसी के ऊपर रहता था।

भोजनोपरान्त नित्यप्रति वह माँ के हाथ-पाँव, घंटे-आध घंटे, अवश्य दवाती थी। वह अपने इस धर्म का पालन ठीक उसी तरह करती थी, जैसे कोई प्रतिदिन संध्या को नियमित रूप से गायित्री मंत्र का जाप करता हो।

तो वस, यही कारण था कि मेरी माँ उसे अत्यन्त प्यार करती थीं।

किन्तु, जहाँ तक मेरा प्रश्न है, स्पष्ट कह दूँ—मैं उसे लेशमात्र भी नहीं चाहता था। प्रायः यही सोचा करता था कि वह कौन-सी घड़ी आयेगी, जव यह मुझसे सदैव के लिये दूर हो जायगी। उसके प्रति मेरे मन में इस सीमा तक अरुचि हो गयी थी कि उसका मुख देखने की वात तो दूर रही, मैं यह भी नहीं चाहता था कि वह कभी भूल से मेरे सम्मुख आये।

इसी कारण मैं चौके में भोजन करने नहीं जाता था। परसी हुई थाली माँ से मँगवा लेता और अपने कमरे में ही वैठकर भोजन कर लेता था। माँ मेरी आन्तरिक पीड़ा को समझ नहीं पा रही थीं। तभी उन्होंने एक दिन मुझे डाँट वतायी और कहा—"तेरा यह व्यवहार मुझे पसंद नहीं है। वहू अपने मन में न जाने क्या सोचती होगी?"

किन्तु यह तो मन की वात ठहरी। पति और पत्नी की रुचियों में जव साम्य न हो, तो दाम्पत्य जीवन मे एक ऐसी सड़ाँध आने लगती है, जो शनैः-शनैः वजवजाने लगती है। अन्त में एक दिन ऐसा भी आ जाता है कि हम उससे दूर भागने का प्रयास करते हैं। किंतु कुछ ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो उवर जाने के भय से भाग भी नहीं सकते और एक लक्कड़ की भाँति मन्द-मन्द सुलगते रहते हैं, वे एक

अवांछित भार को कन्धे पर लादे तेली के बैल की भाँति जीते हैं।

हाँ, तो उत्तर में माँ से मैंने स्पष्ट कह दिया था कि इस संबंध में मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। तभी उन्होंने एक दिन एकान्त में बुला कर मुझसे कहा—"अच्छा, यदि तुझे यह पसंद नहीं है, तो तू अपने मन का दूसरा व्याह कर ले, साथ में यह भी एक कोने में पड़ी रहेगी।"

किन्तु इस सम्बन्ध में मैं उनसे क्या कहता ! एक पत्नी के होत हुए, दूसरा व्याह करना, एक भयानक संकट को आमंत्रित करना था ! क्योंकि अनेक उपन्यासों और कहानियों में सौतों की कहानियाँ मैंने पढ़ी थीं और उसके परिणाम को भी अपने गाँव में देखा था। जब दोनों पत्निया एक दूसरे का झोटा पकड़कर लड़ती थीं, बच्चे रोते-चीखते थे, और पड़ोस के लोग इधर-उधर झाँकते थे।

ऐसी स्थिति में, घी में पड़ी हुई मक्खी को देखकर मैं कैसे निगल सकता था। उस अनागत सुख के प्रलोभन में मैं नहीं चाहता था कि कभी कोई ऐसा दिन आये, जब मुझे स्वयं अपने जीवन से विरक्ति हो जाय।

आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि व्याह होने के दो-चार मास के भीतर उस पत्नी के साथ तीन-चार वर्ष की अवधि में मैंने मुश्किल से चार-छः रातें वितायी होंगी, उसके पश्चात्, जैसा कि मैंने आपसे कहा, उसकी शक्ल से मुझे घृणा हो गयी। मैं नहीं चाहता था कि फटे बांस की-सी उसकी आवाज़ कभी मेरे कानों में पड़े।

इतना सब होने पर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने उसकी हत्या नहीं की। हाँ, इतना मैं अवश्य कहूँगा कि उसकी मृत्यु एक रहस्यात्मक ढंग से हुई थी। उसे विष अवश्य दिया गया था।

जिस समय उसकी मृत्यु हुई थी, मैं भीतर से थर-थर काँप रहा था। मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ ? उसके अधरों पर विष की जो कालिमा उभर आयी थी, वही संकेत दे रही थी कि उसे विष देकर मार डाला गया है।

मैंने शीघ्र ही अपने एक मित्र को सूचना दी, जो एक बालिका-विद्यालय के मंत्री थे। उन्होंने मुझसे इस दुर्घटना के सम्बन्ध में प्रश्न भी किया कि यह घटना घटी कैसे ? उन्हें विश्वास हो गया था कि

मैंने ही उसे विष दिया है। इस सम्बन्ध में मैंने उनसे इतना ही कहा था कि ये सब बातें इस समय करने की नहीं हैं—इस समय तो इसका जल्दी से जल्दी दाह-संस्कार हो जाना चाहिये।

और जिस क्षरण मैं ये शब्द कह रहा था, मेरी घिग्घी बँध गयी थी, हो सकता है इसी से मेरे मित्र के संदेह को पुष्टि मिल गयी हो।

किसी व्यक्ति की मृत्यु पर नगरों में देहात की अपेक्षा प्रायः भीड़ कम होती है। क्योंकि सभी अपने वैयक्तिक स्वार्थों में लिप्त रहते हैं। किसे इतना अवकाश है जो दूसरे के सुख-दुख में हाथ बटायें। देहात की बात दूसरी है। वहाँ किसी दुर्घटना के घटते ही सैंकड़ों व्यक्तियों की भीड़ हो जाती है। नगरों में तो एक ही भवन में रहने वाले दो किरायेदार एक दूसरे को आजीवन नहीं जान पाते।

किन्तु भीड़ का न जमा होना, मेरे हित में था। फिर भी दस-बारह व्यक्ति दो-चार स्त्रियां, माँ की चीख-पुकार सुनते ही उस समय पहुँच गये थे। अर्थी सजायी जा रही थी। इतने में मैं क्या देखता हूँ कि कुछ स्त्रियाँ आपस में फुसफुसा रही हैं। रह-रहकर वे मेरी ओर भयातुर नेत्रों से देख रही हैं। मुझे ऐसा आभास हुआ कि जैसे वे आपस में कह रही हैं इसे जहर देकर मार डाला गया। यह कितना नीच है, पापी! देखो न, चेहरे पर कहीं शिकन भी नहीं आयी। दूसरा व्यक्ति होता, तो पत्नी की मृत्यु पर आँसुओं में डूब जाता।

यह सत्य है कि उस समय मेरी आँखों में आँसुओं की झलमलाहट न थी। हालांकि मेरे हृदय की धड़कने बढ़ गयी थीं। और मुद्रा पर एक अपराधी की भावना उभर आयी थी। यद्यपि मैं अपराधी नहीं था।

उस समय मुझमें इतनी भी सामर्थ्य न थी कि उस फुसफुसाहट के आघात का सामना कर सकता। तभी मैंने अपने मित्र प्रकाश से, जो अर्थी सजा रहा था, एकान्त में बुलाकर अवरुद्ध कंठ से कह दिया —"जल्दी यहाँ से ले चलो।"

उस समय इतना कहते-कहते निश्चित रूप से मेरी आँखों में आँसू उतर आये थे। और अब मैं सगर्व एक विजेता की भाँति उन स्त्रियों की ओर देख रहा था, जो पहले फुसफुसा रही थीं।

आज मैं सोचता हूं कि इन आँसुओं में भी कितनी शक्ति निहित होता है। सच पूछो तो मैं उस समय इन्हीं की वैसाखी के अवलंब

पर खड़ा था। तभी प्रकाश ने कह दिया था—"तुम घबराते क्यों हो ?"

अपने को सँभालते हुए तत्काल मैंने उत्तर में कह दिया था—"नहीं, घबराने की बात नहीं। वास्तव में यह दृश्य मुझसे नहीं देखा जाता।"

किन्तु प्रकाश दूसरा वाक्य बिना सुने ही अर्थी की ओर बढ़ गया था।

जिस समय अर्थी उठायी जा रही थी, उसी क्षण मेरे ससुर और साले साहब भी आ पहुँचे। दोनों की आँखों में आँसू भरे थे। ससुर साहब तो पुत्री के वियोग में सहसा चीख पड़े। किन्तु मेरी स्थिति अत्यन्त भयावह हो उठी थी। मैं सोच रहा था, कहीं ये लोग यह न कह दें कि 'अर्थी रख दो, अन्तिम समय एक बार बेटी का मुँह तो देख लूँ।'

इस कल्पना से मेरा सम्पूर्ण शरीर एक बार प्रकंपित हो उठा। उस समय मैंने निश्चय किया कि आगे बढ़कर प्रकाश से कह दूँ कि अब अर्थी उतारना नहीं, सीधे गंगाघाट चले चलो। मैं आज भी जानता हूँ, प्रकाश जैसा साहसी व्यक्तित्व कम ही देखने को मिलेगा। वह अपनी बात के आगे किसी दूसरे की नहीं सुनता था।

इसका कारण भी था। नगर के प्रायः जितने अफ़सरान थे—चाहे वह जिलाधीश हो या पुलिस अधीक्षक, या और अन्य कोई, उसका सबसे आत्मीयता का व्यवहार था। उसके साथ उठना-बैठना तथा खाना-पीना भी चलता था। बल्कि आप से गोपनीय क्यों रखूँ इसके आगे भी जो कुछ होता है, कुछ के साथ मेरा ऐसा कुछ सम्बन्ध भी था।

किन्तु मेरे ससुर तथा साले साहब रुँआसी मुखाकृति लिये चुप-चाप अर्थी का अनुसरण करते, रामनाम सत्य है, कहते चले जा रहे थे। इसलिये प्रकाश के समीप पहुँच कर भी मैं अपनी बात उससे न कह सका।

जिस समय अर्थी लेकर हम गंगाघाट पहूँचे, चिता की संपूर्ण

व्यवस्था हो चुकी थी। प्रकाश पहले ही पहुँच गया था। मैंने उस समय राहत की एक साँस ली। क्योंकि अब वे फुसफुसाने वाले चेहरे वहाँ न थे। सोचा, अधिक से अधिक पड़ोस में यही चर्चा होगी, न कि मैंने अपनी पत्नी को विष देकर मार डाला। इससे अधिक और क्या होगा! पुलिस अधिकारियों का उस समय, जो सबसे बड़ा भय था, अब समाप्त हो चुका था।

पर जिस समय हम दाह-संस्कार करके लौट रहे थे, पुलिस के चार-पाँच सिपाही वहाँ आ धमके तो मेरे होश उड़ गये। किन्तु अब मैं उतना भयभीत नहीं था। मन में एक दृढ़ता आ गयी थी। क्योंकि मैंने सोच लिया था कि ये लोग मेरा कर ही क्या सकते हैं। शव तो जलकर भस्म हो चुका है। अब उन्हें प्रमाण ही कैसे उपलब्ध हो सकता है कि मैंने उसे विष दिया है।

इतने में एक सिपाही ने मेरे निकट आकर कहा—"आपने मृत्यु की सूचना पुलिस अधिकारियों को नहीं दी। आप पर हत्या का संदेह है। दरोग़ा साहब ने आपको बुलाया है।"

सहसा मेरे मस्तिष्क में विद्युत कौंध गयी। मैं सोचने लगा कि दाह संस्कार के बाद आखिर यह सूचना पुलिस अधिकारियों तक कैसे पहुँची, जबकि किसी ने उसका चेहरा तक नहीं देखा था। किन्तु शीघ्र ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि यह हरामजदगी मेरे ससुर के सिवा और किसी की नहीं है। जो चौदह वर्ष की आयु में भी अपनी पुत्री के सो जाने पर, उसे जगा कर गोद में लेकर खाना खिलाता रहा है।

जिस समय, मैं शव को चिता में रखने जा रहा था—मेरे ससुर ने उसका मुख उघार कर एक बार देखा भी था। उस समय उनकी मुखाकृति पर आश्चर्य की रेखाएं खिंच आयीं थीं। किंतु वे कुछ बोले नहीं। वहाँ से थोड़ी दूर जाकर मैंने देखा, अपने लड़के से वे कुछ कह रहे थे। इस बीच मैंने शव को उठा कर चिता पर रख दिया और तत्पश्चात् अग्नि दे दी थी।

उस समय मेरी मानसिक स्थिति ठीक न थी

महापात्र ने मुझे टोक कर एक दो बार कहा भी था—इस प्रकार दाह-संस्कार नहीं किया जाता, जैसा आप कर रहे हैं। इसके

पश्चात् ही उसने मेरी मुखाकृति को ध्यान से देख कर कह दिया था —"क्या बात है बाबू जी ?' 'आप बहुत घबराये हुए-से दिखायी दे रहे हैं।"

किन्तु बात को सँभालते हुए उत्तर में मैंने कह दिया था—"आप घबराने की बात कह रहे हैं। जिस पत्नी को गोद में रख कर मैंने प्यार किया, जिसके अधरों को अपने होठों से बार-बार चूमा है, जिसके केशों को उँगलियों से सहलाया है, जिसके फूल से शरीर को दुलराया है—आज उसी को अपने हाथों से जला रहा हूँ, वरना दाह संस्कार करना मेरी सार्मथ्य की बात नहीं है।"

महापात्र मेरी बातें सुनकर चुप हो गया।

पुलीस के सिपाहियों से मेरी वार्ता चल रही थी कि इसी बीच वहाँ प्रकाश आ पहुंचा। उसने आते ही कह दिया—"क्या बात है जी ?"

प्रकाश के आ जाने पर मुझे कुछ राहत मिली। जिस क्षण उसने पुलिस के सिपाहियों से यह बात कही थी, उसकी मुखाकृति की त्वचा खिंच आयी थी, आँखों में आतंक छा गया था।

प्राय: ऐसे अवसरों पर मैंने देखा है कि प्रकाश में लेश मात्र भी भय नहीं रहता। वह कुछ इस भाँति बोलता है, जैसे स्वयं अधिकारी है, अथवा जिससे वार्ता कर रहा है—पद-मर्यादा में उसके बिल्कुल समकक्ष हो।

उसके चेहरे का रंग गिरगिट की भाँति बदलता रहता था। क्षण भर पूर्व वह अत्यन्त विनम्र, कोमल तथा भावुक दिखायी देता; किन्तु दूसरे ही क्षण उतना ही निर्मम एवं बौद्धिक बन जाता था।

पुलीस के सिपाही ने मेरी ओर संकेत करते हुए प्रकाश से कहा "इन्हें दारोग़ा साहब ने बुलाया है।"

प्रकाश ने मेरे चेहरे को देखा, जो भय उसके कथनानुसार स्याह पड़ गया था और जिस पर हवाइयाँ उड़ रही थीं और कहा—"चलो, मैं चलता हूँ।" इस कथन के पश्चात् उसने मुझे संकेत करते हुए कहा—"आओ जी।"

प्रकाश निर्भीक होकर आगे-आगे चल रहा था। उसके पीछे पुलीस के सिपाही और उनके बीच में अपराधी की भाँति मैं।

ज्यों-ज्यों पुलीस चौकी समीप आती जा रही थी, मेरा धैर्य

खोता जा रहा था। किन्तु इसके वावजूद मैं यह सोच लेता था कि मुझे अधिक-से-अधिक साल दो साल की सज़ा हो जायगी और क्या होगा ? मैं निरन्तर अपने को धैर्य से बाँध रहा था, किन्तु भय उसकी गाँठे खोल देता था।

जिस समय हम लोग पुलीस चौकी पहुँचे, मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा मेरे ससुर और साले दोनों वहाँ पहले से ही विद्यमान थे। उन्हें देखते ही मैं आक्रोश में आ गया। उस समय भय क़तई निकल गया था। मैंने उन दोनों को देखकर मन-ही-मन कहा "कमीने कहीं के !"

अब मेरे मन में एक दृढ़ता आ गयी और मैंने सोचा, वेखता हूं साले क्या करते हैं। मैं कह दूँगा, हार्ट फ़ेल हो गया था।

सोचने को इतना सोच तो गया, किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने अपने को क़ानून की गिरफ्त में पाया। वैद्यानिक रूप से मुझे पुलीस अधिकारियों को मृत्यु की सूचना देनी चाहिए थी।

इसी समय क्या देखता हूँ कि दारोग़ा साहब कुर्सी से उठकर खड़े हो गये और प्रकाश की ओर लपक कर हाथ बढ़ाते हुए बोले—"हलो प्रकाश !"

दारोगा के चेहरे पर एक असीम प्रसन्नता छा गयी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे दो विछुड़े हुए वियोगी वर्षों वाद मिल रहे हों।

—"तुम यहाँ कब आये ?" प्रकाश ने हाथ मिलाते हुए कहा।

"दो-तीन महीने हो गये" !"

"दो-तीन महीने !" आश्चर्य भरे स्वर में प्रकाश ने कहा—"किन्तु तुमने कोई सूचना भी नहीं दी। अजीव आदमी हो !"

मेरी मनः स्थिति में क्षण भर पूर्व जो एक तनाव आ गया था। वह इस क्षण प्रायः समाप्त हो गया और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि अब गाड़ी दलदल से बाहर हो गयी।

दारोगा नयी उमर का था। रेख उभर आयी थी ! मेरा अनुमान है प्रकाश से शायद वह दो-एक वर्ष छोटा रहा होगा। किन्तु दोनों का इस प्रकार मिलन देखकर मुझे ऐसा आभास हो रहा था, कि ये कभी 'क्लास फेलो' रहे होंगे।

तभी दारोगा ने प्रकाश का हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—"आओ वैठो।"

इस कथन के वाद मेरे ससुर और साले की ओर संकेत करते हुए दारोगाने कह दिया—"अच्छा, जरा आप लोग वाहर वैठिए, अभी दस मिनिट वाद आपको वुलाता हूँ।"

जव वे दोनों वाहर चले गए, तो दारोगा ने मेरी ओर संकेत करते हुए सिपाहियों से पूछा—"इन्हीं का केस है?"

एक सिपाही ने वढ़कर कह दिया "जी हाँ।"

"अच्छा, इन्हें भी वाहर वैठाओ, अभी देखता हूं।"

तभी मैं क्या सुनता हूँ कि प्रकाश कह रहा है—"नहीं यार इन्हें जल्दी निपटाओ और चलो मेरे साथ। वर्षों वाद तो मिले हो।"

"तुम समझते नहीं, यह दिन भर का लफड़ा है प्रकाश! इस आदमी ने अपनी बीवी को विष पिला कर मार डाला है। और जो दोनों अभी वाहर गए हैं, व इसके ससुर और साले हैं।"

"और मैं इनका मित्र हूं।" इतना कह कर प्रकाश ज़ोर से हँस पड़ा।

"अच्छा!" इस कथन के पश्चात् दारोगा मुसकरा उठा।

"हाँ, मुर्दनी में गया था।" इसके वाद वोला—"मगर इन सालों को कैसे मालूम हुआ कि उसे विष दिया गया है। कमीने साले, कुत्ते कहीं के! इन्हें क्या पता कि उसका हार्ट फ़ेल हो गया था। पंचनामा तो मैं तुम्हारे यहाँ दाखिल कर गया हूँ।"

"अच्छा"!

"और नहीं क्या!"

मैं अव भी वहीं खड़ा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था 'यह पंचनामा कव कराया गया?' किन्तु इससे भी अधिक मुझे अपने वाल-वाल छूट जाने की प्रसन्नता थी। मन ही मन अपने परम मित्र प्रकाश के प्रति मैं कृतज्ञता का अनुभव करता हुआ सोच रहा था—संसार में यदि एक भी सच्चा मित्र मिल जाय, तो मनुष्य जीवन पर्यन्त किसी कष्ट का अनुभव नहीं कर सकता!'

इतने में दारोगा ने पुलीस के एक सिपाही को कहा—"देखो पंचनामा कहाँ है?"

"आया है साहव।" इसके पश्चात् उस सिपाही ने प्रकाश का ओर संकेत करते हुए कहा—"आप ही दे गये थे।"

"लाओ पंचनामा लाओ और देखो उन दोनों आदमियों को भी

खोता जा रहा था। किन्तु इसके बावजूद मैं यह सोच लेता था कि मुझे अधिक-से-अधिक साल दो साल की सजा हो जायगी और क्या होगा ? मैं निरन्तर अपने को धैर्य से बाँध रहा था, किन्तु भय उसकी गाँठे खोल देता था।

जिस समय हम लोग पुलीस चौकी पहुँचे, मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा · मेरे ससुर और साले दोनों वहाँ पहले से ही विद्यमान थे। उन्हें देखते ही मैं आक्रोश में आ गया। उस समय भय क़तई निकल गया था। मैंने उन दोनों को देखकर मन-ही-मन कहा "कमीने कहीं के !"

अब मेरे मन में एक दृढ़ता आ गयी और मैंने सोचा, देखता हूं साले क्या करते हैं। मैं कह दूँगा, हार्ट फ़ेल हो गया था।

सोचने को इतना सोच तो गया, किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने अपने को क़ानून की गिरफ्त में पाया। वैधानिक रूप से मुझे पुलीस अधिकारियों को मृत्यु की सूचना देनी चाहिए थी।

इसी समय क्या देखता हूँ कि दारोग़ा साहब कुर्सी से उठकर खड़े हो गये और प्रकाश की ओर लपक कर हाथ बढ़ाते हुए बोले—"हलो प्रकाश !"

दारोगा के चेहरे पर एक असीम प्रसन्नता छा गयी। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे दो बिछुड़े हुए वियोगी वर्षों बाद मिल रहे हों।

—"तुम यहाँ कब आये ?" प्रकाश ने हाथ मिलाते हुए कहा।

"दो-तीन महीने हो गये" !"

"दो-तीन महीने !" आश्चर्य भरे स्वर में प्रकाश ने कहा—"किन्तु तुमने कोई सूचना भी नहीं दी। अजीब आदमी हो !"

मेरी मनः स्थिति में क्षण भर पूर्व जो एक तनाव आ गया था। वह इस क्षण प्रायः समाप्त हो गया और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि अब गाड़ी दलदल से बाहर हो गयी।

दारोगा नयी उमर का था। रेख उभर आयी थी ! मेरा अनुमान है प्रकाश से शायद वह दो-एक वर्ष छोटा रहा होगा। किन्तु दोनों का इस प्रकार मिलन देखकर मुझे ऐसा आभास हो रहा था, कि ये कभी 'क्लास फेलो' रहे होंगे।

तभी दारोगा ने प्रकाश का हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—"आओ बैठो।"

इस कथन के वाद मेरे ससुर और साले की ओर संकेत करते हुए दारोगा ने कह दिया—"अच्छा, जरा आप लोग बाहर वैठिए, अभी दस मिनिट वाद आपको वुलाता हूँ।"

जव वे दोनों वाहर चले गए, तो दारोगा ने मेरी ओर संकेत करते हुए सिपाहियों से पूछा—"इन्हीं का केस है ?"

एक सिपाही ने बढ़कर कह दिया "जी हाँ।"

"अच्छा, इन्हें भी बाहर वैठाओ, अभी देखता हूं।"

तभी मैं क्या सुनता हूँ कि प्रकाश कह रहा है—"नहीं यार इन्हें जल्दी निपटाओ और चलो मेरे साथ। वर्षों वाद तो मिले हो।"

"तुम समझते नहीं, यह दिन भर का लफड़ा है प्रकाश ! इस आदमी ने अपनी बीवी को विष पिला कर मार डाला है। और जो दोनों अभी बाहर गए हैं, व इसके ससुर और साले हैं।"

"और मैं इनका मित्र हूं।" इतना कह कर प्रकाश ज़ोर से हँस पड़ा।

"अच्छा !" इस कथन के पश्चात् दारोगा मुसकरा उठा।

"हाँ, मुर्दनी में गया था।" इसके बाद बोला—"मगर इन सालों को कैसे मालूम हुआ कि उसे विष दिया गया है। कमीने साले, कुत्ते कहीं के ! इन्हें क्या पता कि उसका हार्ट फ़ेल हो गया था। पंचनामा तो मैं तुम्हारे यहाँ दाखिल कर गया हूँ।"

"अच्छा" !

"और नहीं क्या !"

मैं अब भी वहीं खड़ा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था 'यह पंचनामा कव कराया गया ?' किन्तु इससे भी अधिक मुझे अपने वाल-वाल छूट जाने की प्रसन्नता थी। मन ही मन अपने परम मित्र प्रकाश के प्रति मैं कृतज्ञता का अनुभव करता हुआ सोच रहा था—संसार में यदि एक भी सच्चा मित्र मिल जाय, तो मनुष्य जीवन पर्यन्त किसी कष्ट का अनुभव नहीं कर सकता !'

इतने में दारोगा ने पुलीस के एक सिपाही को कहा—"देखो पंचनामा कहाँ है ?"

"आया है साहव।" इसके पश्चात् उस सिपाही ने प्रकाश का ओर संकेत करते हुए कहा—"आप ही दे गये थे।"

"लाओ पंचनामा लाओ और देखो उन दोनों आदमियों को भी

बुलाओ।" इसके पश्चात् दारोगा ने प्रकाश से कहा—"यार खूब मिले। मैंने कई बार सोचा कि तुम्हारे नाम वारंट निकलवा दूं, शायद इसी तरह पता लग जाय!"

तभी प्रकाश ने मुसकराते हुए कहा—"बनो मत, अगर तुम मिलना ही चाहते, तो यह कैसे हो सकता है कि हम लोग न मिल पाते। आखिर हमारे घर का पता तो तुम्हें मालूम ही था?"

"वहीं कलक्टर गंज में न?"

"हाँ, हाँ वहीं?"

"खैर, चलो मिल गये, अच्छा हुआ। अब यह बताओ, क्या चलेगा? चाय या कोकाकोला?"

प्रकाश ने मित्रता के लहज़े में उत्तर दिया—"चलने बोलने की बात तो मित्र बाद की रही। पहले उन कुत्तों को यहाँ से भगाओ। इन सालो ने तो यार मेरा दिमाग ख़राब कर दिया।" कथन के पश्चात् प्रकाश मेरी ओर उन्मुख होता हुआ बोला—"आपसे आपका परिचय करा दूं। आप मेरे घनिष्ट मित्र दीपकजी हैं। यहीं एक सरकारी दफ्तर में आप सुपरवाइज़र हैं। बड़े अच्छे परिवार के हैं।"

इस कथन के पश्चात् प्रकाश एक सैकिंड रुक गया। उसके बाद होठों पर एक स्वाभाविक मुसकान बिखेरते हुए बोला—"आपकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आप पत्नी-भक्त हैं।"

दारोग़ा इनके इस कथन को सुन कर हँस पड़ा, बोला—"प्रकाश अब भा तुम्हारे अन्दर वही बचकानापन भरा है। अब तो कम-से-कम दा बच्चे के पिता हो गये होंगे?"

बीच ही में प्रकाश बोल उठा—"देखो सुरेश, जिन्दगी को मैं एक तोहफ़ा मानता हूँ तोहफ़ा। कोई माने या न माने। लेकिन मैं उसे······।" इसके बाद उसने छत की ओर तर्जनी उठा कर कहा—"प्रभू का परम भक्त हूँ, यह तो तुम जानते ही हो। और उसकी दी हुई वस्तुके प्रति मैं उपेक्षा का भाव कैसे रख सकता हूँ।"

दारोगा हँस पड़ा। बोला—"क्यों नहीं, अब भी बेटा तुम्हारी नक़ल उतारने की प्रकृति न गयी। कम से कम अब तो गुरुओं का पिंड छोड़ दो।"

"क्या बात करते हो? गुरु का पढ़ाया हुआ पाठ कच्चे विद्यार्थी भूल जाते हैं, मैं अपने गुरु का पक्का शिष्य रहा हूं और तुम देखना,

जीवनपर्यन्त उनका एक-एक शब्द न भूल पाऊँगा !"

मैं खड़ा-खड़ा दोनों की वार्ता सुन रहा था। प्रकाश की वह बात रह-रह मुझे कुरेद रही थी, जो उसने मेरे परिचय में कही थी। मैं मात्र एक लिपिक था, जिसे उत्तर प्रदेश सरकार लगभग १५०) वेतन देती थी। किन्तु उसने मेरा परिचय एक सुपरवाइजर कह कर दिया था। इसके मूल में जो उसकी भावना थी, वह मैं अच्छी तरह समझ रहा था, किन्तु उसकी इस वाक-पटुता का मैं क़ायल था, जो पुलिस अधिकारियों को भी गुमराह कर देती थी।

अन्त में, पंचनामा के आधार पर मुझे मुक्त कर दिया गया था और मेरे ससुर और साले साहब को यह कह कर भगा दिया गया था कि "तुम लोग फसादी हो। भाग जाओ यहाँ से ! अगर तुम्हें किसी बात का संदेह था, तो तुमने शव को अग्नि क्यों देने दी। उसी समय क्यों नहीं रोक दिया ? मैं इस संबंध में अब कुछ नहीं कर सकता। अगर आपको कुछ करना है, तो न्यायालय तशरीफ़ ले जाइए !"

दो

जिस समय मैं आफ़िस से लौटा, झरना सज-धजकर तैयार बैठी थी। फ़ोन उसने पहले ही कर दिया था। टेबिल पर केटली में चाय रख कर, वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। आज सिनेमा जाने का प्रोग्राम था।

वह हरे रंग की नाइलोन की साड़ी पहने थी, जिसके नीचे श्वेत रेशमी साया था, जिसमें जालीदार गोट लगी थी। कभी-कभी उठने या चलने-फिरने से उसकी झलक आँखों को मिल जाती थी। ब्लाउज़ भी साड़ी से ही मैच करता हुआ नाइलोन का ही था; क्योंकि उसके नीचे जो कटोरीदार चोली, उसने पहिन रखी थी, वह स्पष्ट झलक रही थी। बल्कि स्पष्ट क्यों न कहूँ उस समय मैं उसे देखकर अपने को रोक न सका था। चाय का घूँट पीने के पश्चात् उसकी अज्ञानता में ज्यों ही मैं उठकर खड़ा हो गया, उसने कह दिया था—
"कहाँ जा रहे हो ?"

उत्तर तो मैंने बाद में दिया। पहले मैं उसके गले में पड़ी सोने की जंजीर को, जिसमें लाकेट लगा था, ठीक करने लगा यद्यपि मेरा मन्तव्य कुछ और था। तभी उसने प्रश्न कर दिया "क्यों, लाकेट तुम्हें पसन्द आया ?"

"डियर, लाकेट की पसंदगी की बात नहीं है...।" इतना कहते-कहते मुझे स्व० कविवर पण्डित नाथूराम शंकर शर्मा की एक कविता का स्मरण आ गया और मन की कल्पना में जैसे मेरा दायाँ हाथ, शंकर जी पर जा पड़ा।

इतने में झरना ने कह दिया—"तुम जब बिना कुछ कहे मुसकराने लगते हो तो मैं उलझन में पड़ जाती हूँ ?"

मैंने उत्तर दिया—आज तुम बहुत सुन्दर लग रही हो झरना। तुम्हारा एक-एक अंग अपने अस्तित्व का आभास दे रहा है। एक तेवर दिखाकर वह बोली—"देखो मुझे बनाने की चेष्टा मत करो।"

तब मुझे कहना पड़ा—बनाने की इसमें क्या बात है। मैं बना बनाया परफेक्ट पुरुष हूँ और तुम नारी। पुरुष चट्टानों को तोड़ने की क्षमता रखता है, आँधी और तूफानों को चुनौती देता है, किन्तु फिर आगे कभी उसकी यह सम्पूर्ण शक्ति पराजय भी स्वीकार कर लेती है।"

झरना ने नासिका सिकोड़ते हुए कह दिया—"जल्दी कीजिए, वरना देर हो जायगी।"

यह हमारा नित्य का विनोद था। कभी यह बात अवसर देखकर मैं कहता, कभी झरना। कभी-कभी हम लोग इस पर भी विचार विनिमय करते कि कौन से कार्य धीरे किये जाने चाहियें और कौन जल्दी।

अब मैं पुनः अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया था। एक पकौड़ी मुँह में डालते हुए मैंने कहा—"हमारे दफ्तर में भी इस पिक्चर की आज चर्चा हो रही थी। कई लोगों का कहना था—अच्छी पिक्चर है।"

कथन के बाद पुनः मेरा ध्यान झरना के शरीर पर जा पहुँचा। उसे बनी-ठनी देखकर मुझे लगा, जैसे वह फ़िल्म की ऐक्ट्रेस हो। ड्रेसिंग करने में वह बड़ी दक्ष थी। वस्त्र कैसे भी क्यों न हों, किन्तु जिस समय वह अपने शरीर पर धारण कर लेती, उनका सौन्दर्य

निखर उठता था। उसका कहना था कि बहुत-सी स्त्रियाँ समझती हैं कि कीमती वस्त्र ही उनके सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर सकते हैं, किन्तु वे भूल जाती हैं कि वस्त्र पहनने का भी ज्ञान होना आवश्यक है, अन्यथा पहिनने के बाद ऐसा दिखायी देता है, जैसे किसी लकड़ी को पहना दिया गया हो।

सिनेमा हाउस मेरे निवास-स्थान से अधिक दूर न था। यही कोई दो-तीन फ़र्लांग होगा! हम लोग गाँधी मार्ग पर खरामा-खरामा चल रहे थे। मेरे अतिरिक्त अन्य युगल जोड़ियाँ भी उस समय उसी सड़क पर चहल कदमी कर रही थीं। किन्तु आप विश्वास नहीं मानोगे, मैं जानता हूँ, क्योंकि आप सोचेंगे मैं अपनी पत्नी की प्रशंसा कर रहा हूँ, किन्तु ऐसी बात नहीं है। वह थी ही ऐसी। प्रायः लोगों की निगाहें मेरी पत्नी को देखकर चौंक उठती थीं। पुरुषों ही की बात नहीं, महिलाएँ भी उसकी रूप-राशि को देखकर स्तब्ध रह जाती, थीं ऐसी वह रूपवती थी। और यही कारण था कि यह जानते हुए भी कि अब वह मुझे प्यार नहीं करती—मैं उससे कुछ स्पष्ट नहीं कह सकता था। जब-जब उस पके फोड़े का मैंने आपरेशन करने की सोची, तभी मेरे मन में एक भय समा गया। यदि कहीं झरना मुझसे रुष्ट हो गयी, और यह भी संभव हो सकता है कि वह संबंध विच्छेद कर ले?

मेरे मन में उस क्षण मात्र एक ही भावना उगती थी कि ज्योति के अभाव में दिये का क्या अस्तित्व है?

संभव है, आप लोगों में कुछ ऐसे भी व्यक्ति हों, जो यह कहें कि मैं पत्नी का गुलाम हूँ, किन्तु आप कुछ भी कहें, मैं वाटरप्रूफ़ हूँ, मेरे ऊपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि जब मैंने यहाँ तक स्पष्ट कर दिया कि मैं मात्र शरीर हूँ और बिना प्राण के शरीर का अस्तित्व ही क्या? और कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसे अपने प्राणों की चिन्ता नहीं होती?

और यही कारण था कि यह बोध होते हुए भी कि झरना मुझसे प्यार नहीं करती, लाख साहस संकलित करने के पश्चात भी मैं उससे यह स्पष्ट प्रश्न नहीं कर पा रहा था कि अब तुम मुझे प्यार क्यों नहीं करतीं?

सिनेमाहाउस के समक्ष एक अच्छी-खासी भीड़ मलवे की भाँति

जमा थी। किन्तु इस भीड़ में जो एक नयी चीज़ मुझे दिखायी दी, वह थी स्त्रियों की संख्या। मैंने इसके पूर्व किसी भी सिनेमाहाउस में इतनी स्त्रियां नहीं देखी थीं। मेरा अनुमान है, दो तिहाई महिलाएं थीं, और एक तिहाई पुरुष।

झरना ने एडवाँस बुकिंग करा ली थी, इसलिये हमें टिकट की चिन्ता नहीं थी, जबकि उस दिन मैंने देखा, महिलाएँ 'क्यू' में खड़ी थीं और वैसी ही धक्का-मुक्की आपस में कर रही थीं, जैसी पुरुष वर्ग करता है।

जिस समय हम लोगों ने हाल में प्रवेश किया, एक अजीबो-ग़रीब सौन्दर्य उस दिन हमें दिखायी दिया। अनेक महिलाएँ, बहुएँ तथा लड़कियां अपनी-अपनी सीटों पर बैठी ऐसी दीख रही थीं, जैसे तितलियाँ हों।

तीन-चार लड़के हाथ में कोकाकोला और लेमन की बोतलें लिये घूम रहे थे। उनमे से एक लड़का हम लोगों के बैठते ही समीप आ पहुँचा। मेरी पत्नी की ओर उन्मुख होते हुए बोला—"मेम साहब। कोकाकोला लायें ?"

मुझे हँसी आ गई। तभी झरना ने मुझसे प्रश्न कर दिया—"क्या बात है ?"

उत्तर में मैंने कह दिया—"कोई बात नहीं है।" क्षण भर रुकने के पश्चात् मैंने बतलाया—"छोकरा तुम्हें मेम साहब बना रहा है, जबकि मैं दफ़्तर का एक लिपिक और भारतीय हूँ।"

"तो इसमें कौन सी खास बात है ?" झरना ने रूमाल मुँह पर फेरते हुए कहा—"बच्चे हैं, मेम साहब कहने की आदत पड़ गयी है।"

"वह देवी जी भी तो कह सकता था।"

"अच्छा-अच्छा, बस कीजिये। पिक्चर शुरू हो गयी।" झरना इतना कहकर सजग हो गयी। उसकी आँखें पर्दे पर जा टिकीं।

एक छोटा-सा कमरा, जिसमें एक पलंग पड़ा है। पलंग के निकट रखी कुर्सी पर पति बैठा है और पलंग पर पत्नी।

"मुझे अधिक मूर्ख बनाने की चेष्टा मत करो। मैं तुम्हारी सब हरकतें देख रहा हूँ। कमीनी कहीं की।" पुरुष ने कुर्सी पर बैठे-बैठे कहा।

पत्नी उत्तर में आँखें निकालती हुई बोली—"क्या देख रहे हो? मैंने कौन-सा पाप किया है?"

पति उठकर कुर्सी से खड़ा हो जाता है। उसकी भृकुटियाँ खिच गयी हैं और मुखाकृति लाल हो उठी है। पत्नी के इतना कहते ही उसकी केश राशि को पकड़कर वह अपनी ओर खींचकर तड़ तड़ तड़ उसके कपोलों पर कई तमाचे जड़ देता है। पत्नी जमीन पर गिर पड़ती है।

हरामज़ादी। मैंने तुझे कितनी बार मना किया कि उस व्यक्ति से बात मत कर। मगर तेरा दिल नहीं मानता।" पति क्रोधावेश में पत्नी को मारता हुआ कह देता है।

"किन्तु किसी से मिलना या बात करना कोई पाप है?

"अभी बताता हूँ, पाप की बच्ची...!" इतना कहकर पति अपनी पत्नी को बुरी तरह पीटना प्रारम्भ कर देता है। पत्नी फ़र्श पर गिर पड़ी है। लात-घूँसों से पति मार रहा है। बीच-बीच में कहता जा रहा है—"अब तो उससे मिलने नहीं जायगी? बोल! बोलती क्यों नहीं?

पत्नी चीख रही है। वह पति की बातों का कोई उत्तर नहीं देती। इतने में पति उसके ऊपर बैठ जाता है और उसका गला दोनों हाथों से कस कर पकड़ कर कहता जा रहा है—"गला घोंट कर आज तुझे मार ही डालूँगा। बुला अपने यार को, देखता हूँ, कौन तेरी आज रक्षा करता है।"

सिनेमा हाल शेम!'शेम!!' के नारों से गूँज उठता है।

झरना इसी समय कह उठती है—'कितनी नीच प्रकृति का व्यक्ति है! उसे पत्नी नहीं, पशु समझता है जबकि वह स्वयं जानवर है।'

मैंने भी उसकी बातों के समर्थन में कह दिया—'ठीक कह रही हो।'

किन्तु उस समय मेरे मन में एक दूसरा ही अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि झरना अब मुझे प्यार नहीं करती। मुझे उसके चरित्र पर संदेह होने लगा है।

उस समय मेरे मन में यह भावना जन्म ले चुकी थी कि देखें इस घटना का झरना पर क्या प्रभाव पड़ता है। किन्तु अंधकार होने

के कारण उसके चेहरे को देख नहीं सकता था और बिना उसे देखे उसके मन के भावों का बोध कर लेना संभव नहीं होता।

मैं सोचता रहा कि कौन-सी ऐसी युक्ति हो सकती है, जिससे उसके मन में भावों का ज्ञान हो सके। किन्तु कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यद्यपि एक तथ्य मेरी पकड़ में आ चुका था। जिस समय उसने मुझसे कहा था—'कितनी नीच प्रकृति का व्यक्ति है!' उसका कंठ कथन के मध्य में अवरुद्ध हो गया था। ऐसा प्रतीत होता था कि जो कुछ वह कहना चाहती है, नहीं कह पा रही है जिसके मूल में संभव है, जहाँ तक मेरा अपना दृष्टिकोण है—वह मुझसे कुछ छिपाना चाहती थी। उसे यह भय था कि वह भी उसी मर्ज की मरीज़ है। संभव है, मैं कहीं ताड़ न जाऊँ।

लेकिन प्राय: ऐसा होता है कि किसी को दुख न देकर हम दुखी हो उठते हैं। आंखों से अश्रु झरने लगते हैं। और झरना के कंठ का ऐसे क्षण अवरुद्ध हो जाना, ऐसा कोई प्रमाण मैंने नहीं माना, जिससे उसे गिरफ्त में किया जा सके। क्योंकि मेरे पार्श्व में जो सज्जन बैठे थे, मैंने कानों से सुना, उनकी धर्मपत्नी सुबकियाँ ले रही थीं और पति महोदय नायक को संकेत कर क्रोधावेश में कह रहे थे—'ऐसे कमीनों को गोली मार दी जानी चाहिये! जंगली कहीं का!'

उनके स्वर को सुनकर मेरे मन में एक बार आया कि शायद नयी-नयी शादी हुई है। दोनों में अच्छी घुटती है। आज से दो वर्ष पूर्व झरना के साथ मेरा व्याह हुआ था, हमारी भी यही गति थी। हम एक क्षण के लिये एक दूसरे से विलग नहीं होना चाहते थे। प्राय: आफ़िस से छुट्टी लेकर घर बैठ जाता। दूसरे दिन जब आफ़िस पहुँचता, तो मुझे देखते ही बड़े बाबू का पारा चढ़ जाता। वे कह देते—'जब देखो, तब छुट्टी लेकर बैठ जाते हो, यह तुम्हारा कोई अच्छा तरीका नहीं है दीपक! भविष्य के लिये नोट कर लो, अगर काम करना है, तो ठीक से काम करो, वरना घर बैठो।'

बड़े बाबू को क्रोधित देखकर अन्य लिपिक हँसी-हँसी में कह देते "अरे बड़े बाबू नयी-नयी शादी हुई है बेचारे की, इसका भी तो कुछ ख्याल कीजिये! फिर तो बैल की भाँति जुतना ही है।"

बड़े बाबू ने उत्तर में कह दिया था—"मैं इसका जिम्मेदार नहीं हूँ। दो में से एक की ही नौकरी चलेगी। या तो सरकार की नौकरी

कर लो, या बीवी की। समझ गये ?"

इतने में ही जमील ने कह दिया था—"अरे बड़े बाबू ! जाने दीजिए ! आप भी जरा अपने रंगीन दिनों का स्मरण कीजिए।"

उस समय बड़े बाबू ने अपनी हँसी को होठों में दबा लिया था और सिर नीचा करके कह दिया था—"देखो जी, बकवास मत करो अपना काम करो। वो पत्र टंकित हो गया है ?"

कोई मनोवैज्ञानिक होता, तो निश्चित ही उस क्षण बड़े बाबू के चेहरे को देखकर कह सकता था कि वे अपने व्याह के अतीत क्षणों में विचरण कर रहे हैं। और उसका स्मरण कर उनके रोम-रोम स्पन्दित हो उठे हैं। संभव है, उन्होंने यह भी सोचा हो कि काश एक बार पुनः मेरा व्याह होता ! काश एक बार जीवन में पुनः वे घड़ियां आतीं कि हमारी सम्पूर्ण रात्रि मधुर वार्तालाप में व्यतीत हो जातीं और हम यह भी न जान पाते कि सवेरा कब हो गया। आज तो दफ्तर से घर पहूँचने ही इच्छा होती है कि कोई कुछ न बोले, खाना खाकर चुपचाप सो जाऊं। बच्चे अलग परेशान करते हैं, बीवी अलग। कहीं किसी के पास फ्राक नहीं है, तो किसी के पास बुशशर्ट किसी के जूते फट गये हैं, तो किसी की चप्पल की बद्धी टूट गयी है। किसी के पास किताबें नहीं हैं, तो किसी के पास कलम। कोई बच्चा कहता है—'बहिन जी ने कहा है कि यदि कल फीस लेकर नहीं आओगे, तो कान पकड़ कर निकाल दूँगी, बैठने नहीं दूँगी।' एक मुसीबत हो, तो बात भी है। सैकड़ों ऐसी परेशानियाँ, जिनका कोई हिसाब नहीं। हनूमान की पूँछ की तरह बढ़ती ही चली जा रही हैं। ऐसी दशा मे यह निश्चित है कि एक दिन लंका भस्म हो जायगी।

कोई एक मुसीबत है ! पत्नी का रोना अलग चलता रहता है। कभी कह देगी—चावल नहीं है। आटा भी शाम भर के लिये है। रेखा तो रोटी छूती नहीं ! आज ही उसने खाना नहीं खाया। कहती थी—'भर्त्ता नहीं है, हम नहीं खायेंगे।

फिर इन अभावों की बात उठाने का कोई एक निश्चित समय नहीं। हम जब प्रूफ़ पढ़ने में तत्पर होते हैं, तब कभी पत्नी कहेगी—'दाल नहीं है।' और जब ठाकुर जी पर पुष्प चढ़ा रहे होंगे तभी वह कह देगी—'पत्थर का कोयला नहीं है।'

अजीब जिन्दगी है। एक-न-एक अभाव बना ही रहता है। कभी ऐसा नहीं होता कि दफ्तर से आने के बाद तो, घंटे-आध घंटे का विश्राम मिलता उधर आठ नौ घंटे आफ़िस में खटो इधर घर पहुँचो, तो यहाँ खटो। फिर मंहगी दिन दूनी रात चोगुनी बढ़ती जा रही है। लेकिन वेतन के नाम पर एक पैसा बढ़ता नहीं।

बात तरंगों की नहीं, उस आँधी की है, जो मेरे भीतर कभी-कभी अचानक आ जाती है।

मैं आपसे क्या कहूँ कि उन दिनों झरना को मैं कितना प्यार करता था। और यह बात भी सही नहीं है कि वह मुझे नहीं चाहती थी। संध्या के सात बजते ही वह चाहती थी कि मैं घर से बाहर न निकलूँ! यद्यपि उसे छोड़कर जाने की इच्छा मेरी स्वयं नहीं होती थी, किन्तु कभी-कभी मैं मित्रों के ऐसे चक्कर में पड़ जाता कि घर लौटने में विलंब हो जाता। किन्तु आप विश्वास कीजिये, उस दिन वह रात मेरे लिये भार हो जाती। रात भर झरना सुबकती रहती। में उसे मनाते-मनाते थक जाता, फ़िर भी उसकी सुबकन न जाती। उसी क्रम में वह कह देती—'मुझे प्यार करते होते, तो क्या मेरा कहना न मानते। मुझे यहाँ अकेली क्यों छोड़ देते हैं मेरी समझ में नहीं आता!"

अनेक अनुनय-विनय तथा अनुहार के पश्चात् अन्ततोगत्वा उसे किसी भाँति मना पाता।

दूसरे दिन जब मैं आफिस जाने की तैयारी में होता, वह जूतों में पालिश करती, कपड़े मुझे अपने हाथ से पहिनाती। और जब मैं चलने लगता, तो आँखों में आँखें डालकर वह मेरे वक्ष से लिपट जाती! कहती—'देखो जल्दी आना!' और मैं उसकी केश-राशि को सहलाता हुआ उत्तर में कह देता—"अच्छा!"

आज जब प्यार की उन पावन घड़ियों का स्मरण करता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वृश्चिक ने डंक मार दिया है। कभी-कभी मुझे स्वयं अपने पर विश्वास नहीं होता। मैं सोचने लगता हूँ कि कहीं मैं झरना के विषय में गलत तो नहीं सोच रहा हूँ। क्योंकि जो

झरना अपनी अनंग लताओं में पुष्प की भांति मुझे लिपटाये रहती थी, वह मुझसे दूर कैसे रह सकती है ? लेकिन भाई पुष्प का लताओं से दूर हो जाना, तो किसी प्रकार संभव भी है, लताएं तो उसका कभी परित्याग नहीं कर सकतीं। प्रायः मैं एकान्त में बैठकर कभी किसी पार्क में, या कभी आफ़िस में ही इस तथ्य पर विचार करता रहता हूँ कि क्या सचमुच झरना अब मुझे नहीं चाहती। उसकी तरुण आँखों में पागल बना देने वाले वे सुकुमार संकेत अब मुझे क्यों नहीं दिखायी देते ? अधर उसके आज भी वही है, किन्तु उनके स्पर्श में मेरे होठों को वह सुख क्यों नहीं प्राप्त होता, जो आज से दो वर्ष पूर्व मिलता था। अड़तालीस घंटे भिगोए हुए चने जैसे मन्द गंध वाले उसके कमनीय कलेवर के समर्पण में आज मुझे पहले जैसी मोहकता क्यों उपलब्ध नहीं होती।'

लेकिन सबसे अधिक परिताप का विषय तो यह है। अब उसके समर्पण में मैं एक विवशता का अनुभव करता हूँ। ठीक जैसे दिन भर की थकी-हारी पत्नी को इच्छा न होने पर भी रात्रि में पति के सम्मुख अपना सारा देहरस समर्पित करना पड़ता है।

कुछ भी हो, अन्त में, मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचता था कि अब झरना मुझे नहीं चाहती ! किन्तु उसके इस न चाहने का मेरे पास कोई प्रमाण नहीं था।

झरना के मन पर उस घटना का क्या प्रभाव पड़ा, यह जानने के लिये मैं अत्यन्त अधीर था। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि अंधकार होने के कारण चित्र का वास्तविक रूप मैं देख नहीं पा रहा था। अकस्मात् मुझे एक युक्ति सूझ गयी। झरना मेरे दायें बैठी थी। उसके बायें हाथ को अपनी गोद में रख कर मैं उसकी हथेली सहलाने लगा। वह कुछ बोली नहीं। इसके बाद अपना दायाँ हाथ उसके दाहिने कन्धे पर कुछ देर तक रखे रहा। धीरे-धीरे इधर-उधर मेरी अंगुलियाँ चींटी की भाँति रेंगने लगीं। उस क्षण अपने को मैं अधिक नहीं सँभाल सकता था। अब मेरे सीने की धड़कनें लुहार की धौंकनी सी तीव्र गति से चल रही थीं।

झरना ने मेरे हाथ को शीघ्र ही हटा दिया, किन्तु मुझे इस बात का बोध हो गया कि उसके मन पर उस घटना का अत्यंत तीव्र प्रभाव पड़ा है। मुझसे रहा न गया। मैंने उसी क्षण उसके कान के समीप मुँह ले जाकर कह दिया—"डियर! तुम घबरा क्यों रही हो?"

उस समय झरना के उत्तर से मुझे कुछ ऐसा आभास मिला, जैसे मैं यह जान गया हूँ कि उसका किसी के साथ प्रेम चल रहा है। क्योंकि उसने अपने को संयत एवं सजग रखते हुए धीरे से कह दिया 'घबराने की क्या बात है?' इसके पश्चात् दूसरे ही क्षण वह बोली —'खेल देखिए।'

मुझे उसका यह कथन बड़ा प्यारा लगा क्योंकि मैंने उसके शब्दों में थोड़ा सुधार करके अपने मन के भीतर मान लिया—खेल-कर देखिये।

लेकिन मेरा खेल तो कुछ और ही चल रहा था। मैं अपना खेल देख रहा था और झरना अपना। उसे मेरे खेल का बोध नहीं था, किन्तु उसके खेल की जानकारी किसी अंश तक मुझे हो रही थी।

मध्यान्तर तक पिक्चर में कितनी घटनाएँ घटीं, इसका मुझे कतई पता न चला। बस, एक ही घटना का मुझे आज भी स्मरण है, और उस समय भी। नायिका विवाहित थी। किन्तु उसका प्रणय किसी अन्य पुरुष से था। पति को यह तथ्य विदित हो गया था और उसने परिणामस्वरूप पत्नी को कक्ष में बन्द कर उसे बुरी तरह पीटा था। उसके बालों को पकड़ कर उसने कई बार ज़मीन पर दे पटका था। पत्नी अपने को असहाय पा रही थी। उसके सम्मुख उस समय और कोई चारा न था। बस, वह चीखती जा रही थी।

मध्यान्तर के समय मैंने देखा, झरना का गुलाब सा मुख मुरझा गया है। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी किसान के खेत की फूली हुई मटर पर हिमपात हो गया है। मुझसे वह मुरझाया हुआ चेहरा देखा न गया।

इतने में ही मैंने झरना से कह दिया—"क्यों, उदास क्यों हो?" इसके पश्चात् ही उसे 'सान्त्वना' देते हुए मैंने कहा—"जीवन में सब चलता है, तो फिर—क्या ये सब लेखक कोरी कल्पना से लिखते हैं!"

झरना मेरे शब्द सुनकर किंचित आश्वस्त तो हुई, किन्तु उसकी मुखाकृति के भावों से यह स्पष्ट हो गया कि वह मुझसे सहमत नहीं है। तो क्या उसने अपने जीवन के किसी अंश को उस कहानी में पाया था? भले ही उसकी चरम परिणति इस रूप में न हुई हो।

इतने में मेरे सम्मुख एक दस बारह वर्षीय बालक आ खड़ा हुआ और बोला—"बाबू जी ! कोकाकोला ?"

"हाँ, दो ले आओ।" मैंने उत्तर में कह दिया।

लड़का चला गया।

उसके जाते ही झरना ने मेरी आँखों में देखते हुए प्रश्न किया—"पिक्चर पसन्द आयी ?"

जिस समय उसने यह वाक्य कहा था, उसका शीश स्वतः जैसे मेरे दाहिने कन्धे पर आ गया था। और उस क्षण मैंने अनुभव किया था कि उसकी चितवन में एक बोतल शराब का नशा है। मैं उन आँखों को देखते ही इस स्थिति में आ गया था, जैसे कोई मदिरा-पायी अधिक शराब पीने के पश्चात् अपने को भूल जाता है।

मैं पुनः झरना के हाथों को अपनी गोद में रख कर सहलाने लगा।

उस क्षण मैं सोचने लगा कि झरना पर मेरा सन्देह व्यर्थ है। वह मुझसे अब भी उतना ही प्रेम करती है, जितना कि पहले करती थी।

इतने में उसने पुनः कहा—"क्यों आपको पिक्चर पसन्द नहीं आयी ?"

उस क्षण मुझे एक झटका-सा लगा बल्कि दुःख भी हुआ कि झरना के प्रश्न का उत्तर मैंने क्यों नहीं दिया।

तभी मैंने कह दिया—"प्रारंभ कुछ जमा नहीं।"

मैंने संक्षेप में इतना कह दिया था। क्योंकि इसके आगे अभी पिक्चर के सम्बन्ध में मैं और कुछ कह ही क्या सकता था ?

"लीजिए बाबू जी !" लड़के ने कोकाकोला की बोतल सामने पेश करते हुए कहा।

तभी झरना ने कह दिया—"मैं नहीं लूँगी।"

"क्यों ?"

"यों ही, इच्छा नहीं है।"

एक उपेक्षा का भाव प्रकट करते हुए झरना ने कहा। किन्तु इस कथन के साथ उसकी नासिका में एक सिकुड़न फिर उभर आयी। वह उसके उपेक्षा के भाव के स्थान पर सहसा उसके सौन्दर्य में अपेक्षित अभिवृद्धि करने लगी परिणाम यह हुआ कि उसके उस सौन्दर्य का एक बार मैं पुनः शिकार बन गया।'

उसका वह सौन्दर्य कितना मोहक था! जैसे किसी प्रेयसी के कपोलों का काला तिल, जिसमें उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य केन्द्रित होकर दमक उठा हो?

"झरना! तुम्हारी इन्हीं भंगिमाओं ने ही तो मुझे प्रेम और आसक्ति की जंजीर में जकड़ रखा। वरना...।"

इस कथन के पश्चात् मैं मौन हो गया।

झरना अधरों पर इन्द्रजाली मुसकान बिखेरती हुई बोली—"अरे जाइए, आप सब लोग एक ही जाति के हैं। फुसलाने का गुण तो ईश्वर ने आप ही लोगों को बाँट दिया है।"

"ग़लतफ़हमी भी तो हो सकती है झरना।"

इतने में लड़के ने कह दिया—"बाबू जी लीजिए, यह पी कोला। वह भी उसी जाति का है।"

मैंने तत्काल एक शराबी की भूमिका में झरना से कह दिया—"अब तो पीना ही पड़ेगा।"

उस क्षण मैंने अपनी आँखों को कुछ ऐसा बना लिया था, कि उन्हें देखकर झरना को बोध हो गया, जैसे मैं उसके रूप के प्रभाव से विमोहित हो उठा हूँ।'

तभी झरना बोली—"आप आज्ञा करें, तो विष भी पी लूँ, यह तो पी कोला है।"

झरना का यह कथन सुनकर मैं कृतार्थ हो गया। मेरे कन्तर के तार-तार स्पंदित हो उठे।

तभी मैंने उसकी भावनाओं को समझते हुए पी कोला की बोतल उसके हाथ में थमा दी। और कहा लो | "झरना! मैं तुम्हें विष क्या पिलाऊँगा? तुम्हें पिलाने के पूर्व मैं स्वयं पी लूँगा।"

"फिर एक दीर्घ निःस्वास लेते हुए मैंने कहा—"किन्तु आज सहसा यह वाक्य तुम्हारे मुँह से निकला कैसे?"

झरना उस दीर्घ निःश्वास की तह में जा पहुँची। शीघ्र ही उसने

अपना शीश मेरे कन्धे पर टिका दिया।

उसने पी कोला की बोतल ज्यों ही हाथ में ली त्योंही हाल में अन्धकार छा गया।

अब न मैं उसे देख सकता था, न वह मुझे।

अब एक के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी रीले पर्दे पर आ-जा रही थीं।

शयन करने के पूर्व झरना से मैंने कहा "आज तुम इतनी उदास क्यों हो? मालूम होता है पिक्चर का प्रभाव अभी तक बना है?"

झरना गिलास में दूध डाल रही थी। बोली—"पुरुष ने नारी के साथ बहुत अत्याचार किया है।"

"अत्याचार क्यों? इस में अत्चार की क्या बात है?—"मैंने सजग होकर पूछा।

झरना ने एक बार मुझे कनखियों से देखकर कहा—"अपने पक्ष की बात तो आप कहेंगे ही।"

"और यदि मैं यही 'चार्ज' तुम पर लगाऊँ तो?" मैंने मुसकराते हुए कहा।

दूध का गिलास मेरी ओर बढ़ाते हुए झरना बोली—"इस सारे संघर्ष की जड़ तो यही है। हम एक दूसरे पर दोषारोपण करते हैं और जब तक छिद्रान्वेषण की यह प्रवृत्ति हमारे मन से दूर नहीं होती, दरार पटने की बात तो दूर रही है, अधिक चौड़ी होती जा रही है।"

"क्यों, तुम पियो न!"

"नहीं, मेरी पीने की इच्छा नहीं है।" झरना इस कथन के पश्चात् मेरे पार्श्व में आकर बैठ गयी।

"तुमने ठीक से खाना भी नहीं खाया, दूध भी नहीं पियोगे, यह कैसे हो सकता है। फिर मैं तो कभी दूध पीता नहीं, तुम जानती हो।"

"आज पी लेगे, तो क्या हो जायगा।"

झरना के इस कथन में प्रेयसी के हृदय को बोलते हुए मैंने सुना।

"मेज पर रख दो।"

किया गया है ? मैंने विहारी सतसई पढ़ी है। उसमें जिस स्वस्थ ढंग से परकीया प्रेम का वर्णन किया गया है, उसे कौन अस्वीकार कर सकता है ?"

झरना के इन तर्कों को सुनकर मैं अवाक् रह गया था। आज मुझे उसकी मेधा शक्ति पर आश्चर्य हुआ, ब्याह के समय जब वह आयी थी—बोलना भी नहीं जानती थी।

तभी उसने कहा—"आप लोग ऋषि-मुनियों, देवताओं की बात करते हैं। इन्द्र ने क्या नहीं किया ! गौतम को प्रवंचित कर उसने अहिल्या के साथ संभोग नहीं किया ? आखिर यह क्या था ?"

इसी बीच बिल्ली ने मेज पर रखा हुआ दूध गिरा दिया। झरना उसकी ओर दौड़ी, किन्तु तब तक वह जा चुकी थी।

झरना क्रोधित हुई बोली—"आप से कह रही थी, पी लीजिये। हाय, आधा किलो दूध किसी काम न आया।"

मेरे मन में आया—नारी जाति को दूध के प्रति कितनी ममता होती है।

मेज़ पर पड़े मेजपोश को वह एक गृहिणी की भाँति उठा कर साफ़ करने लगी। मैं उस समय तनिक भयग्रस्त हो उठा था। मुझमें इतना भी साहस न रह गया था कि कुछ बोल सकता।

चारपाई पर लेटे-लेटे उस क्षण मैं सोच रहा था कि सम्भव है झरना का संबंध किसी से न भी हो, मेरा ही उस पर अकारण संदेह हो गया हो, किन्तु इतना तो निश्चित है कि वह परकीया प्रेम में विश्वास करती है और उसे उचित भी मानती है।

तभी मेरे मस्तिष्क में आया, क्या यह संभव नहीं है कि जिस मार्ग को हम सही मानते हैं, उस पर कभी, आवश्यकता आ पड़ने पर चल भी देते हैं ! हो सकता है, अभी हमें उसकी आवश्यकता न हो, किन्तु एक दिन ऐसा भी आता है, जब हमारी भावनाएं कर्म का आकार ग्रहण कर लेती है।

उसने यह भी कहा था—'थोड़ी देर के लिये मान लीजिए, कोई पत्नी किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है, तो इसमें अन्तर क्या पड़ता है ?'

कथन के पश्चात् उसने मेरी प्रतिक्रिया भी इस सम्बन्ध में जानने की चेष्टा की थी, किन्तु मैं अपने को छिपा गया था।

इसी समय झरना ने बत्ती बुझा दी। फिर वह चारपाई पर आकर लेट गयी।

इधर कुछ दिनों से वह अकेली लेटती है, अन्यथा हम दोनों एक ही पलंग पर अभी तक एक साथ लेटते रहे हैं। मैंने इस सम्बन्ध में उससे बहुत कुछ कहा था, किन्तु उसने मेरी एक न मानी। दो-तीन दिन तक, मुझे स्मरण है, मेरी उसकी बोल-चाल बन्द थी। अन्त में पुरुष नारी के सम्मुख एक दिन भेड़ बन गया।

झरना की चारपाई मेरे पलंग से लगी हुई थी किन्तु अंधेरे में उसकी मुखाकृति दिखायी न दे रही थी। मेरी इच्छा अभी उससे वार्ता करने की थी, क्योंकि मैं किसी निष्कर्ष पर पहुँचना चाहता था। आख़िर में मैं अपने को कब तक धोखे में रखता? कि उसका यह वाक्य—"कोई पत्नी किसी अन्य पुरुष से प्रेम करती है, तो इसमें क्या अन्तर सड़ता है।" रह-रह कर चुभे हुए शूल की भाँति पीड़ा पहुँचा रहा था और मैं उस पीड़ा से मुक्त होना चाहता था।

इसी समय मैंने अपना दायाँ हाथ झरना की ओर डरते-डरते बढ़ाया। यहाँ डरने की बात मैं इसलिये कह रहा हूँ, क्योंकि अभी थोड़ी देर पहले दूध गिर गया था। अन्यथा भयभीत होने की कोई बात न थी।

सहसा मेरा हाथ सीधे झरना की ग्रीवा पर जा पड़ा। उसने मेरे हाथ को पकड़ कर झटक दिया। मुझे एक खिसियाहट हुई। मैंने दूसरी बार हाथ बढ़ाया। किन्तु इस समय वह करवट बदल कर चारपाई के दूसरे किनारे पा जा लेटी। अब मेरा हाथ उसके शरीर तक नहीं पहुँच सकता था।

मैंने करवट बदलते हुए कहा—"झरना! झरना!!"

किन्तु वह कुछ भी नहीं बोली।

मैं धीरे से अपनी चारपाई से उतर कर उसकी चारपाई पर जा पहुँचा। उसने झुँझलाकर ठेलते हुए मुझसे कहा—"अपनी चारपाई पर जाइए। सोना हराम कर रक्खा है।

मैंने उसका हाथ कलेजे में लग जाने का बहाना बनाया और मेरे मुँह से निकल गया—"आह!"

मैं अपने हाथ से कलेजे को थामे हुए थोड़ी देर तक करहाता रहा, किन्तु उसका कोई प्रभाव झरना पर न पड़ा और वह टस से

मस न हुई। उसकी पीठ मेरी ओर थी और मुँह पूर्व की ओर।

थोड़ी देर पश्चात् झरना के कूल्हे पर हाथ रखकर मैं उसे अपनी ओर घुमाने लगा। इस बार पुनः उसने मेरा हाथ पकड़ कर झटक दिया। बोली—मेरी समझ में नहीं आता आप, जाकर सोते क्यों नहीं?"

उत्तर में मैंने कह दिया—"क्या बताऊँ, नींद···" मेरा अभिप्राय था, नींद नहीं आ रही है।"

मैं अपना वाक्य पूरा कह भी न पाया था कि उसने बीच में ही कह दिया—"नींद नहीं आ रही है, तो मैं क्या करूँ?"

इस बार तनिक आवेश में आकर मैंने कहा—"मैं तुमसे कुछ आवश्यक बातें करना चाहता हूं।"

लेकिन मुझे प्रतीत हुआ मेरे उस आवेश का झरना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वैसे ही लेटी हुई स्थिति में उसने कह दिया—"आवश्यक बातों के लिये दिन छोटा नहीं होता। इस समय सोने दीजिए, कल सुबह बातें कर लीजिएगा।"

"नहीं, मैं तुमसे अभी बातें करना चाहता हूँ। मुँह इधर करो। मैंने झरना के शरीर को पकड़ कर और झकझोरते हुए कहा।

झरना झुँझलाती हुई बोली—"मैं तुम्हारी सभी आवश्यक बातें जानती हूँ। किसी सुखःदुख से तुम्हें क्या तात्पर्य। लो, मुझे खालो, एक बार में ही निगल जाओ और अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो मुझे चाहे तो मार ही डालो।

इतना कहकर झरना ने मेरी ओर मुँह घुमा लिया।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उस की तबीयत ठीक नहीं है। मैंने उससे कहा—"आखिर क्या तकलीफ है तुम्हें बताओ भी तो सही?

इतना कह कर मैं उसके भाल पर अपना दाहिना हाथ फेरने लगा। तभी उसने कहा—"एक बार तो कह दिया, सिर में दर्द है।

"तो मैं दवा दूँ?" मैंने उससे कहा।

"नहीं, रहने दीजिए। मुझे चुपचाप सो जाने दीजिए।"

झरना के इस कथन के पश्चात् मैं उसी के बगल में लेट गया। और इस समय हम दोनों की स्थिति तेरसठ की अवश्य थी, किन्तु थे हम दोनों छत्तीस जैसे। मैंने उसकी कटि में हाथ डाल कर उसे अपने वक्ष से लगाने की चेष्टा की, तभी उसने कहा—"मैं आपसे

हाथ जोड़ रही हूँ, अपनी चारपाई पर चले जाइए।"

मुझे प्रतीत हुआ, झरना के इस कथन में एक पीड़ा है। यद्यपि उस पीड़ा का आधार उस समय मैं नहीं समझ पाया था और न मैंने समझने का प्रयास ही किया था। किन्तु दूसरे ही क्षण मैं उसे अकेली छोड़ कर अपनी चारपाई पर आ गया।

तीन

मेरी आर्थिक स्थिति दिनानुदिन बिगड़ती जा रही थी। कभी-कभी दो-दो घंटे शयन के क्षणों में सोचता रहता कि आखिर इसमें सुधार कैसे हो सकता है? किन्तु उस घने अंधकार में जिधर कर बढ़ाता, कुछ सुझायी न देता—किनारा मिलने की बात तो दूर रही।

एक बार पहली तारीख को जब वेतन लेकर आफिस से चला, तो सरदार निर्मलसिंह कार्यालय के मुख्य द्वार पर खड़ा दिखायी दे गया। उसे देखते ही मेरा रोम-रोम प्रकंपित हो उठा। इस बार काँपने का एक कारण था। पौने दो सौ रुपये के वेतन में जो शेष थे, उनमें सौ रुपये उसे देने थे। उसका आठ सौ रुपये मुझ पर ऋण था। सवा छः प्रतिशत महीने के हिसाब से प्रतिमास उसे पचास रुपये ब्याज के देने पड़ते थे। किन्तु गत मास में मैंने उसे ब्याज नहीं दिया था। अस्तु, इस बार मुझको उसे सौ रुपये देने थे।

उस दिन आफिस में बैठ कर ही मैंने अपना हिसाब यह सोच कर बनाया था कि किसको-किसको कितना देना है। दूध वाला तो पहली तारीख की शाम को आकर खान की भाँति जम जाता था, और बिना पैसा लिये हटता नहीं था। रुपये न मिलने पर तरह-तरह की बातें सुनाने लगता था। इसका एक कारण था। उसने एक बार मुझसे कहा था कि बाबू जी, एक यहाँ तहसीलदार साहब थे। तीन किलो दूध उनके यहाँ प्रति दिन जाता था। किलो भर शाम को, दो किलो सुबह। एक मास पैसा रुक गया। लगभग डेढ सौ रुपये प्रतिमास के वे ग्राहक थे। मैंने सोचा, कोई बात नहीं, बड़े आदमी हैं, सभी उन्हें सम्मान देते हैं, इस माह में नहीं, अगले माह में दे देंगे। किन्तु आपको बताता हूँ, धीरे-धीरे उनके ऊपर मेरा चार सौ रुपये

का उधार हो गया।

जब मैंने प्रश्न किया कि तुमने दूसरे माह में उनसे पूरा पैसा क्यों नहीं ले लिया, तो उसने उत्तर में कह दिया—"इसका एक कारण है। जब पैसा ग्राहक के पास दब जाता है, तो उसे बड़ी चतुराई के साथ निकालना पड़ता है। आप क्या समझते हैं, मैंने उनसे माँगा नहीं ? मैं रोज उनकी बीवी से कहता था, मेम साहब, यह कोई अच्छी बात नहीं है। अगर आप लोग इस तरह गरीब आदमी का पैसा दबा लेंगे, तो मेरा खर्च कैसे चलेगा ? हमें भैंस के लिये चना-दाना-भूसा लाना पड़ता है, फिर हम कहाँ से लायें ?"

उत्तर में उसने बतलाया—"मेम साहब ने कहा—साहब से कहो मैं क्या जानूँ ?" और स्थिति यह थी कि चपरासी साहब के पास तक मुझे पहुँचने नहीं देते थे।

अन्त में बाबू जी, एक दिन मैंने कमर कस ली और सोचा—आज साहब से निर्णय करके करके ही जाऊँगा। अधिक से अधिक वे यही तो कहेंगे, पैसा नहीं दूँगा, जो कुछ तुम्हें करना हो, कर लो। या किसी सिपाही से कह देंगे—इसे हवालात में बन्द कर दो। इससे अधिक तो वे कुछ नहीं कर सकते थे।

"किन्तु जिस समय मैं उनके सम्मुख गया, वे लाल-पीले हो गये। क्रोधित मुद्रा में आँखें निकालते हुए बोले—"बदतमीज निकल जाओ यहाँ से।"

इसके पश्चात् मैंने देखा, उनका पारा कुछ ठंडा हो गया। जिसके मूल में मेरी समझ में यह था कि उस समय उन्हें अपनी इज्जत का ख्याल हो आया था। उन्होंने सोचा होगा, अगर मैंने भी उत्तर में कुछ कह दिया, तो उनका सम्मान मिट्टी में मिल जायगा। सिपाहियों के सम्मुख क्या इज्जत रह जायगी ! तभी उन्होंने कह दिया—"शाम को घर पर मिलना।"

शाम को जब दूध देने गया, तो वे घर पर मिल गये। बाबू जी! मैं आपसे क्या कहूँ, उस दिन जो मैंने उनका रूप देखा, तो मैं हक्का बक्का रह गया। इतनी नम्रता के साथ वे पेश आये कि मैं कुछ नहीं कह सकता। उन्होंने कहा—"देखो दूध वाले, इस महीने में पैसे की कमी है। अगले महीने मैं तुम्हारा सारा रुपया चुकता कर दूँगा। तुम चिन्ता न करो।"

और इस कथन के बाद उन्होंने पच्चीस रुपये निकाल कर मेरी ओर बढ़ा दिये। मैंने सोचा, बड़े आदमी हैं, इनसे अब क्या कहूँ? तो बस पच्चीस रुपये लेकर चला आया। किन्तु बाबू जी, दूसरे मास में फिर वही हुआ। आज देता हूँ, कल देता हूँ, कहते-कहते बीस तारीख हो गयी। तहसीलदार साहब ने पैसा नहीं दिया। अन्त में बाईस को उन्होंने पचास रुपये मेरी ओर बढ़ा कर कहा—"यह लो, इस समय अधिक पैसे नहीं हैं, एक जगह से आने थे, लेकिन आये नहीं। अब अगले मास में सब भुगतान ले लेना।"

मैंने बहुत कुछ कहा, किन्तु उन्होंने और रुपये नहीं दिये। मैं कर ही क्या सकता था।"

किन्तु अगले मास एक दिन शाम को जब दूध लेकर पहुँचा तो मालूम हुआ तहसीलदार का तबादला हो गया। मैंने देखा, एक ट्रक में उनका सामान लादा जा रहा है। यह हाल देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया।

घर के भीतर गया, तो मेम साहब मिलीं। मैंने उनसे कहा, तो कह दिया—"चिन्ता न करो। तुम्हारा दूध का पैसा कहीं नहीं जायगा, हम लोग तो अभी चार-छः दिन यहाँ हैं। तहसीलदार साहब भी कल दस बजे आ जायेंगे, अभी तो वहाँ रहने की जगह देखने गये हैं। कल दस बजे अवश्य आ जाना, अच्छा देखो और पूरा हिसाब बना कर ले आना।"

दूध वाले ने आगे कहा—"तो बस बाबूजी! मैं चला आया। हिसाब क्या बनाना था, बना-बनाया था। दूसरे दिन दस की अपेक्षा से साढ़े नौ बजे ही जा पहुँचा। द्वार पर पहुँचते ही मैंने देखा, एक कार खड़ी है। बच्चे उसमें बैठे किलोलें कर रहे हैं। तहसीलदारिन कार-चालक के समीप वाली सीट पर बैठी है। ज्यों ही उनके समीप पहुँचा, कार चल दी। तभी तहसीलदारिन ने खिड़की से सिर निकाल कर कहा—"ये दूधवाले, कल आना।"

उसी दिन से, बाबू जी मैंने निश्चय कर लिया था कि हर महीने हिसाब चुकता करा लूँगा, तब दूध दूँगा, वरना नहीं।

यही कारण था कि सबसे अधिक चिन्ता मुझे उस दूध वाले की रहती थी। क्योंकि वह चोट खा चुका था और चोट खाया हुआ व्यक्ति अधिक सजग होता है।

उस दिन सरदार की गृद्ध-दृष्टि मुझ पर लगी थी। वह प्रथम खिड़की के सामने खड़ा था। किन्तु अधिक भीड़ होने के कारण मैं दूसरी खिड़की से निकल गया। मेरी नियत कतई खराब न थी, किन्तु देखता क्या हूँ कि सरदार तत्काल वहीं आ पहुँचा। बोला—"क्यों बे? भागने का इरादा था?"

सरदार का यह वाक्य मर्मस्थल को वेध गया। इसके पूर्व जीवन में मैंने कभी इतनी पीड़ा का अनुभव नहीं किया था। चोट खाए हुए सिंह की भाँति तड़प कर रह गया।

मैंने सोचा, ग़लती सरदार की नहीं, मेरी है। यदि इसका ऋण मेरे ऊपर न होता, तो इसकी क्या मजाल थी, ज़ो इस तरह की बात कह जाता।

एक बात और आप से कह दूँ। यों तो सभी अपने को स्वाभामानी समझते हैं, किन्तु मैं इन सबसे अपने को आगे मानता हूँ और यही कारण है कि लोगों से मेरी कम बनती है। मैं समन्वयवादी नीति को अशक्तता का कारण मानता हूं। यदि किसी भी अवसर पर मुझे इस बात का संकेत मिल गया, कि यहाँ मेरे सम्मान को आघात लग रहा है, तो आप निश्चय मानिये मैं मारने-मरने को उद्यत हो जाता हूँ। झुकना तो मैंने जैसे सीखा ही नहीं। मेरा स्वाभिमान सर्प की मणि से कम नहीं है।

मैंने सरदार के कथन का तत्काल उत्तर देते हुए कह दिया—"सरदार! बारह नहीं बजे हैं। ज़रा अक्ल से बात किया करो। मैं रुपये हराम में नहीं लिये हैं, हर महीने सूद देता हूँ।"

सरदार मेरी तनी हुई भृकुटियों को देखते ही कुछ दब गया। बोला—"अच्छा! अच्छा, रुपये तो निकाल! अभी दो-तीन आदमियों से और मिलना है। तू तो बड़ी जल्दी गरम हो जाता है।"

सरदार की मुखाकृति इस क्षण अत्यंत विनम्र हो उठी थी। तभी मैंने कहा—"तुम गरम होने वाली बात ही करते हो। कब का बाकी है, जो इस तरह की बात करते हो। तुम यह क्यों भूल जाते हो, कि ये रुपये मैंने सम्मान की रक्षा के लिये ही लिये थे।"

"अच्छा, जा जल्दी कर!" इतना कह कर वह दूसरी खिड़की की ओर देखने लगा।

मैं उसे मात्र पचास रुपया ही देना चाहता था उस समय, किन्तु

ताव में आकर सौ रुपये दे दिये और कह दिया—"देखो भविष्य में यदि तुमने इस तरह की कभी बात की, तो अच्छा नहीं होगा।"

सरदार ने नोटों को गिन कर जेब में रखते हुए, मन्द स्वर में कह दिया—"चल, चल बड़ा इज्जत वाला बना है। इधर-उधर माँगता फिरता है, और कहता है मैं इज्जतदार आदमी हूं। उधार खाने वाले की भी कोई इज्जत होती है!"

सरदार इतना कह कर चार नंबर खिड़की की ओर उसी भाँति झपटा, जैसे कोई बाज़ अपने शिकार पर झपटता है।

मैं हारे हुए जुआड़ी की तरह शीश झुकाये चल पड़ा। किन्तु सरदार के उस वाक्य ने मेरे मन को छलनी कर दिया था। बार-बार वही वाक्य मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था—'उधार खाने वाले की भी कोई इज्जत होती है!"

कुछ दूर चलने के पश्चात् मेरे पाँवों में इतनी शक्ति न थी कि आगे बढ़ता। सड़क के किनारे लकड़ी की बनी हुई चाय की एक दूकान थी, मैं उसी में जाकर बैठ गया।

इतने में मेरे समीप एक वृद्ध ने आकर कहा—"चाय लाऊँ बाबू जी?"

लापरवाही से मैंने कह दिया—"ले आओ!"

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ? पर उस समय मैंने यह तो अवश्य ही निश्चय कर लिया कि रात भर भले ही कहीं कार्य करना पड़े, लेकिन इस ऋण से मुक्त होकर रहूंगा।

वृद्ध चाय रखते हुए बोला - "बाबू जी, पकौड़ी खायेंगे?"

मैंने झुँझलाते हुए कहा—"नहीं"

वृद्ध चला गया।

मैंने झुँझलाहट में कह तो दिया था कि 'नहीं, किन्तु उस समय भूख बड़े जोर की लगी थी।

इस 'नहीं' का भी अपना एक संदर्भ है। सरदार को रुपये देने के पश्चात् ही मैंने यह निश्चय किया था, कि अब सभी खर्च बन्द कर दूँगा।

यद्यपि इसके पूर्व सिगरेट पीता था, उसे छोड़ कर मैनपुरी तम्बाकू खाने लगा था। पान खाना मैंने कतई बन्द कर दिया था। खर्च के नाम पर मात्र चाय रह गयी थी, जिसे भी कई बार छोड़ने

उस दिन सरदार की गृद्ध-दृष्टि मुझ पर लगी थी। वह प्रथम खिड़की के सामने खड़ा था। किन्तु अधिक भीड़ होने के कारण मैं दूसरी खिड़की से निकल गया। मेरी नियत कतई खराब न थी, किन्तु देखता क्या हूँ कि सरदार तत्काल वहीं आ पहुँचा। बोला—"क्यों वे ? भागने का इरादा था ?"

सरदार का यह वाक्य मर्मस्थल को वेध गया। इसके पूर्व जीवन में मैंने कभी इतनी पीड़ा का अनुभव नहीं किया था। चोट खाए हुए सिंह की भांति तड़प कर रह गया।

मैंने सोचा, ग़लती सरदार की नहीं, मेरी है। यदि इसका ऋण मेरे ऊपर न होता, तो इसकी क्या मजाल थी, जो इस तरह की बात कह जाता।

एक बात और आप से कह दूँ। यों तो सभी अपने को स्वाभामानी समझते हैं, किन्तु मैं इन सबसे अपने को आगे मानता हूँ और यही कारण है कि लोगों से मेरी कम बनती है। मैं समन्वयवादी नीति को अशक्तता का कारण मानता हूं। यदि किसी भीं अवसर पर मुझे इस बात का संकेत मिल गया, कि यहाँ मेरे सम्मान को आघात लग रहा है, तो आप निश्चय मानिये मैं मारने-मरने को उद्यत हो जाता हूँ। झुकना तो मैंने जैसे सीखा ही नहीं। मेरा स्वाभिमान सर्प की मणि से कम नहीं है।

मैंने सरदार के कथन का तत्काल उत्तर देते हुए कह दिया—"सरदार ! बारह नहीं बजे हैं। जरा अक्ल से बात किया करो। मैं रुपये हराम में नहीं लिये हैं, हर महीने सूद देता हूँ।"

सरदार मेरी तनी हुई भृकुटियों को देखते ही कुछ दब गया। बोला—"अच्छा ! अच्छा, रुपये तो निकाल ! अभी दो-तीन आदमियों से और मिलना है। तू तो बड़ी जल्दी गरम हो जाता है।"

सरदार की मुखाकृति इस क्षण अत्यंत विनम्र हो उठी थी। तभी मैंने कहा—"तुम गरम होने वाली बात ही करते हो। कब का बाकी है, जो इस तरह की बात करते हो। तुम यह क्यों भूल जाते हो, कि ये रुपये मैंने सम्मान की रक्षा के लिये ही लिये थे।"

"अच्छा, जा जल्दी कर !" इतना कह कर वह दूसरी खिड़की की ओर देखने लगा।

मैं उसे मात्र पचास रुपया ही देना चाहता था उस समय, किन्तु

ताव में आकर सौ रुपये दे दिये और कह दिया—"देखो भविष्य में यदि तुमने इस तरह की कभी वात की, तो अच्छा नहीं होगा।"

सरदार ने नोटों को गिन कर जेव में रखते हुए, मन्द स्वर में कह दिया—"चल, चल वड़ा इज्जत वाला वना है। इधर-उधर माँगता फिरता है, और कहता है मैं इज्जतदार आदमी हूं। उधार खाने वाले की भी कोई इज्जत होती है!"

सरदार इतना कह कर चार नंवर खिड़की की ओर उसी भाँति झपटा, जैसे कोई वाज़ अपने शिकार पर झपटता है।

मैं हारे हुए जुआड़ी की तरह शीश झुकाये चल पड़ा। किन्तु सरदार के उस वाक्य ने मेरे मन को छलनी कर दिया था। वार-वार वही वाक्य मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट रहा था—'उधार खाने वाले की भी कोई इज्जत होती है!"

कुछ दूर चलने के पश्चात् मेरे पाँवों में इतनी शक्ति न थी कि आगे वढ़ता। सड़क के किनारे लकड़ी की वनी हुई चाय की एक दूकान थी, मैं उसी में जाकर वैठ गया।

इतने में मेरे समीप एक वृद्ध ने आकर कहा—"चाय लाऊँ वावू जी?"

लापरवाही से मैंने कह दिया—"ले आओ!"

मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ? पर उस समय मैंने यह तो अवश्य ही निश्चय कर लिया कि रात भर भले ही कहीं कार्य करना पड़े, लेकिन इस ऋण से मुक्त होकर रहूंगा।

वृद्ध चाय रखते हुए वोला - "वावू जी, पकौड़ी खायेंगे?"

मैंने झुँझलाते हुए कहा—"नहीं"

वृद्ध चला गया।

मैंने झुँझलाहट में कह तो दिया था कि 'नहीं, किन्तु उस समय भूख वड़े जोर की लगी थी।

इस 'नहीं' का भी अपना एक संदर्भ है। सरदार को रुपये देने के पश्चात् ही मैंने यह निश्चय किया था, कि अव सभी खर्च वन्द कर दूँगा।

यद्यपि इसके पूर्व सिगरेट पीता था, उसे छोड़ कर मैनपुरी तम्वाकू खाने लगा था। पान खाना मैंने कतई वन्द कर दिया था। खर्च के नाम पर मात्र चाय रह गयी थी, जिसे भी कई वार छोड़ने

का वादा कर चुका था, किन्तु छूट नहीं पा रही थी। इसका भी कारण था। टंकन करते करते मेरी अँगुलियाँ इतनी थक जाती थीं उनमें दर्द होने लगता था। कंधा, वक्ष और भुजाएँ भी अलसा जातीं! मन तो इससे पूर्व ही, अपनी स्वाभाविक स्थिति से दूर हो जाता। ऐसी स्थिति में चाहने पर भी, चाय नहीं छोड़ पा रहा था।

मन ही मन यह सोच कर कि जब मैं ही नहीं रहूंगा, तो कमाना धमाना किसके लिये और क्यों? अस्तु, इस निष्कर्ष पर पहुँचते हुए कि जीने के लिये स्वास्थ्य का ठीक रहना आवश्यक है मैंने बूढ़े से कह दिया—"एक प्लेट पकौड़ी लाना।

अब चाय का एक घूंट गले से नीचे उतारते हुए मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि अपने व्यय में जितनी कटौती मैं करता जा रहा हूँ, दिनानुदिन झरना का व्यय उससे कहीं अधिक बढ़ता जा रहा है मेरे मन में एक क्षण के लिये आया, झरना यह क्यों नहीं सोचती कि मैं कैसे जी रहा हूँ। वह यह भी तो जानती है, कि मैंने सीगरेट पीना इसीलिये छोड़ दिया है कि आजकाल मेरे पास पैसों का अभाव है। कई बार उसने यह भी कहा कि एक पेंट और क्यों नहीं बनवा लेते? इसका उत्तर मैंने सदैव हँसते हुए उसे दिया था—"बन जायगा!"

इस प्रसंग के मूल में भी एक मात्र यही कारण था कि झरना को मैं सदैव प्रसन्न रखना चाहता था। मैं नहीं चाहता था कि इस अर्थ-पिशाच का संकेत भी उसे मिले और उसके मुकुलित पुष्प पर उदासी की एक झलक भी दिखायी पड़े। वह जो चाहती, क्रय कर लाती थी! 'सौन्दर्य प्रसाधन गृह' और 'अभिनव वस्त्रालय' के मालिकों से उसका परिचय करा दिया था। जो कुछ भी झरना चाहती थी वे लोग दे देते और महीने के महीने बिल भेज देते। भुगतान बिला नागा मैं कर आता था। क्योंकि मुझे इस बात का भय लगा रहता था कि कहीं ऐसा अवसर न आ पड़े, जब झरना को वे कोई वस्तु देने से इनकार कर दें और उसके मन पर कोई आघात लगे।

चाय पीकर जब मैं होटल से निकला, तो मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, कि चक्कर खाकर मैं गिर पड़ूंगा। फिर भी मेरे पाँव रुके नहीं। आहिस्ता-आहिस्ता चलते रहे।

इतने में एक रिक्शा दिखाई दिया।

"ए रिक्शा वाले, रोकना।" मैंने आवाज़ दी!

रिक्शा रुक गया।

बिना तय किये मैं रिक्शे पर जा बैठा और मैंने कह दिया—"सिविल लाइन्स"!

रिक्शा चला जा रहा था। और मैं सोच रहा था—'पचहत्तर रुपये में मैं किसका-किसका भुगतान करूँगा? जबकि 'सौन्दर्य प्रसाधन गृह' वालों को ही कम से कम नहीं, तो चालीस के लगभग देने होंगे।'

उस दिन जीवन में मुझे सर्वप्रथम झरना पर झुंझलाहट हुई थी। वह यह क्यों नहीं सोचती कि वह एक गृहणी है? वह यह क्यों नहीं समझती कि मेरा स्वास्थ्य दिनानुदिन गिरता चला जा रहा है।

तभी मेरे मन में यह धारणा पक्की हो गयी, कि वह मुझे नहीं चाहती। वह पत्नी कैसी, जो पति के सुख-दुख को अपना सुख-दुःख न समझे। जबकि मैं उसे पान की भाँति फेरता रहना चाहता हूँ। मैंने उसके लिये क्या नहीं किया? वह जब व्याह कर आयी थी, तो मैट्रिक उत्तीर्ण थी रात-रात भर उसे चाय और काफी पिला-पिला कर मैंने इन्टर पास कराया। उसे जब नींद आने लगती थी, तो उसकी आँखें पानी से धोता था, ताकि वह जागती रहे। उसे एक-एक पाठ रटाता था और फिर सुनता था। दिन भर आफ़िस में कार्य करता और रात में उसे पढ़ाता था!

और आज वह बी. ए. प्रथम वर्ष में है यद्यपि उसकी इच्छा आगे पढ़ने की न थी। मैंने ज़बरदस्ती उसे कालेज में प्रवेश कराया। उसने एक दिन मुझसे कहा भी था कि देखती हूं काफी व्यय हो गया है। अब मैं पढ़ना बन्द कर दूंगी। अधिक पढ़कर क्या करना है?

उत्तर में मैंने उसके हाथों को अपने हाथों में लेते हुए कह दिया था—"झरना तुम्हीं मेरी हाँबी हो। जरा सोचो, इससे अधिक और क्या कह सकता हूं ...?"

मेरे इस कथन के पश्चात् उसने अपना शीश मेरी गोद में रख दिया था और वह मुझे ऐसी दृष्टि से निहार रही थी कि जैसे मैं उसमें समा जाउँगा।

तभी मैंने उससे कह दिया था……"तुम जितना पढ़ना चाहो, पढ़ो, व्यय की चिन्ता मत करो।"

कथन के पश्चात् उसकी केश-राशि को सहलाते हुए मैंने कहा—"झरना मैं सिर्फ़ तुम्हारे लिये जी रहा हूँ।"

किन्तु आज मैं ठीक विपरीत समझ रहा हूँ।

जिस समय रिक्शे से उतरा, मेरी आँखें भर आयी थीं। मैं सोच रहा था, जिस झरना के लिये मैंने सब कुछ किया, वही अब मुझे नहीं चाहती !

सीढ़ियाँ चढ़ कर ऊपर गया। देखा, कमरे के द्वार उढ़के हुए हैं, सम्मुख रेशमी परदा लहरा रहा है। एक क्षण कक्ष के भीतर न जाकर, वहीं ठिठक गया। क्योंकि दूसरा स्वर, जो सुनायी दे रहा था, पुरुप का था। मेरे ठिठकने का एक कारण और भी था। इसके पूर्व कभी मैंने द्वार उढ़के हुए नहीं पाये थे। जब कभी कार्यालय से आता दोनों द्वार खुले होते। झरना या तो कोई पुस्तक लेकर कुर्सी पर बैठी पढ़ती होती, अथवा रसोई घर में मेरे लिये चाय और पकोड़ी का प्रबन्ध करती होती।

उस क्षण मैं केवल इतना सुन पाया था—'सच' ?

यह स्वर झरना का था, जिसमें एक आश्चर्य था !

दूसरा स्वर पुरुष का था, जो उस स्वर के उत्तर में कहा गया था, किन्तु था अत्यन्त क्षीण। वह था—'क्या मुझ पर तुम्हें विश्वास नहीं है ?'

पुरुष के इस वाक्य में मुझे एक प्रकार की वासना की गन्ध आ रही थी। किन्तु 'सच' ठीक इसके विपरीत था। फिर भी मैंने दस-पाँच क्षण प्रतीक्षा की, किन्तु कुछ भी सुनायी न दिया।

इतने में मैंने आवेश में द्वार खोलकर कमरे के भीतर प्रवेश किया। किन्तु देखता क्या हूँ, वहाँ तो प्रकाश बैठा हुआ है : मुझे देखते ही तपाक से उसने कह दिया—"बड़ी देर लगा दी भाई साहब।"

"हाँ; आज थोड़ी देर हो गयी !"

झरना मुझे देख कर उस क्षण कुछ सकपका गयी थी, ऐसा मैंने अनुभव किया। किन्तु जब तक उसकी मुखाकृति को मैं पुनः देखूँ, वह वहाँ से उठ कर चली गयी थी।

प्रकाश के सम्मुख वाली कुर्सी पर मैं बैठ गया। मध्य में एक

छोटी सी टेविल थी जिस पर एक प्लेट में कुछ पकौड़ियाँ शेष रह गयी थीं। तभी झरना ने रसोई घर से आवाज़ दी—"आप हाथ धो लीजिए, मैं आपके लिये चाय ला रही हूं।"

इसी बीच प्रकाश ने कहा—"आज भाभी ने पकौड़ियाँ अच्छी बनायी हैं।"

किन्तु मैंने इसका कोई उत्तर न दिया। क्योंकि मेरा मस्तिष्क उस समय आर्थिक चिन्ता से ग्रस्त था। मैं सोच रहा था—'दूध वाला आ रहा होगा!'

"क्यों आज सुस्त कैसे दिखाई पड़ रहे हो?" प्रकाश ने प्रश्न किया।

"कोई खास बात नहीं है।" उत्तर में मैंने कह दिया।

इसी बीच झरना केटली में चाय लेकर आ पहुँची। बोली—"अभी तक आप योंही बैठे हैं। हाथ-मुँह तो धो लीजिये।"

केटली टेविल पर रख कर झरना मेरे निकट खड़ी हो गयी। मेरी दृष्टि एक बार उसके ऊपर के नीचे तक अंग-प्रत्यंग पर घूम गयी।

उस दिन जाने क्यों वह मुझे अत्यन्त सुन्दर लग रही थी। ऐसे नित्यप्रति का उसका यह नियम रहा है कि जब मैं आफिस से लौट कर आया हूं, वह टिप-टाप मिली है। वह प्रायः भोजन भी बना कर रख लेती थी। क्योंकि भोजनोपरान्त हम दोनों कहीं न कहीं घंटे आध घंटे के लिये घूमने अवश्य जाते थे।

झरना की आँखों में अपनी वासनात्मक दृष्टि डालते हुए मैंने उसकी हथेलियों का स्पर्श किया। किन्तु दूसरे ही क्षण उसने अपना हाथ दूर कर लिया। उस समय उसका यह कार्य मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई तितली, जिसे पकड़ने के लिये मैंने हाथ बढ़ाया, सहसा उड़ गयी हो।

"उठिए न?" ठुनकती हुई आवाज में झरना ने कहा।

कैसा तेवर था झरना के इस कथन में! सम्पूर्ण थकान, दर्द एवं चिन्ताएँ जैसे उसने एक वाक्य में पी लीं। मैं उसे खोया-खोया सा देख रहा था।

प्रकाश हम दोनों से लगभग दो वर्ष छोटा था। वह हम लोगों से इतना घुल-मिल गया था, जैसे हमारे घर का ही एक सदस्य हो।

बोला—"भाभी ! भाई साहब को तुमने गुलाम बना रखा है।"

झरना संकुचित हो गयी। किन्तु मैंने उत्तर में कह दिया—"प्रकाश ! तुम सही कहते हो। इन्हें देखते ही मैं सारी चिन्ताएं भूल जाता हूं।"

तभी झरना ने अधरों पर एक हल्की-सी मुसकान बिखेरते हुए कह दिया—"अच्छा रहने दीजिए ! उठिए हाथ-मुंह धोइए।"

बीच में ही प्रकाश बोल उठा—"किन्तु भाई साहब, इसका निर्णय तो कोई तीसरा ही व्यक्ति कर सकता है। क्योंकि भाभी जी का भी यही कथन है कि तुम्हारे भाई साहब को देखते ही मैं गुलाब की कली-सी खिल उठती हूं।"

मैं जिस समय गुसलखाने से हाथ-मुंह धोकर उठा, देखा, वहां आज तौलिया नहीं है। मैं झरना को पुकारने ही जा रहा था कि उसने वासनात्मक स्वर में कह दिया—"तैयार तो खड़ी हूं सरकार !"

अनुभूति को यथावत अभिव्यक्ति दे देना, मैं शब्दों की सामर्थ्य के बाहर की बात मानता हूं।

झरना का स्वर सुनकर मेरी जो दशा हुई उसकी अभिव्यक्ति दे पाना मेरे लिये बड़ा दुष्कर है; मैं उस समय अपने में नहीं था। इतना ही समझ लीजिये कि मेरे भीतर एक ज्वाला धधक उठी थी। यह भी मेरी इच्छा हुई कि झरना की बांह पकड़ कर उसे अपनी ओर खींच लूं। किन्तु तौलिया देने के बाद वह वहां से खिसक गयी थी। मैंने आवाज़ दी—"अरे सुनो तो सही !"

किन्तु उसने जाते-जाते कह दिया—"जल्दी आइये, चाय ठंडी हो रही है।"

मुझे उस समय एक हल्का-सा क्रोध आ गया था। मन-ही-मन मैंने कहा—"मेरी बात जरा सुन लेती, तो क्या हो जाता !

यदि प्रकाश वहां बैठा न होता, निश्चित था कि मैं उसके पीछे दौड़ता। किन्तु उस स्थिति में मैं मौन होकर रह गया।

जिस समय हाथ-मुंह धोकर मैंने कमरे में प्रवेश किया, झरना की मुखाकृति पर एक ऐसी मुस्कान थी, जिसमें चिढ़ाने का एक भाव था। जैसे कोई लड़की अपने समीप खड़े लड़के को आम दिखा-दिखा कर खा रही हो, और उसे रह-रह अंगूठा दिखा देती हो। किन्तु उसके इस कार्य से मेरे मन में चिढ़ न थी, अपितु एक हार्दिक सुख

था, उल्लास था।

चाय पीने के बाद झरना रसोई घर में चली गयी किन्तु जाते-जाते हम लोगों पर एक दृष्टि डालती गयी।

अब प्रकाश ने कुर्सी मेरे निकट खींच ली। गम्भीर मुद्रा बनाते हुए बोला—"देखो दीपक! तुम्हारी आर्थिक अवस्था दिनानुदिन बिगड़ती जा रही है। मैं चाहता हूँ कि कहीं कोई 'पार्ट टाइम काम कर लो, वरना यह गाड़ी चलेगी नहीं।

वह दानव जो कार्यालय के द्वार से मेरे घर तक साथ-साथ चल रहा था, और जिसे कुछ समय के लिये मैं विस्मरण कर चुका था, पुनः मेरे सम्मुख आ खड़ा हुआ। मेरी मुखाकृति सहसा गम्भीर हो उठी।

तभी प्रकाश ने कह दिया—"यों विशेष घबराने की बात नहीं है। फिर भी चिन्ता तो हमें होनी ही चाहिए।

"चिन्ता क्यों नहीं है मित्र।" मैंने एक ठंडी सांस लेते हुए कहा "किन्तु आज कल काम कहाँ धरा है?"

"काम कहाँ हैं इसकी चिन्ता क्यों करते हैं? मर तो नहीं गया हूँ। ये सारे 'सोर्सेज' किस दिन काम आयेंगे? जिस सेठ को इनकम टैक्स कमिश्नर से फोन करवा दूँगा, उसी को दो घण्टे का पार्ट टाइम काम निकालना पड़ेगा।"

"लेकिन, दिन में तो···? मैंने कहा।

"अरे, दिन के लिये नहीं, शाम को तो छः से आठ तक।" फिर इस कथन के पश्चात् प्रकाश ने कहा—"यों मैंने एक साहब से परसों बात की है। दो घण्टे के लिये वे पचास रुपये देने कह रहे थे, मैंने साठ कह दिये हैं। जहाँ तक आशा है ठीक हो जायगा।"

अब प्रकाश मेरे मुँह की ओर देखने लगा। कदाचित उसका आशय यह जानने का था कि इस संबंध में मेरे क्या विचार हैं।

उस समय, मैं एक ऐसी अथाह जलराशि में तैर रहा था जिसमें किसी क्षण भी डूब जाने का भय था। ऐसी स्थिति में मुझे देखकर सहानुभूति प्रदर्शित करने वालों की संख्या कम नहीं थी, किन्तु मुझे पूर्ण विश्वास था कि बाँह पकड़ने वाला प्रकाश के सिवा और कोई नहीं था।

दायें हाथ की हथेली पर चिबुक रखे मैं 'हाँ' न के आवर्त में

चक्कर काट रहा था, जिसकी किहुनी टेविल का अवलंब लिये खड़ी थी।

इतने में प्रकाश ने कह दिया—"क्या सोच रहे हो ?'

कथन के साथ ही प्रकाश ने कलाई-घड़ी पर दृष्टि डाली, फिर रसोईघर की ओर देखा।"

मैंने उत्तर में कहा—"कुछ नहीं यूं ही।"

"तो फिर चलूं' आठ बजे मुझे एस०पी० साहब से मिलने जाना है।' कल-परसों में उससे बात करके निश्चय कर लेता हूँ। यों उसे तय ही समझो। मुझसे हज़ारों काम बच्चू के पड़ते रहते हैं, छूटकर जायेंगे कहाँ ?"

इसी समय झरना आ गयी। उसे देखते ही प्रकाश को जैसे कोई भूली हुई बात स्मरण हो आयी। बोला—"हाँ, एक बात तो मैं भूला ही जा रहा था।" इसके पश्चात् झरना की ओर उन्मुख होता हुआ बोला—"बैठिए भाभी जी। आपसे भी कुछ बातें करनी हैं।"

झरना कुर्सी खींच कर मेरे पार्श्व में बैठ गयी। प्रकाश ने संबोधित करते हुए कहा—"भाभी जी, दिन भर बैठकर आप मक्खियाँ मारती होंगी ? प्रकाश के इस कथन पर मुझे हँसी आ गयी।

तभी झरना ने उत्तर में कह दिया—"मालूम होता है बी. ए. घूस देकर पास किया था ?"

प्रकाश हंस पड़ा। शीश हिलाता हुआ बोला—"ज़वाब अच्छा है।" इसके पश्चात् उसने कहा—"मैंने तो भाभी घूस नहीं दिया था लेकिन कितनी लड़कियों को विना पढ़े-लिखे किनारे लगवा दिया है।"

"धन्धा अच्छा है, कमा खाओगे किन्तु यहाँ तो पढ़ने से ही अवकाश नहीं मिलता।" झरना ने मुस्कराते हुए कहा।

"खिलाता कौन है भाभी जी ! काम बन जाने पर सभी चरका पढ़ा देते हैं।" इसके पश्चात् उसने आगे कहा—"यही मैं कहना चाहता था कि हमारे यहाँ एक अध्यापिका की आवश्यकता है, यों तो उसे प्रशिक्षित होना चाहिये, लेकिन सब चलता है। यदि आप थोड़ा समय निकाल सकें तो अच्छा रहेगा। भाई साहब की भी चिन्ता कम हो जायगी। आज कल इस मंहगाई के जमाने में सौ-डेढ़ सौ रुपये में होता क्या है ?"

प्रकाश इतना कह कर मेरे मुँह की ओर देखने लगा। किन्तु मेरी दृष्टि उस समय उमर खैयाम के उस चित्र पर गड़ी हुई थी, जिसमें वह अपनी प्रेयसी को गोद में लिये, उसकी आंखों की मदिरा अपने नेत्रों से पी रहा था। उसके समीप ही सुराही में मदिरा और पीने का पात्र रखा हुआ था।

उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, सुराही की मदिरा में वह नशा नहीं है, जो नारी की आँखों में है। अन्यथा उमर खैयाम वास्तविक मदिरा पीने के वाद प्रेयसी की आँखों की मदिरा क्यों पीता ?"

इसके वाद ही मेरी दृष्टि झरना पर जा टिकी, जो मेरे ही निकट वैठी थी। मन-ही-मन मैंने सोचा—'यह कदापि संभव नहीं है कि मेरी झरना नौकरी करे। नौकरी कैसी भी क्यों न हो, है तो अन्ततोगत्वा नौकरी ही। जिस समय आफ़िस से लौटूंगा, खिले हुए गुलाव का पुष्प मुरझाया दिखायी देगा। यह मुझसे नहीं होगा। भले ही दो घण्टे की अपेक्षा मुझे चार घण्टे 'पार्ट टाइम' कार्य करना पड़े।

तभी प्रकाश ने कहा—"क्यों भाभी जी, क्या ख्याल है ?"

मैं सोचने लगा, देखें झरना क्या उत्तर देती है।

इतने में झरना ने कहा—"इस सम्वन्ध में क्या कह सकती हूँ ? मेरे लिये पढ़ना अधिक जरूरी है। क्योंकि यदि तृतीय श्रेणी आयी, तो पढ़ना-लिखना सव व्यर्थ हो जायगा।"

"नहीं आप पढ़िए, मैं यह कव कहता हूं। मगर रात-दिन घोंटने वाले छात्रों के नम्वर कभी अच्छे नहीं आते, इतना समझ लीजिए।

मैं झरना को पढ़ा-लिखाकर उससे नौकरी कराऊंगा, यह कभी मेरे दिमाग में नहीं था। यह मेरा अपना एक स्वप्न था, जैसे अन्य लोगों के अपने-अपने स्वप्न होते हैं।

मुझे प्रकाश पर झुंझलाहट आ गयी। मन-ही-मन मैं सोचने लगा—"प्रकाश मुझे इतना गिरा हुआ क्यों समझने लगा ? क्या मैं पुरुष होकर अपनी आर्थिक स्थिति को सँभाल नहीं सकता ? हम मियाँ-वीवी दो ही प्राणी तो हैं। कौन-सी वड़ी वात है !'

तभी मैंने कह दिया—"नहीं प्रकाश, तुम क्या वात करते हो ? मैं झरना से नौकरी कराऊँगा ? तुम मुझे इतना गया गुजरा समझते हो·········!

वीच में ही वात काटता हुआ प्रकाश वोल उठा—"नौकरी

कराना कोई अपराध नहीं है भाई साहब ! यह तो समय की बात है। अन्यथा आप क्या समझते हैं भाभी को भला मैं नौकरी करने के लिये कहता ! क्या बात करते हैं ?"

"तुम्हारे जैसे देवरों से और क्या आशा की जा सकती है।" झरना ने मुस्कराते हुए कहा।

"देखिए भाभी जी !" प्रकाश मुस्कराता हुआ बोला—"मैं जीवन में यह कभी नहीं चाहता कि खिली हुई गुलाब की कली पर सूरज की किसी गरम किरन की झलक भी पड़े, आँच की बात तो बहुत दूर की है। कालेज आपका है, जब चाहे आइए, जब चाहे न आइए। लोगों को इतना भर विदित हो जाय कि अमुक अध्यापिका पढ़ाने के लिये रखी गयी है, बस। वैसे आप लोगों की इच्छा।"

कथन के पश्चात प्रकाश ने पुनः घड़ी देखी। उठ कर खड़ा हो गया। बोला—"अच्छा भाई साहब चलता हूं, नहीं तो देर हो जायगी।"

प्रकाश के जाते ही मैं पुनः अपनी आर्थिक समस्याओं के उधेड़-बुन में लग गया। झरना कुर्सी पर चुपचाप बैठी रही।

उस समय मेरा मन एकान्त की खोज में था। झरना से भी उस समय मैं दूर हो जाना चाहता था। किन्तु प्रतीक्षा थी उस दूध वाले की, जो पहली को पैसा न पाने पर शोर मचाने लगता था। और वह शोर-गुल उस समय मेरे सम्मानित जीवन के लिये एक आघात था, जिसे मैं सहन नहीं कर सकता था।

आज़ मैं सोचता हूँ मनुष्य कितना थोथा जीवन जीता है ! वह अपने आप को किसी प्रकार एक श्वेत आवरण में लपेट कर रखने का अभिलाषी है। जबकि उसके अन्तरमन का तार-तार चाक हो गया है।

मैं पूर्व ही बतला चुका हूं कि मात्र पचहत्तर रुपये मेरे पास शेष रह गये थे। उन रुपयों से महीने भर का उधार भी नहीं निपटा सकता था। फिर भी अपने सम्मान का मुझे विशेष ध्यान था। और वह भी झरना के समक्ष। क्योंकि अपनी आर्थिक स्थिति की कमज़ोरी को मैं उससे उसी प्रकार गोपनीय रखना चाहता था, जैसे कोई अपनी क्लीवता। किन्तु एक समस्या तो थी ही, जिससे मुझे निपटना था। दो-एक जगह मस्तिष्क दौड़ाया जहाँ से सौ-दो सौ रुपये यदि उधार

मिल जाँय, तो काम बन जाय, किन्तु ऐसा कोई भी व्यक्ति मेरी दृष्टि में न आया।

उस समय एक अजीब सी मनहूसियत मैं मन पर छायी हुई थी। मैं तत्काल कमरे से बाहर निकल जाना चाहता था। तभी झरना ने कह दिया—"क्या सोच रहे हो ?"

"कुछ नहीं, यों ही। आफिस में साहब ने आज एक लिपिक को बहुत डांटा था, जबकि उसकी कोई खास भूल नहीं थी……।"

इतने में झरना ने कुर्सी से उठ कर कमरे की ट्यूब लाइट जला दी। कक्ष प्रकाश से भर गया। किन्तु वह दूधिया रोशनी मेरी आँखों को दुःख रही थी मेरा मन रह-रह घबरा उठता था।

झरना जिस समय मेरे निकट आयी, दो बिल थमा दिये। एक था पैंतालिस रुपये का 'सौन्दर्य प्रसाधन गृह' का और दूसरा पैंतीस रुपये पनचानवे पैसे का 'अभिनव वस्त्रालय' का।

इन दोनों बिलों को देखते ही मेरी आँखों के सम्मुख अन्धकार छा गया। झरना पर बड़ा क्रोध आया, जो बनाव-शृंगार के लिये इस प्रकार बेरहमी से पैसा व्यय करती थी किन्तु उससे कहता क्या, यही मेरी सबसे बड़ी दुर्बलता थी।

मैं डर रहा था, झरना कहीं यह न सोचे कि मैं उन बिलो को देखकर ही घबरा गया हूँ, अथवा मेरे मन में किसी प्रकार का दुख है। मैंने तत्काल कह दिया—"ठीक है, कल भेजवा दुंगा।"

तभी झरना ने कह दिया—"बाबू सौन्दर्य प्रसाधन गृह वालों का नौकर कह गया है कि पैसे कल जरूर मिल जायँ।"

अब मुझ से न रहा गया। अन्दर की ज्वाला भड़क उठी। क्रोधावेश में कह गया—' कितने नीच हैं। वेतन पाते ही सालों का एक-एक पैसा चुकता कर देता हूँ, फिर भी मुझ पर यह लांछन ! कल ही पूछता हूँ।" इसके पश्चात् झरना की ओर उन्मुख होता हुआ मैंने कहा—"ठीक है, कल से इनके यहाँ से सामान लाना बन्द कर दो। मैं और कोई दूकान ठीक कर देता हूँ। वह दिन भूल गये, जब उसका मालिक कहता रहता था—"बाबू जी ! दूकान आपकी ही है, जो जरूरत हुआ करे, हुकुम दीजिए, मैं घर पहूँचा दिया करूँगा। आपको तकलीफ करने की जरूरत नहीं है। साला अब इस तरह की बातें करता है।"

इतने में दूध वाला बाल्टी में दूध लिये आ पहुँचा। बोला—"बाबू जी, नमस्ते।"

उत्तर में मैंने कह दिया—"नमस्ते चौधरी। कहो क्या हाल है?'

थके स्वर में चौधरी ने कह दिया—"ठीक ही है बाबू जी, किसी तरह जीवन कट रहा है और क्या कहें।"

"यही हाल सबका है चौधरी। बल्कि हमलोगों की दशा तो तुम लोगों से भी अधिक गयी बीती है।"

"ऐसा न कहो बाबू जी, आप लोग बड़े आदमी हैं।"

"चौधरी, यहीं तुम, हम लोगों को ग़लत समझते हो।" इसके पश्चात् मैंने एक गंभीर निश्वास लेते हुए कहा—"यह जो सफ़ेदी देख रहे हो, कोरी कृत्रिमता है अभी-अभी अस्सी रुपये के ऐसे दो बिल आ टपके हैं, जिनका मुझे गुमान भी न था। हालांकि उसकी जिम्मेदारी से मैं बच नहीं सकता। झरना वहाँ से कुछ साड़ी वगैरह ले आयी थीं।"

मैंने झरना का नाम जान-बूझ कर उसके सम्मुख लिया था। बल्कि यों कहना चाहिये कि उस पर मैंने प्रकारान्तर से व्यंग्य किया था, ताकि वह कुछ समझ सके कि मेरी वास्तविक स्थिति कैसी है।

इतने में झरना वहाँ से शीघ्र ही उठकर दूध का बर्तन लेने चली गयी।

मैंने इसी बीच अवसर पाकर चौधरी से कह दिया—"चलो नीचे पैसा देता हूँ।"

किन्तु जिस समय मैं ये शब्द कह रहा था, मेरी दृष्टि झरना की ओर लगी थी। उसके आते ही मैं खामोश हो गया।

दूध नापते हुए चौधरी बोला—"बाबू जी, कल घर से चिट्ठी आयी है। लिखा है—'बच्चों के कपड़े नहीं हैं। और मेरे पास एक भी साबुत धोती नहीं है। जल्दी से जल्दी दो जनानी धोती और बच्चों के कपड़े भेज दो।'

कथन के पश्चात् चौधरी ने दूध का नपना बाल्टी से लटका दिया। फिर वह उठ कर खड़ा हो गया और बोला—"अब बताइये बाबू मेहरिया ने तो बैठे-बैठे हुकुम चला दिया, मैं कहा से लाऊँ? इस मँहगाई में किसी तरह बच्चों का पेट पाल रहा हूँ। उसे क्या पता कितनी मुसीबतें झेलता हूं, तब चार पैसे बचते हैं। उसमें भी

तहसीलदार साहब की तरह, कोई बेइमान हुआ तो रकम मारकर चुपके से भाग जाता है।"

मेरे मन में आया—ऐसा देश कभी उन्नति नहीं कर सकता। तभी झरना ने कह दिया—"मेरी समझ में नहीं आती कि तुमने फिर ब्याह क्यों किया था चौधरी ? किसी भी एक नागरिक की धूर्तता सारे समाज में ज़हर फैला देती है। उस समय नहीं सोचा था ?" कि विवाह कितनी जिम्मेदारी का नाम है। लेकिन तुमको भी मैं क्या दोष दूँ ? यह कोढ़ तो अब घर-घर में फैल रहा है।

मै उस समय झरना के कथन का अभिप्राय समझ गया था कि वह क्या कहना चाहती है। किन्तु मैं चौधरी के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा था, जैसे कोई वकील उस गवाह से कहता है, जो न्यायाधीश के सम्मुख खड़ा हो, वह उसकी ओर टकटकी लगाकर केवल यह देखता है कि जो बयान उसे रटाया गया है वह सही कहता है या नहीं।

इतने में चौधरी बोल उठा—"आप लोग बड़े आदमी हैं, मैं आपसे क्या जबान लड़ाऊँ।"

"इसमें बड़े-छोटे की क्या बात है चौधरी ? जो सत्य है, वह सत्य ही रहेगा।" झरना ने विजयिनी की भाँति कह दिया।

मैं उस क्षण चौधरी के मुँह की ओर देख रहा था कि कहीं वह उत्तर देने में परास्त न हो जाय। क्योंकि वह पराजय उसकी नहीं, मेरी होती।

तभी चौधरी ने गंभीर होते हुए कहा—"अगर सच्ची बात कहलाना चाहती हो तो सुनो। शादी इसलिये भी नहीं की जाती कि आदमी को ज़हर खाने की नौबत आ पड़े।"

मैं मन ही मन चौधरी के उत्तर से प्रसन्न हो उठा, किन्तु मैंने अपने चेहरे पर कहीं भी उसका आभास झलकने न दिया। यद्यपि उस समय मैं पूर्णरूप से उल्लसित होकर हँसना चाहता था मैं चुपचाप आयी हुई प्रसन्नता को पी गया। इस भय से कि झरना कहीं यह न समझ बैठे कि यह सब कुछ उसी के लिए कहा जा रहा है।

किन्तु झरना कुछ खिन्न एवं उत्तेजित हो उठी। बोली—तुम्हारा मतलब मैं नहीं समझी चौधरी।"

चौधरी मुस्कराते हुए बोला—"अरे तो बबुआइन, इसमें मतलब क्या समझना है ! सीधी-सीधी बात है।" फिर क्षणभर बाद उसने

कहा—"बीवी ने वहाँ से दो धोती के लिए तो लिख दिया, पर यहाँ पैसे भी तो हों! किसी से उधार लें, तो उसका वर्षों ब्याज भरें। जितने की धोती नहीं, उतना ही ब्याज दें। उसको भी तो समझना चाहिए कि गृहस्थी कैसे चलायी जाती है। फिर एक समय की बात हो तो ठीक भी है। आये दिन एक न एक चिट्ठी आती ही रहती है और सदा उसमें कोई-न-कोई फरमाइश लिखी रहती है।"

इतने में मैंने चौधरी से कह दिया—"अच्छा चौधरी, भाषण बन्द करो; चलो मेरे साथ।"

तभी झरना ने वृश्चिक की भाँति डंक मार दिया—तो इतना तुम भी समझ लो चौधरी कि हाथी बाँधना आसान है, उसको संतुष्ट रखना बड़ा कठिन!"

गली के मोड़ पर पहुँच कर मैंने दूध वाले से कहा—"भाई-चौधरी, मैंने आज तक कभी तुम्हारा पैसा बाकी नहीं रखा। इस महीने में कुछ तंगी है। अगले मास में सब चुकता कर दूँगा"

"बाबू जी, ऐसा मत कीजिए। देखिए हम भी चूनी-भूसी सब उधार लाते हैं, और आप लोगों से वसूल करके जब उन्हें देते हैं। तभी फिर उनसे पाते हैं। नहीं तो आप जानो उधार कौन देता है!" इसके पश्चात् उसने कहा—"अगर आप लोग भी ऐसा करेंगे, तो हमारे जानवर भूखों न मर जावेंगे।"

एक दयनीय भाव से मैंने पुनः उससे कहा—"इस बार मान जाओ चौधरी आगे ऐसा कभी नहीं होगा।"

इतना कहकर मैंने उसकी खुरखुरी दाढ़ी का स्पर्श कर लिया।

किन्तु चौधरी टस से मस नहीं हुआ। बोला—"आपको मैंने अभी चिट्ठी की बात बतादी थी बाबू जी। लेकिन मैं कपड़े नहीं भेजूँगा। क्योंकि सबसे पहले मुझे उसे देखना है, जिससे मेरी रोटी चलती है।"

मैंने सोचा चौधरी मानेगा नहीं। तभी मैंने एक दूसरी युक्ति चलदी। कहा—"अच्छा ऐसा करो, पन्द्रह ले लो, शेष अगले महीने में ले लेना।"

"नहीं बाबू जी, मैंने निश्चय कर लिया है, और आपको बताया

भी है कि इसके आगे उधार नहीं दूँगा। चाहे कल से आप दूध बंद करदें।"

चौधरी के इन शब्दों को सुनकर मुझे घोर पीड़ा हुई। यद्यपि वह चौधरी अपनी जगह पर ठीक था। मैंने कहा—यही क्या कम है कि महीनें भर दूध उधार देता है।

तभी मैंने पेंट की जेब से दो दस-दस के नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ा दिये और कहा—"अच्छा चौधरी, ठीक है। ये बीस रुपये रख लो, शेष दस तारीख को ले लेना।

किन्तु चौधरी को इससे भी संतोष न हुआ। वह बोला—"लेकिन आप जानो दस को बाबू जी पैसे जरूर मिलजाने चाहिएं। मर्द की जबान एक होती है।"

चौधरी का अन्तिम वाक्य सुनकर मैं तैश में आ गया। बोला—चौधरी कैसी बातें करते हो ? मैंने कभी का तुम्हारा बकाया रखा है, जो इस तरह बेहूदी बातें करने लगे !

"बाबू जी इसमें बिगड़ने की क्या बात है ? आप मेरा पैसा दे दीजिए आप अपने घर खुश, मैं अपने घर।"

एक बार तो मन में आया, इसका सारा पैसा चुकता कर दूँ और कह दूँ—जाओ कल से दूध मत लाना। तुमने मुझे समझ क्या रखा है ? किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने सोचा, हरेक स्थान पर तैशबाज़ी से काम नहीं चलता। भावुकता मनुष्य का गला घोंट देती है। इसके पहले भी सरदार से मात खा चुका हूँ। अन्यथा सौ के स्थान पर उसे पचास देकर भी काम चलाया जा सकता था।

तभी मैंने चौधरी से कह दिया—"अच्छा-अच्छा, ले जाना। बस।"

चार

चौधरी को विदा करने के पश्चात् मैं सड़क पर आ गया था। रिक्शे, तांगें तथा मोटरों की खड़खड़ाहट एवं चीख पों से तबीयत और अधिक घबरा रही थी। एक अजीब सी बेचैनी और उदासी का मैं अनुभव कर रहा था। कहाँ जाऊँ, किधर जाऊँ, जहाँ घन्टे-

आध घन्टे के लिये मन को शान्ति मिल सके। एक स्थान पर अँधेरे में खड़ा-खड़ा यही सब सोच रहा था।

सड़क के दोनों किनारे पर बत्तियाँ जगमगा रही थीं, किन्तु मेरे लिये जैसे घोर अन्धकार था। इस समय मेरा मन प्रकाश से ऊब रहा था। मैं उस हिरन की भाँति भागकर कहीं अँधेरे में छिप जाना चाहता था, जिसके पीछे शिकारी कुत्ते दौड़ रहे हों !

एक गहरी निश्वास लेकर मैं सड़क के किनारे एक अँधेरी गली में घुस गया, जहाँ इसके पूर्व मेरे पाँव भूल कर भी कभी नहीं आये थे। उस गली को पार करते ही एक पार्क दिखायी दिया। मैं उसी पार्क में घुस गया। थोड़ी देर तक इधर-उधर ऐसे स्थान की खोज करता रहा, जहाँ कोई न हो। किन्तु ऐसा कोई स्थान मुझे दिखायी न दिया।

ग्रीष्म के दिनों में यों भी पार्क भरे रहते हैं, किन्तु उन मोहल्ले के पार्कों में और भी अधिक भीड़ होती है, जहाँ के मकानों में न तो वायु प्रवेश पा सकती है और न धूप। आस-पास के लोग इन्हीं पार्कों में रात्रि के बारह-एक बजे तक पड़े रहते हैं। एक प्रकार से उनके सम्मुख विवशता ही जीवन होता है।

फिर पार्क के एक किनारे जाकर मैं बैठ गया। थोड़ी दूर हट कर एक नव-विवाहिता दरी बिछाकर बैठी हुई थी। उसका पति लेटा हुआ था। दोनों का आपस में मधुर-मधुर वार्तालाप चल रहा था।

सामान्य स्थिति में होता, तो चुपचाप मैं अन्तरंग कथाओं का रसपान करता रहता, पर उस समय यह दृश्य देखकर मुझे अत्यन्त पीड़ा हुई। यह पीड़ा मेरे एकाकीपन की नहीं थी। यद्यपि उस समय एक बार झरना का स्मरण आया अवश्य था; किन्तु नहीं, यह पीड़ा आज के उस मानव को देखकर हुई थी, जिस के पास इतना भी साधन नहीं है कि वह अपनी नवविवाहिता पत्नी से एकान्त में वार्ता कर सके। इन्सान होकर भी वह पशु का-सा जीवन व्यतीत करने के लिये विवश है।

दोनों प्राणी मुझे देखकर किंचित सकपकाये भी थे। शायद उन्होंने यह भी सोचा हो कि मैं कहाँ से आ टपका !

तभी मैं वहाँ से उठकर चला आया था।

अब मैं पुनः सड़क पर आ गया। शनैः-शनै मेरे पाँव गंगा की

ओर बढ़ रहे थे। इस समय मुझे झरना का वह कथन स्मरण हो आया, जो उसने चौधरी से कहा था—"चौधरी हाथी बाँधना आसान है, किन्तु उसको संतुष्ट रखना कठिन है।' उसने यह भी कहा था—"फिर व्याह क्यों किया था चौधरी ?"

इन वाक्यों को बार-बार मैं दुहरा रहा था। मुझे एसा प्रतीत हो रहा था, जैसे ये वाक्य मेरे लिये, केवल मेरे लिये थे।

तभी मेरे मन में आया, क्या कभी ऐसा अवसर आया है, जब मैंने किसी वस्तु के लिये झरना का मन दुखाया हो। अपने को गिरवी रख कर, मैंने उसे खुश रखने की सदैव चेष्टा की है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उसके जीवन में कोई अभाव हो। यह भी संभव है कि वह मेरी आर्थिक स्थिति को भलीभाँति जानती हो और यह सोचती हो कि पौने दो सौ रुपये पाने वाला लिपिक उसे क्या सुख दे सकता है।

किन्तु इससे भी अधिक संदेह मुझे इस बात पर था कि झरना किसी अन्य से प्रेम करने लगी है। अब वह मुझे नहीं चाहती। अन्त में इसी विन्दु पर पहुँच कर मुझे कुछ संतोष मिला।

अब मैं सोचने लगा कि थोड़े ही दिनों बाद शायद वह मेरी नहीं रह जायगी। क्योंकि जिस स्वर में उसने कहा था—"फिर व्याह क्यों किया था चौधरी ? उस समय नहीं सोचा था ?"

हूँ, तो उसमें एक तेवर था, चुनौती थी। हो न हो, ऐसा भी हो सकता है कि वह मुझे आर्थिक दृष्टि से सब प्रकार से हीन और तुच्छ बनाकर मुझे छोड़ देना चाहती है।

इसके साथ ही साथ उसमें जैसे एक आत्मनिर्भरता भी आ गयी थी। और नारी में आत्मनिर्भरता तभी आती है, जब आर्थिक दृष्टि से वह परमुखापेक्षी नहीं रहती।

तो मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे झरना के प्रेमी ने उसे आश्वासन दे दिया है, कि तुम्हें किसी बात की किंचित चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। तुम इन्टर उत्तीर्ण हो, मैं तुम्हें कहीं न कहीं सौ-डेढ़ सौ की नौकरी तो दिलवा ही दूँगा और उस समय हम तुम स्वच्छन्द पंछी की भाँति वसुन्धरा की गोद में विचरण करेंगे। हम हवा से बातें करेंगे, आकाश में बादलों की भाँति घूमेंगे-दौड़ेंगे। और जब किसी तरह मन नहीं मानेगा तो क्रीड़ा कौतुक में लय हो-

होकर जीवन का अमृत लूटेंगे, लुटायेंगे, अमृत पान करेंगे।

आप कह सकते हैं कि मैं संदेहशील व्यक्ति हूँ, किन्तु ऐसी बात नहीं हैं। यदि आप मेरी स्थिति में होते, तो शायद इससे अधिक सोचते।

किसी घटना के आधार सहसा दिखायी नहीं देते। किन्तु उसकी एक धुँधली आकृति का आभास होने लगता है। यही तथ्य मेरे और झरना के साथ भी संपृक्त थे। जिस समय प्रकाश 'पार्ट टाइम' कार्य करने की बात कह गया था, मैंने मन ही मन में निश्चय कर लिया था कि अवश्य स्वीकार कर लूँगा। किन्तु अब सोचता हूँ कि मैं यह कार्य किस के लिये करूँ?

इसी क्षण मेरे मन में यह विचार भी आया कि आज झरना से चलकर स्पष्ट क्यों न कर लूँ! आखिर इस पीड़ा को कब तक ढोता फिरूँगा?

इस निष्कर्ष पर पहुँचते ही मेरे पाँव घर की ओर तीव्रगति से उठने लगे।

उस समय मेरे मन में एक उल्लास था। किसको क्या देना है, इन सब बातों की चिन्ता से मेरा मानस व्योम स्वच्छ हो रहा था।

जिस समय मैं घर पहुँचा, रात्रि के दस बज चुके थे। किन्तु द्वार खुले थे। कमरे की बत्ती जल रही थी। द्वार खुला देखकर मुझे आश्चर्य हुआ। आश्चर्य की बात इसलिये कह रहा हूँ कि झरना आठ बजे रात्रि के बाद द्वार खोलकर कभी नहीं बैठ सकती थी। नारी यों भी प्रकृति से भीरू होती है, किन्तु झरना के लिये तो अत्यन्त विशेषण जोड़ना आवश्यक हो जाता है।

दरवाजे के सम्मुख पर्दा लटक रहा था। टेबिल की पश्चिम दिशा में द्वार की ओर मुँह किये झरना बैठी थी। उसके सामने वाली कुर्सी पर बीस बाईस वर्ष का एक स्वस्थ युवक बैठा हुआ था जिसकी पीठ मुझे दिखायी दे रही थी। यों तो दोनों आपस में वार्ता कर रहे थे किन्तु युवक अधिक बोल रहा था। झरना बीच-बीच में 'हाँ ना' करती जा रही थी। मैंने इसके पूर्व इस युवक को यहाँ कभी नहीं देखा था।

उस दृश्य को देखकर मेरी भृकुटियाँ खिच आयीं और मेरी साँसें ऊर्ध्वमुखी हो उठीं।

मैंने ज्यों ही पर्दे को हटा कर कमरे में प्रवेश किया, झरना कुछ सकपकाई, किन्तु शीघ्र ही मेरी ओर संकेत करते हुए कह दिया—'लीजिए आ गये।"

युवक कुर्सी से उठ कर खड़ा हो गया। युगल कर जोड़ते हुए कहा—"नमस्कार भाई साहब।"

मैंने एक झटके के साथ नमस्कार का उत्तर देते हुए कह दिया—"नमस्कार"।

झरना मेरे मुँह की ओर देख रही थी। उस क्षण मेरे मुख की नसों में एक तनाव-सा आ गया था।

एक बार मैंने उस युवक की ओर देखा, जो अभी तक खड़ा था। वह टेरीलीन की बुर्शट और डाइक्रोन का पेंट पहिने था। छल्लेदार केश थे। रेखें उठ रही थीं। गेंहुआ रंग था, स्वस्थ शरीर मांसल भुजाएँ। कुल मिला कर उसे एक ऐसे सुन्दर युवक की संज्ञा दी जा सकती थी, जिसके सौन्दर्य पर कोई भी लड़की रीझ सकती थी। संभवत: वह एम० ए० का छात्र-सा मुझे दिखायी पड़ा। इसके पूर्व उस चेहरे का व्यक्ति मैंने कभी नहीं देखा था।

इसके पश्चात् मेरी दृष्टि झरना पर चली गयी, जो एक अपराधिनी जैसी मौन खड़ी थी।

मन ही मन मैंने कहा—"हूँ, यह माजरा है।

"कहिए, क्या काम है ?" रूखे स्वर में मैंने उस तरुण से प्रश्न किया, जो अभी तक खड़ा था।

तभी झरना ने उससे कह दिया—"बैठ जाइये।"

किन्तु युवक कुर्सी पर नहीं बैठा। उसके चेहरे के भावों से ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह मुझे अशिष्ट समझ रहा है।

इतने में उसने कहा—"मैं 'अभिनव वस्त्रालय' से आया हूँ...।"

'अभिनव वस्त्रालय' का नाम सुनते ही मेरे सम्पूर्ण शरीर में जैसे आग लग गयी। मैं कुछ कहने ही जा रहा था कि तभी तरुण ने आगे कहा—"पिता जी ने रुपये के लिये भेजा है। कल उन्हें माल लेने के लिये दिल्ली जाना है।"

मैंने ताव में आकर कह दिया—"क्या मेरे ही रुपये से सारा माल आयेगा ? उन्हें शर्म नहीं आती, जो तक़ाज़ा करने के लिये आपको भेज दिया है।"

युवक में अपनत्व का रुधिर जैसे गरम हो उठा। बोला—"इसमें शर्म की क्या बात है ? आप पर रुपये निकलते हैं, इसीलिये उन्होंने भेजा है।"

"यह तो मैं भी जानता हूँ। लेकिन जब उन्हें दो तारीख को रुपये दे आता हूँ, तो फिर आपको भेजने की क्या आवश्यकता थी ?"

इसके बाद मेरा पारा और अधिक चढ़ गया। मैंने कहा—"वह दिन भूल गये जब मिन्नतें किया करते थे कि बाबू जी हमारी दूकान से कपड़ा लिया करें। पैसों की कोई बात नहीं, आगे-पीछे मिल ही जायेंगे।"

कदाचित युवक के स्वाभिमान को मेरे 'मिन्नतें' शब्द से एक आघात लगा। वह बोला—"इसमें मिन्नत की क्या बात है ? शिष्टाचार में निकले हुए शब्द को यदि आप मिन्नत समझते हैं, तो मैं क्या कहूँगा, आप ग़लती पर हैं।

युवक का इस कथन का उत्तर देने के पूर्व मैंने उससे प्रश्न किया—"तुम उनके कौन हो ?"

"पुत्र।"

युवक के स्वर में दृढ़ता थी और था एक तरुण स्वाभिमान।

उस युवक की दृढ़ता देखकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई चोर जिन गृहस्वामी के यहाँ चोरी करे, उसी को डाट बताने में गौरव समझे।

तभी मैंने क्रोध में आकर झरना से कहा—"कहाँ है वह बिल ?"

झरना मेरा स्वर सुनकर भयभीत हो उठी।

ये है।" बिल लाकर मेरे हाथ में देते हुए उसने कहा—

पैंट की जेब से मैंने रुपये निकाले और युवक को देते हुए कह दिया—"खबरदार ! आइन्दा मेरे घर में कदम मत रखना।" इसके पश्चात् झरना की ओर उन्मुख होते हुए कहा—"अब तुम भी सुन लो, कल से एक पैसे का सामान इनके यहाँ से नहीं आयेगा। समझ गयी ?"

युवक ने रुपये सँभाल कर जेब में रख लिये। जब वह चलने लगा, मैंने उसे सुना कर पुनः कहा—"इन्हीं के एक दूकान नहीं है। सैकड़ों मिन्नतें करते रहते हैं······।"

झरना थोड़ी ही देर पश्चात् सो गयी। किन्तु मुझे नींद नहीं आ रही थी। 'अभिनव वस्त्रालय' के बिल के भुगतान के बाद मेरे पास उन्नीस रुपये शेष रह गये थे, जबकि अभी सैकड़ों का भुगतान बाकी था। किन्तु इससे भी अधिक समस्या थी राशन की। घर में न चावल था, न दाल।

क्लर्कों को यदि पहली को वेतन न मिले, तो उन्हें कितनी पीड़ा होती है, इसका अनुमान लगाना सामान्य लोगों की सीमा के बाहर की बात है। उस दर्द और छटपटाहट का अन्दाज़ वही व्यक्ति कर सकता है, जो भुक्तभोगी हो। ये बेचारे पहली तारीख के आगमन की प्रतीक्षा उसी भाँति करते हैं, जैसे कृषक आषाढ़ के बादलों की करता है।

यद्यपि वेतन में उनके पास पहली तारीख को कर्ज़ का भुगतान करने के बाद बहुत ही कम बचता है, फिर भी उधार का रास्ता खुल जाता है। इस तरह ज़िन्दगी की गाड़ी चलती है।

मैं चारपाई पर लेटा-लेटा अँधेरे में करवटें बदल रहा था, किन्तु मुझे कोई मार्ग सुझाई न दे रहा था। यदि कल 'सौन्दर्य प्रसाधन गृह' का भी रुपया न पहुंचा, तो कोई न कोई तगादगीर अवश्य आ धमकेगा और परचून वाले को कुछ न मिलेगा, तब तो वह कल से सामान देना ही बन्द कर देगा!

एक अजीब सी परेशानी में मेरी वह रात गुज़र रही थी। एक बार का रोना हो, तो कोई बात नहीं, पर हरएक मास के दिन इसी तरह गुज़रते रहे थे। तभी मैंने मन-ही-मन कहा—"आखिर इस भाँति जीवन कैसे कटेगा?"

इसी क्षण मुझे प्रकाश की बातों का स्मरण हो आया। मैंने सोचा—'दो घंटे के यदि साठ रुपये मिलते हैं, तो क्या बुरे हैं! मुझे वह कार्य स्वीकार कर लेना चाहिये। कुछ राहत तो मिल ही जायगी। डूबते को तिनके का सहारा काफ़ी होता है।'

इस विचार से, मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं अँधेरे में डूब रहा था— पर अब धुंधलके में किनारे किनारे लग जाऊँगा।

फिर अकस्मात प्यास लग आयी। चारपाई से उठकर बत्ती जलायी। सुराही से दो गिलास शीतल जल पीकर मैं पुनः अपनी चारपाई पर आकर बैठ गया। बत्ती अब भी जल रही थी। झरना निद्रा में

डूबी हुई थी। उसकी केशराशि अस्तव्यवस्त हो गयी थी। किन्तु इस अस्त-व्यस्तता में भी उसका सौन्दर्य निखर उठा था। सांसें लेते क्षण उसका वक्ष कभी ऊपर आता कभी नीचे जाता। ब्लाउज उसने ऐसी कट का पहन रखा था, जिससे उरोजों का सन्धि-स्थल स्पष्ट दिखायी दे रहा था। अब तक मैंने उसका नग्न सौन्दर्य नहीं देखा था। यद्यपि मैंने कई बार चेष्टा भी की थी, किन्तु वह इतनी लाजवन्ती थी कि उसने इस दिशा में मुझे कभी लिफ्ट नहीं दी। मैंने इस प्रसंग में अपने प्रयोगवादी मित्रों के दाम्पत्य जीवन की चर्चा भी की थी। बतलाया था कि वे लोग अनावृत्त सौन्दर्य की बड़ी प्रशंसा करते हैं किन्तु उसने कभी मेरी बात स्वीकार नहीं की। उल्टे उसने यही कहा कि, 'आपके मित्र कितने निर्लज्ज हैं, जो अपनी स्त्रियों की बातें आप लोगों को बतला देते हैं।

मैंने उत्तर में एक बार उससे यह भी कहा था—"जब हम तुम एक हो गये, तो फिर पर्दा कैसा? यदि पर्दा ही रखना होता तो, एक अपरिचित लड़की दूसरे के हाथों में क्यों सौंप दी जाती है?"

इसका उत्तर देते हुए झरना ने कहा था—"ब्याह कर देने का फिर यह भी तात्पर्य नहीं है कि नारी अपनी सुन्दरतम धरोहर (लज्जा) का भी परित्याग कर दे।"

मैंने इस दिशा में अनेक प्रयास किये, किन्तु आप से सच कहता हूँ, कभी मुझे सफलता न मिली और इस बात की लालसा मेरे मन में सदैव बनी रही कि कभी तो ऐसा अवसर आ जाता क्योंकि मेरे मित्र कहा कहते थे, देहरसपान का सही सुख दोनों को उसी अवस्था में प्राप्त होता है।

झरना को प्रगाढ़ निद्रा में देख कर मेरे मन में आया कि ब्लाउज का बटन खोलकर, आज उसके गुप्त सौन्दर्य को तबियत से देख लूँ।

अभी दो ही बटन खुल पाये थे कि झरना चिल्ला उठी—"तुम मुझे भी मार डालोगे। मुझे छोड़ दो, जाने दो।"

मैं घबरा उठा। मेरे होश हवाश उड़ गये। मैंने उसे झकझोर कर जगाते हुए कहा—"झरना! झरना! क्या बात है?"

झरना घबरा कर उठ बैठी। उसकी आँखों में भय समाया हुआ था। वह मुझे ऐसे देख रही थी, जैसे घायल हिरनी किसी बहेलिये

को देख रही हो।

मैंने कहा—"क्या बात हो गयी ?"

कथन के बाद मैंने उसे अपने अंग में भर लिया; किन्तु उसका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काँप रहा था। वह मेरे मुँह को अपलक निहार रही थी। तभी उसने कहा—"कुछ तो नहीं !"

और इतना कह कर उसने अपने मुँह को मेरी गोद में छिपा लिया।

किन्तु मेरे मस्तिष्क में बार-बार झरना का वह कथन गूँजता रहा 'तुम मुझे मार डालोगे।'

पांच

प्रातः उठते ही झरना से मैंने उस स्वप्न की चर्चा की। किन्तु उसने स्पष्ट कह दिया "मुझे और तो कुछ भी स्मरण नहीं, हाँ इतना अवश्य स्मरण है कि मैं आपकी गोद में लेटी हुई थी।"

हो सकता है, झरना के लिये वह स्वप्न एक साधारण-सी बात रही हो, किन्तु मेरे लिये एक 'वारंट' था। मैं दिन भर कार्यालय में उसके इस स्वप्न पर मन-ही-मन विचार करता रहा। आखिर, उस ने यह क्यों कहा—"तुम मुझे मार डालोगे ?'

पहले तो मैंने सोचा, झरना के अचेतन मन में उस दिन की पिक्चर का प्रभाव अभी तक बना है। उसके मन में एक भय समा गया है कि कहीं मैं भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार न करूँ, जैसा कि पिक्चर के नायक ने अपनी पत्नी के साथ किया था। किन्तु यह बात कुछ जमती नहीं थी। क्योंकि मैंने उसे जितना प्यार दिया था, शायद ही कोई पति अपनी पत्नी को देता है। ऐसी स्थिति में उसे मुझसे भयभीत होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

संध्या समय जब मैं आफ़िस से लौट कर आया, तो प्रकाश कमरे में बैठा हुआ झरना से बातें कर रहा था। मुझे देखते ही बोला—"आइये भाई साहब।" कथन के पश्चात् वह बोला—"साठ रुपये में तय हो गया। मैंने लाला जी से कहा—'लाला जी आप मुझे नहीं जानते कभी हज़ारों का लाभ करा दूँगा, आज आप साठ

रुपये देने में आना-कानी कर रहे हैं।"

तब जाकर लाला जी ने कहा—"अरे प्रकाश भाई, मैंने आपकी बात कब टाली है ? आप मालिक हैं सरकार जो चाहे, सो करें।"

इस बीच प्रकाश से मैंने कहा—"कितनी देर हुई आये ?"

"अभी दो-तीन मिनिट हुए। भाभी चाय के लिये कह रही थीं, मैंने कहा नहीं भाई साहब आ रहे होंगे, साथ ही पियेंगे।।"

इतने में झरना चाय की ट्रे लेकर आ पहुंची। मेज़ पर रखते हुए उसने मेरी ओर संकेत करके कहा—"बाबू कपड़े तो बदल लो।

"क्या कपड़े भी बदलने हैं......?" कह कर हाथ-मुँह धोने के लिये मैं गुसलखाने की ओर बढ़ गया।

चाय पीते समय झरना के स्वप्न की बात मैंने प्रकाश से कही। उसे सुनते ही मैंने अनुभव किया कि प्रकाश की मुखाकृति पर एक कालिमा की छाया भी दौड़ गयी थी। वह भी क्षण भर के लिये भयभीत हो उठा था।

तभी उसने तपाक से निर्भीक होकर कह दिया—"आपने भी कमाल कर दिया भाई साहब ! इस युग में भी अन्ध विश्वासों में आप इस भांति जकड़े हुए हैं। आपने तो हद कर दी।"

कथन के पश्चात् वह पकौड़ी उठा कर खाने लगा। तभी मैंने चाय का एक घूँट कंठ से नीचे उतारते हुए कहा—"इसमें अन्ध-विश्वास की क्या बात है। स्वप्न का हमारी उन भावनाओं से संबंध होता है जो किसी भय के कारण अचेतन मन में पड़ी रहती है।

झरना ने इसी बीच मेरी ओर संकेत करते हुए कहा—"बाबू मैंने स्वप्न क्या देखा, आप तो मेरी पूरी शल्य चिकित्सा करने पर तत्पर हो गये।" फिर मुस्कराते हुए युगल कर जोड़कर वह बोली—"क्षमा करो देवता, और तो कोई बात नहीं है ?

"हरे भाई साहब, हटाइये। आपने भी क्या 'मूड आफ' कर दिया।" प्रकाश ने तत्काल कह दिया।

चाय के दूसरे दौर के लिये केटली में पानी नहीं था। झरना उठकर चाय का पानी लेने चली गयी।

उपयुक्त अवसर देखकर मैंने प्रकाश से कहा—"कुछ रुपये चाहिए आज।"

"क्यों ?" प्रकाश ने आश्चर्य से पूछा—"तनख्वाह नहीं मिली

क्या ?"

एक निःश्वास लेते हुए उत्तर में कह दिया—"तनख्वाह मिली और समाप्त हो गयी। आजकल क्या प्रतिमास यही दशा रहती है।

"अच्छा !" प्रकाश ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

'नहीं तो क्या, तुम से मिथ्या बोल रहा हूँ।" इसके पश्चात् हाथ की दाहिनी कोहनी को बाँयी हथेली से रगड़ते हुए मैंने कहा—"अपनी भाभी के खर्चे तो तुम जानते ही हो। खुला हाथ ठहरा। मैं रोकना भी नहीं चाहता। सोचता हूँ क्यों उसके दिल पर चोट लगे।"

प्रकाश ने गम्भीर होते हुए कहा—"खैर, रुपये तो मिल जायेंगे मगर भाई साहब इस तरह कैसे काम चलेगा ? आपको अतिरिक्त आय का कोई माध्यम तो बढ़ाना ही पड़ेगा। आज के युग में साधारण नौकरी से पूरा नहीं पड़ सकता।"

रुपये का आश्वासन पाते ही मेरे मन में एक उत्साह आ गया। अभी तक मेरा चेहरा जो आर्थिक चिन्ता की ज्वाला से काफ़ी झुलस गया था, जल के छींटें पड़ते ही हरा हो गया।

मैंने कहा—"तुम्हारी बात सोलह आने सही है प्रकाश। इसीलिये बहुत सोच-विचार करने के बाद मैंने 'पार्ट टाइम' काम करने की बात निश्चय कर ली है। वरना आप जानते हैं गाड़ी नहीं चलेगी।"

"आप क्या समझते हैं ? मने स्कूल कोई शौक के लिये खोला था। प्रारम्भ में थोड़ी परेशानी जरूर हुई थी। मगर अब वही काम धेनु बन गया है। स्कूल चलाना अब अच्छा खासा धंधा बन गया है। मगर हरेक काम में थोड़ी अक्ल की आवश्यकता पड़ती है। बिना किसी प्रलोभन या आश्वासन के चन्दा कोई नहीं देता।

उसी समय केटली में पानी लेकर झरना आ गयी। प्रकाश ने उसके हाथ से केटली ले ली और कहा—"भाभी आप बैठिए। इस बार मुझे सेवा करने का अवसर दीजिए।"

इतना कह कर प्रकाश चाय बनाने लगा।

चाय का एक घूँट पीते हुए वह बोला—"भाभी जी को आप मेरे यहाँ क्यों नहीं भेज देते ? आख़िर सौ रुपये वह खूसट ले जाती है, जिसको पढ़ाने की भी तमीज़ नहीं है। घर में बैठे-बैठे दिन भर

मक्खियाँ मारने से तो अच्छा है। बच्चों में तबीयत भी इनकी बहली रहेगी।"

मैं झरना के मुँह की ओर जिज्ञासु होकर देखने लगा मैं सोचता था—शायद वह कुछ कहेगी, क्योंकि मेरी इच्छा थी कि वह उसे स्वीकार कर ले। बात यह थी कि अब मुझे विश्वास हो गया था इस प्रकार उधार खा-खाकर जीवन व्यतीत नहीं होगा ?

साथ ही लेनदार के तकाज़ों से मैं परेशान हो उठा था। ऐसे ऐसे लोगों की दाढ़ी छूनी पड़ती थी, बात करना तो दूर रहा जिनकी शक्ल भी देखने की तबियत नहीं होती।

किन्तु झरना मौन बैठी रही।

तभी प्रकाश ने कहा—"क्यों भाई साहब, क्या ख्याल है ?"

"भाई' इस सम्बन्ध में मैं क्या कह सकता हूँ। अपनी भाभी से पूछो।" मैंने उत्तर में कह दिया।

झरना ने मुस्कराते हुए तत्काल उत्तर दिया—"वह फ्रांस अमेरिका तो नहीं है। यह है आदर्शों का देश भारतवर्ष। यहाँ पतिदेव की इच्छा ही पत्नी की इच्छा है तभी तो पहिये की गाड़ी चलती है, जिसे बैल बनकर ही चलना पड़ता है। मैं उसी भारतीय संस्कृति में पत्नी एक हिन्दू नारी हूँ श्रीमान की आज्ञा मुझे शिरोधार्य है।

"वाह भाभी तुमने तो कमाल कर दिया।" प्रकाश ने हंसते हुए कहा—"अब तो स्कूल में नौकरी करने की अपेक्षा, मैं कहूँगा तुम सिनेमा में भरती हो जाओ! 'डायलाग' अच्छा बोल लेती हो।"

झरना प्रकाश के इस कथन से तनिक संकुचित हो उठी। यों तो मुझे उस समय हँसी आ गयी थी। किन्तु मैंने अपने को संयत करते हुए कह दिया—"नहीं झरना ! तुम्हारी जैसी इच्छा हो।"

मेरी कोई इच्छा नहीं है।" शीश हिलाते हुए उसने कहा—"मैंने तो पहले ही आप से कह दिया।"

"अच्छा प्रकाश रहने दो। हम लोग आज रात में इस समस्या पर विचार करेंगे तब बतायेंगे।"

"भाई साहब, आप रात में तय करेंगे, पर वहाँ तीन दिन हो गये कोई अध्यापिका नहीं है। कल सुबह मुझे किसी न किसी को रखना आवश्यक है। क्योंकि अध्यापिका के न होने से उस कक्षा के छात्र दूसरे छात्रों को 'डिस्टर्ब' करते हैं।"

कथन के पश्चात् उसे खाँसी आ गयी। फिर जेब से रूमाल निकाल कर मुँह पोंछते हुए उसने आगे कहा—"और यही सब प्रबंध देखना सेक्रेटी का प्रमुख कार्य होता है। वरना, स्कूल-कालेज ऐसे कुप्रबंध में दो दिन में बन्द हो जायें! कौन अपने बच्चों को ऐसे स्कूल में भेजना पसंद करेगा, जहाँ अध्यापिका न हो। आप लोगों को जो कुछ तय करना है, अभी कर लीजिए इसी वक्त।"

झरना के अधर द्वय मुकुलित हो उठे। बोली—"फिर तो मैं आपके स्कूल में नौकरी नहीं कर सकती।"

मैंने मुस्कराते हुए प्रकाश से कहा—"लो भाई; सुन लो। निर्णय हो गया।"

"अरे भाभी आप कैसी बातें करती हैं!" प्रकाश इतना कह कर झरना के चरण की ओर लपका, किन्तु उसने पाँव हटा लिये थे। बोला—"मैं तो आप के चरण स्पर्श करता हूँ। आपको मैं क्या आदेश दे सकता हूँ।"

कथन के पश्चात् प्रकाश कुर्सी पर यथावत आकर बैठ गया। बोला—"लेकिन 'डिसिप्लिन मेनूटेन' करने के लिये थोड़ा सख्त तो होना ही पड़ता है।"

मैं आपकी इस अक्लमंदी की दाद देती हूँ, जो मेरे घर को स्कूल समझ बैठे हैं।" झरना ने तत्काल साड़ी का पल्लू वक्ष पर संभालते हुए कह दिया।

मेरे साथ ही प्रकाश भी झरना के इस कथन पर हँस पड़ा। किन्तु झेंप मिटाते हुए उसने कह दिया—"...और आपको अपने स्कूल की अध्यापिका। यह कहना तो आप भूल ही गयीं।"

एक ठहाके से सम्पूर्ण वातावरण गूँज उठा।

झरना को हंसते-हंसते खाँसी आ गई और वह बाथ रूम की ओर भागी चली गयी।

थोड़ी देर में झरना ज्यों ही लौटकर आयी, प्रकाश बोला—"भाई साहब, मैं भेड़-बकरी नहीं चराता हूँ।" और पहले तो उठकर खड़ा हो गया फिर झरना की ओर संकेत करते हुए कहा—"देखिए, तो फिर कल से आप आ रही हैं। ठीक सात बजे। पक्की रही।"

"बैठो न प्रकाश, कहाँ चल दिये?" मुझे कहना पड़ा।

"नहीं भाई साहब, अभी आठ बजे लखनऊ टेलीफ़ोन करना है।

हमारे यहाँ एक आयोजन है, जिनका उदघाटन एक मंत्री से कराना है। उनके सचिव ने कहा था रात को फोन कर लीजिएगा उसी समय निश्चित हो जायगा।"

प्रकाश के जाते ही मुझे स्मरण आया कि मैंने उससे रुपये तो लिये ही नहीं। लोगों को दूँगा कहाँ से। शीघ्र ही उसकी ओर लपककर जीने से ही आवाज़ दी—"अरे प्रकाश।"

प्रकाश स्कूटर स्टार्ट कर चुका था, किन्तु मेरा स्वर सुनते ही उसने उसे बन्द कर दिया। ज्यों ही मैं उसके निकट पहुँचा, उसने कहा—"मैं तो बातों में भूल गया, कितने रुपये चाहियें ?"

"सौ रुपये दे दो।"

"बस," प्रकाश ने कहा इस भाँति जैसे उसके पास हज़ारों रुपये तैयार हों।

"हाँ, इतने में काम चल जायगा।" मैंने कुछ सोचकर उत्तर दिया।

जिस समय प्रकाश पर्स से रुपये निकाल रहा था, मेरी दृष्टि छज्जे की ओर थी। झरना से जिस बात को मैं गोपनीय रखना चाहता था, वही वह देख रही थी। किन्तु उसे एक विवशता की संज्ञा देते हुए मैंने टाल दिया।

मेरी ओर रुपये बढ़ाते हुए प्रकाश ने कहा—"देख लो, पूरे सौ हैं न ?"

इस कथन के बाद प्रकाश की दृष्टि झरना की ओर घूम गयी। उस क्षण मुझे ऐसा महसूस हुआ, जैसे वह झरना से कह रहा हो कि देखो मैंने सौ रुपये तुम्हारे स्वामी को उधार दिये हैं !"

प्रकाश स्कूटर पर बैठकर नौ-दो-ग्यारह हो गया।

अब मैं ऊपर वाले जीने में चढ़ते समय सोच रहा था कि झरना ने कहीं प्रश्न कर दिया कि ये रुपये क्या आपने प्रकाश से उधार लिये हैं, तो मैं क्या उत्तर दूँगा ? और उस समय उसकी दृष्टि में मेरी क्या 'पोज़ीशन' होगी।"

झरना सामने खड़ी मेरी पतीक्षा कर रही थी। पहिले की अपेक्षा इस समय वह मुझे कुछ गंभीर दिखायी दी, किन्तु उसने कुछ कहा नहीं।

उस दिन की रात्रि हमारे लिये सोहागरात से किसी भाँति कम न थी। हम दोनों अत्यन्त प्रसन्न थे। झरना हम से भी अधिक खुश जान पड़ती थी। मुझे ऐसा अनुभव हो रहा था, जैसे कल से मैं बहुत बड़ा आदमी हो जाऊँगा। महीने में सौ रुपये झरना को मिलेंगे। दोनों जगह से मिला कर एक सौ साठ रुपये होंगे। इस प्रकार मेरी आय कुल मिला कर तीन सौ पैंतीस रुपये हो जायगी।

मैंने तत्काल सोचा, सरदार के रुपये पाँच छः मास में अदा कर दूँगा। फिर क्या चिन्ता है! मौज से झरना के साथ मस्ती काटूँगा।

हमारा जीवन में सबसे बड़ा ध्येय होता है सुख की उपलब्धि। और यह सुख, पैसे के अभाव में नहीं प्राप्त होता। तो अब मुझे भी पैसे का अभाव नहीं होगा। झरना की हरेक अभिलाषा मैं पूरी करूँगा। वह भी क्या सोचेगी कि जीवन में उसे कोई साथी मिला था। दाम्पत्य जीवन का सबसे बड़ा सुख तभी प्राप्त होता है, जब पति-पत्नी एक दूसरे से संतुष्ट होते हैं। किसी को किसी से कोई शिकायत नहीं रहती।

उस दिन रात्रि में झरना ने शृंगार विशेष रूप से किया था। शयन करते समय मैंने उससे कहा—"झरना! दो वर्ष बाद भी तुम मुझे आज वैसी ही दिख रहे हो, जैसी प्रथम मिलन में। उस भगवान को क्या कहें जिसने तुम्हें ऐसा रूप दिया है। कहीं किंचित मात्र भी त्रुटि नहीं दिखायी पड़ती।

कथन के पश्चात् मैंने उसे अंक में भर लिया था। समर्पण! सर्व्वस्व समर्पण। उस दिन मुझे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे मैंने झरना पर संदेह उसके साथ अन्याय किया है। वह एक भारतीय नारी है। मैं ही उसका सर्वस्व हूँ। मेरे अतिरिक्त उसने कभी किसी पुरुष को नहीं चाहा। मैंने उसके साथ ज्यादती की है। किन्तु भविष्य में ऐसी ग़लती कदापि न होगी। झरना मेरी है, मेरी ही होकर रहेगी।

मेरे कथन को सुनकर झरना तनिक संकुचित हो उठी। शरबती मुसकान गुलाबी अधरों पर बिखेरती हुई बोली—"बाबू, पत्नी का सबसे बड़ा सुख यही है कि उसका पति आज भी उसको उसी रूप में देख रहा है, जैसा उसने उसे दो वर्ष पूर्व देखा था।"

इतना कह कर झरना मेरे वक्ष से लिपट गयी।"

मैंने इस बीच उसके शरीर को हल्के से गुदगुदा दिया। वह

उछल कर मेरे उपर आ गिरी। बोली—"देखो मुझे परेशान मत करो बाबू।

वह वक्ष से नीचे उतरने ही वाली थी कि मैंने फिर उसे भुजाओं में भर लिया।

कुछ दबाव का अनुभव कर झरना ने मेरी ग्रीवा को बाँहों से छुड़ाते हुए कहा—"बाबू, तुम मुझे मार डालोगे क्या ?"

उसके इस कथन पर मैंने उसे ढील दे दी। वह शीघ्र ही चारपाई से नीचे उतर आयी। तभी मैं उसे पकड़ने के लिये उसके पीछे दौड़ा।"

कमरे की खिड़कियाँ और द्वार बन्द थे। बत्ती जल रही थी। कमरे में इधर उधर वह भाग रही थी और मैं उसका पीछा कर रहा था। ऐसी थी उस दिन की हमारी वह रात्रि ! फिर हम थक कर कब सो गये, इसका हमें ज्ञान न हुआ।

दूसरे दिन लगभग छ: बजे मैं उठ गया था। झरना अब भी सो रही थी। मैंने एक बार उसके चेहरे को देखा। कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कुमुदिनी कुम्हला गयी, सौन्दर्य प्रसाधन की सम्पूर्ण सामग्री बासी हो गयी।

मुझे झरना से अधिक चिन्ता थी और उससे अधिक खुशी। चिन्ता इस बात की थी कि उसे ठीक सात बजे स्कूल पहुंचना है। खुशी इस बात की थी कि यह हँसीन जिन्दगी मेरे लिये आज एक नया उपहार लेकर आयी है। आज का प्रभात मेरे जीवन में एक नया मोड़ लेकर आया है। आज से मेरे जीवन का एक नया अध्याय प्रारम्भ होने जा रहा है, जिसकी सुन्दर लिपि के अनुमान मात्र से मेरे जीवन का रोम-रोम स्पन्दित हो उठता है। आज जीवन चित्र का वह पहलू मेरे सामने आने वाला है, जिसकी रेखाएँ गुलाबी रंग से रँगी होंगी। प्रतीत होता है जैसे वर्षा झुलसी एवं तपती हुई कामनाओं को वर्षा की रंगीन फुहारें जीवन-दान देने जा रही हैं।

मेरे शरीर के अंग-प्रत्यंग में एक नर्तकी की-सी थिरकन हो रही थी। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उमंग में आकर वीणा के तार अपने आप झनझना उठे हैं मैं मन-ही-मन क्या गुनगुना रहा था, इसका न तब ध्यान था, न आज उसका किंचित मात्र स्मरण है। बस गुनगुना रहा था।

आज तो अपने हाथों से झरना को चाय पिला कर स्कूल भेजूँगा। इस रंगीन भावना से अनुप्रेरित होकर मैंने स्टोव जलाकर पानी गरम होने के लिये रख दिया।

झरना अब भी सो रही थी। शायद रात में नींद देर से आयी थी। क्योंकि उसके सोने के ढंग तथा वस्त्रों की अस्त-व्यवस्तता से मुझे उस समय कुछ ऐसा ही मालूम हो रहा था। फिर भी वह कब तक सोयेगी ? उसे स्कूल जाने की तैयारी जो करनी है। घंटों उसे शृंगार करने में लगते हैं, फिर आज एक ऐसे वातावरण में उसे जाना है, जहाँ वह कभी नहीं गयी। इतना सोच कर दोनों हथेलियों से मैंने उसके युगल कपोलों को थपथपा दिया।

कहा—"झरना ! कब तक सोती रहोगी, उठो न ?"

झरना ने मेरा स्वर सुनते ही पहले ऊँ किया, फिर आँखें खोलीं। मुझे सामने देखते ही हड़बड़ा कर उठ बैठी। उसका ध्यान जलते हुए स्टोव पर चला गया। तभी उसने एक अँगड़ाई लेते हुए कहा—"आपने जगाया क्यों नहीं ? क्या टाइम हो गया ?"

'अभी कोई अधिक समय नहीं हुआ है। तुम उठ कर हाथ-मुँह धो लो। तब तक चाय तैयार होई जाती है। मैं नीचे से एक डबल रोटी लेकर आता हूँ।"

ज्योंही मैं जाने को हुआ, झरना ने कुछ संकुचित होते हुए अधरों पर हल्की-सी मुसकान बिखेर कर कह दिया—"मेरा अंग-अंग दुख रहा है। आप मुझे बहुत तंग करते हैं !"

उसके स्वर में एक मनुहार थी।

"अच्छा जी ! सारी जिम्मेवारी मेरे ऊपर !"

और कथन के साथ मैंने उसका बायाँ कपोल थपथपा दिया।

"देखो झरना, जब तक मैं लौट कर आता हूँ, आप हाथ-मुँह धोकर तैयार रहिए। समझ गयी न ?"

जिस समय डबल रोटी और मक्खन लेकर लौटा, झरना कमरे में नहीं थी। वह नहा रही थी। क्योंकि बालटी से लोटे की टकराहट सुनायी पड़ रही थी।

कमरे के पार्श्व में ही थोड़ी सी जगह थी। जहाँ मात्र एक व्यक्ति बैठ सकता था। हम लोगों ने उसे स्नानागार बना रखा था। बाहर की तरफ जो भाग आंगन से मिला था, उसमें चीड़ का एक

दरवाजा लगवा लिया था, जिसे नहाते समय हम बन्द कर लिया करते थे। कमरे से मिले हुए भाग की ओर जब मैं स्नान करता था, तो वह खुला ही रहता था। यद्यपि आमने-सामने दो कीलें गाड़कर एक रस्सी बाँध दी थी। और जिस समय झरना स्नान करने जाती थी, रस्सी पर या कोई चादर लटका देती या कोई धोती।

उस दिन शायद उसने यह सोच कर किसी वस्त्र से आड़ नहीं की कि जब तक मैं लौट कर आऊँगा, वह नहा लेगी। किन्तु उस दिन मुझ में दुगनी शक्ति आ गयी थी। मेरे मन में एक उत्साह था। मैं शीघ्र ही लौट आया था।

मैंने स्नानागार की ओर झाँक कर देखा। यद्यपि उस समय मेरे मन में कोई अन्य भाव नहीं था। मैं झरना से यही कहना चाहता था—जल्दी करो, साढ़े छ: बजने वाले हैं और मुझे इस बात का भी कतई बोध नहीं था कि वहाँ कोई परदा न होगा।

झरना के अनावृत रूप को देख कर उस दिन मैं दंग रह गया था। कितना कसा हुआ उसका शरीर था। गात पर पड़ी हुई पानी की बूँदे मोतियों-सी झलझला रही थीं। इसी समय मेरा सम्पूर्ण शरीर स्पन्दित हो उठा। सिन्धु में ज्वार आ गया। मेरी इच्छा हुई इसी क्षण झरना को जाकर पकड़ लूँ। तभी उसकी दृष्टि में मेरी चोरी पकड़ गयी।

बोली—"बाबू यह कितनी गन्दी बात है। मनुष्य में कुछ शर्म हया भी तो होनी चाहिये!"

मैंने बात बनाते हुए उत्तर में कह दिया—"मुझे क्या मालूम था, तुमने आड़ क्यों नहीं की?"

इतना कह कर मैं वहाँ से खिसक आया था। किन्तु मेरा मन आसक्ति से आकंठ भर गया था। मुझे लगा, रूप नहीं जादू है।

तभी मुझे अपने मित्रों की बातों का स्मरण हो आया था। एक मित्र ने मुझसे यहाँ तक कह दिया था—'मिस्टर वर्मा! यौवन बीत जाने पर तो सूखी चमड़ी रह जाती है और वह स्थिति ऐसी होती है, जिसे हम मजबूरी का कहते हैं। यौवन में एक नशा होता है। उसका भी सुख लो। किश्ती मौज में छोड़ दो प्यारे, उसे बेरोक टोक बहने दो। तभी जान पाओगे जीवन क्या है।'

मैं कमरे में खड़े-खड़े सोच रहा था—"सच है अनावृत सौन्दर्य

में एक ऐसा नशा होता है। जो मनुष्य को पागल बना देता है। और देहरस पान का सच्चा आनन्द तभी उपलब्ध हो सकता है, जब वह अपने को भूल कर पशु बन जाता है।"

झरना नहा कर आ गयी थी। बोली—"क्या सोच रहे हो बाबू?"

मैं उसके चेहरे को एक टक देख रहा था। उसके किसी प्रश्न का उत्तर देना है, इसका मुझे कतई ध्यान न था।

वह बोली—"अभी तक तो श्रीमान जी जल्दी मचाये थे; और अब खड़े होकर दर्पण देख रहे हैं।"

मैंने उत्तर में कह दिया—हाँ झरना, दर्पण ही देख रहा हूँ। किन्तु यह क्या बात है कि मेरी शक्ल इसमें साफ़ नहीं दिखायी देती!"

जिस समय हम लोग 'शिशु सदन' राबर्टसनगंज पहुँचे घड़ी में आठ बज चुके थे। मैंने झरना से कहा—"काफ़ी देर हो गयी। पूरा एक घंटा लग गया।"

जब तक झरना इसके उत्तर में कुछ कहे, प्रकाश फाटक के बाहर आ गया। देखते ही जसे तीर छोड़ दिया। बोला—"वाह भाभी! आज तो आपने कमाल कर दिया।"

तभी मैंने कह दिया—"इसीलिये तो सात की जगह आठ बजे पहुँचे हैं। पूरा एक घंटा मेक अप में लगा है।"

"खैर कोई बात नहीं है। आज तो आपका प्रथम दिन है।" प्रकाश ने कहा—"मैं तो आप लोगों को ही देखने आया था। मैंने सोचा, क्या बात हो गयी?" कथन के साथ उसने कहा—"आइये न?" और स्वयं आगे-आगे चलने लगा।

शिशु सदन में उसका अपना एक निजी कक्ष था, जिसमें दो द्वार थे। एक तो वही था, जिससे हम लोगों ने अभी प्रवेश किया था। दूसरा द्वार पीछे की ओर खुलता था और उसका सम्बन्ध एक गली से था। उस पर एक सुन्दर परदा पड़ा हुआ था। उसे देखकर यह अनुमान लगाना कठिन था कि यहाँ कोई अन्य द्वार भी है, जो संभवतः कभी-कभार खुलता था।

कमरे में पीछे की ओर एक सोफ़ासेट पड़ा था। सोफ़ा काफ़ी लम्बा-चौड़ा था। जिसको आराम करने के लिये भी प्रयोग किया जा सकता था। शायद प्रकाश दोपहर को वहीं विश्राम भी करता, क्योंकि जब मेरी दृष्टि ऊपर गयी, तो मैंने देखा, एक लम्बी छड़ है जिस पर निकल पालिश की हुई है। वह आमने-सामने की दीवारों में गड़ी है और उस पर किनारे की ओर परदा लटक रहा है, जो थोड़ा समेट दिया गया है।

मैंने सोचा, प्रकाश सोते समय उस परदे को खींच देता होगा, और यहीं विश्राम करता होगा।

कमरे में जो मेज पड़ी थी, मेरा अनुमान है ढाई-तीन सौ रुपये से कम की न होगी।

कुर्सी पर बैठते ही उसने घंटी बजायी। क्षण भर पश्चात् एक महिला, जिसकी आयु तीस के लगभग होगी, सामने आ खड़ी हुई। माँग सिंदूर से भरी थी, सरलता से समझ में आ गया कि वह विवाहिता है। रंग तो साँवला था, किन्तु थी रूपवती, आँखें बड़ी बड़ी थीं।

प्रकाश उसकी ओर उन्मुख होते हुए बोला—"आया, देखो मिस अरोड़ा को बुलाओ।"

'अच्छा साहब।"

आया इतना कहकर चली गयी।"

उस समय 'आया' को देखकर मैं सोच रहा था कि जब इस विद्यालय की 'आया' इतनी सुन्दर है, तो अन्य अध्यापिकाएँ तो और भी बहुत कुछ होंगी।

इतने में मिस अरोड़ा ने कमरे में प्रवेश किया। उन्हें देखकर मैं दंग रह गया। शीघ्र ही मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया कि यहाँ जितनी भी अध्यापिकाएँ होंगी, सब एक दूसरे को सौन्दर्य में चुनौती देती होंगी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे प्रकाश ने नगर से चुन-चुनकर उन्हें यहाँ रखा है।

कुर्सी घुमाकर प्रकाश ने झरना की ओर संकेत करते हुए कहा—"मिस अरोड़ा, आप मिसेज वर्मा हैं। मिस खुराना की जगह आज से आप पढ़ायेंगी। इन्हें कक्षा में ले जाइए और रजिस्टर वगैरह सब इन्हें संभलवा दीजिए। समझ गयीं न ?"

"जी हाँ।" मिस अरोड़ा ने कहा।

"मिस अरोड़ा के जाते ही मैंने प्रकाश से कहा—"कुल कितनी अध्यापिकाएँ हैं ?"

"भाभी को लेकर अब सात हो गयीं ।"

"और लड़के······?"

प्रकाश दाहिने हाथ के अँगूठे के नाखून को दांत से दबाये जैसे कुछ सोच रहा था। कुर्सी को नचाता हुआ बोला—"लगभग ढाई सौ होंगे ?"

"खर्च कैसे चलता है ?"

"अब यह न पूछिए भाई साहब, किसी तरह चलाना पड़ता है। प्रकाश ने कहा।

प्रकाश के इस उत्तर से मुझे कुछ संदेह हुआ। यह पहला दिन था, जब उसके संबंध में मैं कुछ और सोचने जा रहा था। तभी उसने कहा—"देखिए भाईसाहब, किसी से कहिएगा नहीं, मैंने भाभी को सौ रुपये देने को कहा है। नहीं तो, पचास-पचास-साठ-साठ ही सब को देता हूँ।"

"इस मँहगाई के ज़माने में, यह तो बहुत कम है।"

"आप कहते हैं बहुत कम है ?" प्रकाश ने एक तेवर के साथ कहा—"अरे इस विद्यालय में लोग पढ़ाने के लिये तरसते हैं। अभी परसों एक देवी जी आयी थीं। मैंने जब उनसे वेतन के विषय में बातचीत की, तो उन्होंने स्पष्ट कह दिया—"आप मुझे भले कुछ मत दीजिए, लेकिन रख लीजिए। उनके साथ में उनके पतिदेव भी थे बोले—"साहब घर में, अकेली पड़ी रहती हैं, कम-से-कम यहाँ कुछ अनुभव तो हो जायगा।"

'अब आप ही बताइए भाई साहब ! प्रकाश ने कहा—"मैं क्या करूँ ?" मगर अपना तो एक सिद्धान्त है। मुफ़्त में मैं किसी से काम नहीं लेता।"

जिस समय प्रकाश ये शब्द कह रहा था, मैंने देखा उसके चेहरे की नसें उभर आयी थीं और ऐसा प्रतीत होता था, जैसे अध्यापिकाएँ उसकी दया की पात्र हैं। उसकी मुखा-कृति पर एक आत्म-गौरव का भाव उभर आया था।

इतने में मैंने प्रकाश से कहा—"अच्छा प्रकाश चलता हूं, मुझे आफिस भी जाना है।"

इतना कह कर मैं उठ खड़ा हुआ । तभी प्रकाश ने कहा—"अरे बैठिए चाय तो पी लीजिए ।" और इतना कह कर उसने पुनः घंटी बजादी ।"

"यार ! देर हो जायगी ।"

"अरे देर क्या होगी ! मुश्किल से पाँच मिनिट लगेंगे ।"

इसी समय एक आया प्रकाश के सम्मुख आ खड़ी हुई । बोली—"जी !"

"देखो, दो कप काफ़ी जल्दी तैयार कर दो ।"

प्रकाश जिस 'आया' को काफ़ी बनाने का आदेश दे रहा था, सहसा मेरी दृष्टि उस पर जो पड़ी थी । यह दूसरी आया थी । पहली की अपेक्षा अधिक सुन्दरी । वर्ण गौर था । आयु भी यही कोई छब्बीस-सताइस की ।

"अच्छा साहब ।" इतना कह कर वह चली गयी ।

तभी मैंने प्रकाश से प्रश्न किया—"क्या यहाँ सभी महिलाएँ हैं ?" कुछ दर्प के साथ प्रकाश ने कहा—"बिल्कुल जनाब । यहाँ आपको मेरे सिवा कोई पुरुष नहीं मिलेगा । यही तो इस विद्यालय की विशेषता है ।" कथन के पश्चात् उसने कुर्सी घुमा दी । बोला—"हम लोगों ने पिछले कार्यक्रम में एक मन्त्री को आमन्त्रित किया था । उन्होंने इस विद्यालय की भूरी-भूरी प्रशंसा की थी, अब मैं आपसे क्या बतलाऊँ । बोले—"आपके विद्यालय को देख कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई । ऐसा विद्यालय जहाँ चपरासी, लिपिक, अध्यापक सभी महिलाएं हों, मैंने प्रदेश में कहीं नही देखा । निश्चित है, इस विद्यालय से महिलाओं का बहुत बड़ा कल्याण होगा और साथ ही साथ उनमें आत्मविश्वास भी जगेगा ।"

इसी समय आया दो कप काफ़ी लेकर आ पहुँची ।

एक घूँट काफ़ी पीने के पश्चात् मैंने अनुभव किया कि जो स्टाफ है, वह सब अत्यन्त सुशिक्षित तथा अपने कार्य में दक्ष है । मेरी भावना को ताड़ते हुए प्रकाश ने कहा—"भाई साहब, काफ़ी कैसी बनी है ?"

"बहुत अच्छी !" मैंने कहा—"काफ़ी बनाने में 'आया' काफ़ी दक्ष है ।"

"यही नहीं, यहाँ का जितना स्टाफ आपको मिलेगा, अपने कार्य

में पूर्ण दक्ष ! यही तो इस विद्यालय की खूबी है। बच्चे आप देखिए, एक भी गन्दा बच्चा नहीं मिलेगा। सभी टिप-टाप।"

इसके पश्चात् उसने कहा—"यह मत समझिएगा ये बच्चे घर से टिप-टाप आते हैं। नित्य-प्रति पढ़ाई प्रारंभ होने के पूर्व हरेक बच्चे को ड्रेस ठीक करना 'आया' का कार्य है। घर जाते समय अध्यापिकाओं का चेहरा भले मुरझाया हुआ हो, किन्तु बच्चों का हाथ-मुंह धुलवा कर बिल्कुल आप समझिये गुलाब का फूल बनवाकर भेजता हूँ।"

मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कह दिया—"तब तो इस विद्यालय की उन्नति निश्चित है।

दर्प के साथ प्रकाश ने कहा—"और आप क्या समझते हैं ? धनी-मानी प्रतिष्ठित नागरिक मेरे विद्यालय को यों ही दान देते हैं।

तभी मेरी दृष्टि घड़ी पर आ पड़ी। दस बजने में पन्द्रह मिनट शेष थे। मैंने प्रकाश से कहा—"अच्छा भाई चलुंगा। मगर शाम की चाय मेरे यहाँ रहेगी, अच्छा !"

"देखिए, अगर अवकाश मिला तो आऊंगा। क्योंकि···।"

कुछ सोचता हुआ प्रकाश बोला—"आज मुझे जिलाधीश से मिलना है, कुछ आवश्यक काम है।"

"खैर, कोशिश करना।"

मैं समय निकालूंगा, लेकिन अभी निश्चित रूप से नही कह सकता।"

"मुख्य द्वार से बाहर आने के बाद, मैंने मुड़कर विद्यालय को देखा। उस समय मुझे कुछ अनमना-सा लग रहा था। मुझे कुछ ऐसा हुआ, जैसे मैं कोई वस्तु भूला जा रहा हूँ। यों कह लीजिए जैसे मैं खाली-खाली सा हूँ, रिक्त और एकाकी। अब तक जो कुछ था, अब नहीं है।

जिस उत्साह तथा उमंग का अनुभव झरना को यहाँ लाते समय मैंने किया था, उसका ठीक प्रतिकूल लौटते समय था। मैं बार-बार सोच रहा था कि आखिर वह कौनसी ऐसी बात है, जिसने मेरी सारी प्रेरणाओं को चुपके से छीन लिया है।

बात कुछ समझ में नहीं आ रही थी। क्या ऐसा कुछ है कि मुझे स्वयं अपने आप पर विश्वास नहीं रहा ? या झरना ने मुझे

समझने में भूल की है। हो सकता है। हम अपने को ही सही-सही कहाँ समझ पाते हैं।

अन्ततोगत्वा यही सोच कर मैं चुप हो गया कि झरना को एक ऐसे वातावरण में छोड़ कर जा रहा हूँ, जहाँ पहले वह कभी नहीं आयी। न जाने वह कैसा अनुभव करे। यही एक बात मेरी समझ में उस समय आ सकी थी, जो मेरी उदासी के मूल में रह-रह कर मुखर हो उठती थी।

अब मैं प्रकाश की स्थिति पर विचार करने लगा। यद्यपि मेरा वह मित्र था। उसके ठाट-बाट, रहन-सहन, प्रबन्ध पटुता आदि को देखकर मुझे बड़ी ईर्ष्या हुई। यह वही प्रकाश है, जो दो-दो वर्ष एक कक्षा में अनुत्तीर्ण होता रहा है, जिसके विषय में अध्यापकों की धारणा कभी अच्छी नहीं रही। मोहल्ले वालों की दृष्टि में सम्मान का भाजन वह कभी नहीं रहा। बातें तब भी लम्बी चौड़ी करता था। और आज भी करता है। पहले लड़कियों के पीछे साइकिल दौड़ाया करता था। अब कहता है बड़े-बड़े आफिसर तथा अधिकारी उसकी जेब में पड़े रहते हैं!

हम दोनों इन्टर में सहपाठी थे। किन्तु उस समय यह पढ़ता-लिखता बहुत कम था। हाँ कालेज-यूनियन का मन्त्री अवश्य था। और ऐसे ही लड़के प्रायः यूनियन के सभापति और मन्त्री बनने की फिक्र में रहते हैं, जिन्हें पढ़ने-लिखने से कोई वास्ता नहीं रहता। मित्र होने के नाते मैंने उससे एक दिन कहा भी कि तुम कुछ पढ़ते-लिखते नहीं हो, पास कैसे होगे ? दो वर्ष से फ़ेल हो रहे हो।

उत्तर में गर्व के साथ उसने कहा था—"इस साल मामला पटा लिया है गुरु। बोर्ड के सिक्रेटरी तक से जान-पहचान हो गयी है। देखें, साला कौन फ़ेल करता है!"

और उसकी बात भी सत्य निकली। हम दोनों द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। उसने परीक्षा-फल देखकर मुझ पर व्यंग करते हुए कहा था—"कहो गुरु, महीनों रटते-रटते तुमने नींद हराम की, मगर नतीजा क्या निकला ?"

मुझे बड़ा आश्चर्य था कि वह द्वितीय श्रेणी में कैसे पास हो गया, जब कि मैथमेटिक्स के दोनों प्रश्न-पत्र उसके बिगड़ गये थे। पहले प्रश्न-पत्र में दस-बारह नम्बर का उत्तर सही था, दूसरे में पन्द्रह-

सोलह का। इस हिसाब से उसे अनुत्तीर्ण होना था, किन्तु परीक्षाफल तो कुछ और ही निकला।

उसने इस विजय का संपूर्ण रहस्य मुझे उसी दिन बतलाया था।

वह किस-किस प्रकार और कैसे-कैसे सोर्सेज़ के साथ परीक्षकों के यहाँ पहुँचा, मुझे सुनकर आश्चर्य हुआ।

किसी परीक्षक से उसने कहा—"मेरी बहिन की कापी आपके पास आयी है। उसका यही पेपर बिगड़ गया है और तो सब में उस का फ़र्स्ट क्लास है। लड़की की जाति ठहरी साहब, इसी महीने में पिताजी ने उसकी शादी तय कर दी है; अगर कहीं फ़ेल हो गयी तो उसके विवह पर भी उसका प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। मुझे भय है, कहीं वह आत्मघात न कर ले। मुझे पूरी आशा है, बीस-बाइस अंक तक आप उसे अवश्य दे देंगे। उसकी जिन्दगी बन जायगी, आपका मैं जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा।"

किसी परीक्षक के यहाँ वहीं के स्थानीय प्रभावशाली व्यक्ति को लेकर पहुँचा। कहीं किसी परीक्षक पर सौ-पचास रुपये भी खर्च करने पड़े, वह भी किया। इस प्रकार उसने द्वितीय श्रेणी प्राप्त कर ली थी। किन्तु बी० ए० में अनुत्तीर्ण नहीं हुआ। आते ही उसने प्राध्यापकों से अपना अच्छा-खासा सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। समक्ष आने पर वह गुरुओं के चरणस्पर्श करता और उनका आशीर्वाद लेता। हम लोगों को तो वह बुद्धू समझता था। इस प्रकार सबसे मिलमिला कर तृतीय श्रेणी में बी० ए० कर ही लिया। उसके पश्चात् मनोविज्ञान से उसने एम० ए० किया। दो-एक जगह नौकरी जो की तो, लोगों से पटी नहीं। वहीं निकाल दिया गया, कहीं से स्वयं त्याग-पत्र देकर चला आया। उस समय तक वह पूरा चलता-फिरता नेता बन गया था। कहीं कोई आयोजन होता, उसकी व्यवस्था किसी-न-किसी तरह लोगों से मिल-जुलकर वह अपने हाथ में ले लेता। शनैःशनैः कार्य संचालन में वह दक्ष हो गया।

मुझे विस्मय इस बात पर होता था कि जिसे लोग कभी लोफ़र की संज्ञा देते थे, आज वही इतने बड़े शिक्षा-संस्थान का स्वामी है, जहाँ हज़ारों रुपये महीने का आय-व्यय है। नगर में आज उसका सब जगह सम्मान होता है। और एक मैं हूँ, जो पौने दो सौ की क्लर्की से जूझता रहा हूँ। जब कभी उससे सिद्धान्त और आदर्श की

बात करता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह आदर्श की एक सजीव प्रतिमा है और सिद्धान्तों का महान पुजारी। बात-बात में कह देता है—"भाई साहब आप क्या बात करतें हैं ? जिस आदमी का कोई गौरव नहीं सिद्धान्त नहीं, चरित्र नहीं वह भी कोई मनुष्य है। जो व्यक्ति जीवन में सफल नहीं हो सका, उसका आज के युग में कोई मूल्य नहीं। मूल्य चरित्र का होता है। और असफल आदमी का कोई चरित्र होता तो वह किस काम का ? इस जगत के लिए व्यर्थ है।

अब स्थिति यह है कि इधर कुछ दिनों से जब वह बातें करता है, तो मैं उसका मुँह ताका करता हूँ !"

संध्या को जब कार्यालय से घर लौटा, तो झरना 'फ्रागचेयर' पर बैठी हुई कोई पत्रिका पढ़ रही थी। उसकी दोनों टाँगें सम्मुख पड़ी टेबिल पर फैली हुई थीं। यों नित्य-प्रति मेरे आने का समय प्रायः साढ़े चार पौने पाँच होता था, किन्तु उस दिन उससे मिलने के लिये मैं अधीर था। इस लिए ठीक सवा चार मैं घर पहुँच गया था।

मुझे द्वार के समीप आता देख सहसा वह पुकार उठी "कौन ?"

परदा उठा कर भीतर प्रवेश करते हुए मैंने कह दिया—मैं हूँ ?"

कमरे में प्रवेश करते समय मेरा प्रथम प्रश्न था—"क्यों कैसी रही ?"

पर इसके पूर्व मेरी दृष्टि उसकी मुखाकृति पर जा पहुंची थी। वह बेहद थकी-सी दिखायी दे रही थी ! चेहरा सूख-सा गया था।

झरना ने सिर नीचा करके उत्तर दिया—"ठीक है।"

किन्तु मैंने अनुभव किया, उसके स्वर में एक उदासी है। मुझे लगा, जैसे यह वाक्य उसने मन मारकर कहा है।

किन्तु इसके साथ ही साथ मैंने अध्ययन किया कि उसका अन्तःकरण कुछ और कहता है। फिर भी वह अन्यथा न समझे, इस लिये मैंने उससे कह दिया—"न ठीक हो, तो रहने दो। मुझे कोई जरूरत नहीं है। देख रहा हूँ तुम्हारा चेहरा एक ही दिन में कितना उतर गया है। अब यह उदासी मुझसे नहीं देखी जायगी।"

तभी वह बोली—"आज पहला दिन है। देखती हूँ, अगर तबियत

न लगी, तो छोड़ दूँगी।"

इतने में मैंने पूछा—"शायद तुम भी अभी आयी हो ?"

हाँ, अभी दस मिनिट ही तो हुए हैं—" उत्तर में झरना बोली।

अब समस्या थी चाय बनाने की। झरना अभी-अभी आयी थी और थकी-माँदी भी थी। और मुझे ठीक छः बजे उत्तर प्रदेश आयल मिलर्स एसोसियेशन के कार्यालय में टाइप करने के लिये पहुँच जाना था। पहले तो मैंने सोचा, हाथ-मुँह धोकर थोड़ी देर बाद चला जाऊँ। रास्ते में कहीं एक कप चाय पी लूँगा। पर फिर मुझे झरना का ध्यान आ गया। "मैंने उससे कहा—"तुम हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल लो। मैं तब तक स्टोव पर चाय का पानी रखे देता हूं।"

तभी उसने कह दिया—"यह बात तुम क्या कह रहे हो बाबू ! नौकरी क्या करली, कोई इतना बड़ा काम कर लिया कि अब चाय और खाना भी नहीं बनाऊँगी ! आप भी कमाल कर रहे हैं। बैठिए में अभी बनाकर लाती हूँ।"

"कथन के साथ वह उठकर खड़ी हो गयी और बोली—"आज कुछ जल्दी आ गये हो। फिर भी मैं चाय का पानी रखने ही जा रही थी।"

उस का उत्तर सुनकर मेरा हृदय हर्ष से गद्‌गद् हो उठा।

चाय पीते समय मैंने उससे कहा—"तुमने अपने स्कूल के विषय में तो कुछ मुझे बताया ही नहीं !"

चाय का घूँट कंठ से नीचे उत रते हुए उसने कहा—"बताना क्या है। छठे-सातवें की लड़कियां हैं, उन्हीं को पढ़ाना है। अभी तो स्टाफ़ पार्टी के प्रबन्ध में लगा है। परसों ही गवंनर आ रहे हैं।"

मैंने हंही-हंसी में कहा—"चलो, अब तो गवंनरों तक तुम्हारी पहुँच हो गयी। यही क्या कम है ? मेरा पढ़ाना सफल हो गया। अब तुम बी० ए० भी कर डालो किसी तरह।"

जब वह चुप रही तो मैंने आगे कहा—"प्रकाश तो नहीं कुछ कह रहा था।"

कुछ अनिच्छा सी प्रकट करती हुई वह पहले बोली—"वे क्या कहेंगे !' फिर उसने बतलाया—"हाँ एक बात कह रहे थे कि अध्यापिका से यह न कहना कि मुझे सौ रुपये मिलते हैं।"

"यह ता उसने मुझसे भी कहा था। लेकिन झरना, देखो न,

कितना बड़ा शोषण है ! यों प्रकाश कितना आदर्शवादी बनता है। मगर इन अध्यापिकाओं को पचास-साठ रुपये ही देता है, जबकि आज कोई मजदूर भी तीन-चार रुपये रोजाना से कम नहीं लेता।"

उत्तर में झरना ने कहा—"यह तुम ठीक कहते हो बाबू। मगर इन लोगों को इससे क्या मतलब ?"

"नहीं झरना, ऐसी बात नहीं है। जो व्यक्ति बातें आदर्श और सिद्धान्त की छौंकता है, उसे उसी के अनुरूप कार्य भी तो करना चाहिये। यह तो कोई बात नहीं हुई कि मनुष्य कहे कुछ और करे कुछ।"

"आज के युग में कौन ऐसा व्यक्ति है, जिसके दो रूप नहीं हैं? और मैं देखती हूं बिना इसके किसी का काम भी नहीं चलता। कहने को चाहे कुछ भी कहें।"

मैं विचार में पड़ गया। तभी तनिक रुककर उसने कहा—"ऐसा भी क्या जीवन ? खाने-पहिनने को भी ठीक से न मिले !"

मैं झरना के इस वाक्य से संशकित हो उठा। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह मेरे ही ऊपर व्यंग कर रही है ! क्योंकि उस दिन 'अभिनव वस्त्रालय' के मालिक के लड़के को मैंने कुछ खरी-खोटी सुना दी थी। और साथ ही इससे भी कह दिया था कि अब वह इनके यहाँ से कोई भी सामान न लाये।

मेरा अन्तर्मन कुछ विक्षुब्ध हो उठा। एक ओर मैं झरना की खुशी को अपनी खुशी मानूँ, दूसरी ओर वह मेरे विचारों, सिद्धान्तों की अवमानना करे।

लगभग साढ़े पाँच बज चुके थे। मैं 'पार्ट टाइम' कार्य करने के लिये उठ खड़ा हुआ।

इतने में झरना ने कहा—"अब तो आप साढ़े आठ तक आयेंगे !"

"हूँ, ऊँ। "मैंने कुछ अनमने स्वर में कह दिया।

"सब्जी में सिर्फ आलू है, वही मैं बनाये लेती हूँ।"

"हाँ, आज इसीसे काम चलाओ, कल से लौटते समय और भी कुछ लेता आया करूँगा।

इतना कहकर मैं जीने से नीचे उतर आया।

दो-तीन मास कार्य करने के उपरान्त हमारी आर्थिक स्थितियों में जितना सुधार हुआ, उससे कहीं अधिक मेरे और झरना के बीच मन-मुटाव बढ़ गया।

अब मनोमालिन्य का वह बिन्दु, जिसकी आकृति धुँधली-धुँधली सी दिखायी दे रही थी, अधिक दिखायी देने लगा था। झरना मुझे क्यों नहीं चाहती, इसका कोई आधार अब भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था। लेकिन यह बात क्षण-क्षण पर स्पष्ट होती जा रही थी कि वह अब मुझे नहीं चाहती।

अब जेब-खर्च के लिये भी मुझसे माँगने की उसे आवश्यकता न थी। मैंने पहले ही उससे कह दिया था ये सौ रुपये तुम्हारे हैं। इनसे तुम सबसे पहले अपनी आवश्यकतओं की वस्तुएँ खरीद लिया करो; जो बचें, सो अपने पास रखती जाओ"

अब झरना प्राय: स्कूल से लौटने में देर कर देती। चार-साढ़े चार की अपेक्षा कभी सात बज जाते, कभी आठ-साढ़े आठ। यहाँ तक कि कभी-कभी वह तब आती जब सिनेमा का पहला "शो" समाप्त हो चुका रहता। मैं चारपाई पर लेटा-लेटा अपनी कुंठा में घुटता रहता। सोचता—अच्छी नौकरी लगी। हम पहले इससे अच्छे थे। कम-से-कम मन की शान्ति तो सुरक्षित बनी रहती थी। आर्थिक स्थिति में जो एक तनाव था, वह भी क्या धीरे-धीरे ठीक न हो जाता।'

मगर वह तनाव अब दुतरफ़ा हो गया था। और पहले की अपेक्षा यह दूसरा 'तनाव' अधिक संतापदायक था। कभी-कभी जब उस संकट की बात मन में आती, तो हृदय काँप उठता था। आँखें आँसुओं से भर जाती थीं। कितना भयानक था उस तनाव का भविष्य। किसी भी क्षण विस्फोट हो सकता था। और उस विस्फोट में सुरक्षित रहने का मेरे आगे कोई साधन न था, मार्ग न था, फिर भी उस स्थिति को मैं अत्यंत सजगता के साथ देख रहा था।

अब प्राय: भोजन मुझे ही रात्रि में बनाना पड़ता था। इसलिये सब्ज़ी और पराठे मात्र ही मैं बना पाता था।

एक दिन आटा गूँथते समय तो मेरी आँखें भर आयीं। मैं सोचता रहा—"मैंने साठ रुपये का पार्ट टाइम कार्य व्यर्थ स्वीकार कर लिया। धीरे-धीरे सरदार का ऋण काट-कपट कर निपटा ही

देता। ऐसी स्थिति में रात्रि को साढ़े आठ बजे लौटकर चूल्हा तो न फूँकना पड़ता। क्या जिन्दगी है! जब यही करना था, तो फिर ब्याह की भी क्या आवश्यकता थी?"

एक बार ऐसा ही हुआ, पराठा पलटते समय मेरा हाथ तवे पर जा पड़ा! उस समय मेरी मन में कितनी पीड़ा भर उठी, मैं व्यक्त नहीं कर सकता। मुझे झरना पर रह-रह कर खीझ हो रही थी। मैंने मन-ही-मन उसे दो-चार गालियाँ भी दीं। यहाँ तक कि उसे हरजाई, कमीनी, नीच सब कुछ कह डाला।

इस क्रोध का परिणाम यह हुआ कि एक ओर तो मैं जली हुई अंगुलियों की पीड़ा सहन नहीं कर पा रहा था, दूसरी ओर तवे पर पड़ा पराठा जल गया था।

मैंने किसी तरह तवे को उतार कर नीचे रख दिया। उस समय घर में कोई दवा न थी। कच्चे आलू पड़े हुए थे। एक हाथ से उन्हें सिल पर पिस कर जली अंगुलियों में लेप लगाया। इसके बाद मैं चारपाई पर जाकर लेट रहा। अब मन-ही-मन मैंने कहा—"खाना बने चाहे न बने! झरना ने नौकरी क्या कर ली, कलोर बछेड़ी सी घूमने लगी। आज ही पूछता हूँ।"

चारपाई पर लेटे-लेटे झरना की प्रतीक्षा करता रहा कि वह अब आती है, अब आती है। किन्तु साढ़े नौ बजे गये। फिर भी वह नहीं आयी।

मैं दिन भर का भूखा था। मेरी अँतड़ियाँ कलकला रही थीं। सिर फटा जा रहा था।

एक बात और आप से कह दूँ। टाइपिस्ट का कार्य अन्य लिपिकों की भाँति अधिक मेहनत का होता है। अधिक पत्र टंकन करते-करते अँगुलियाँ दर्द करने लगती हैं; वक्ष की नसों में तनाव आ जाता है। इसके अतिरिक्त टाइप करने में फेफड़ों पर भी अधिक प्रभाव पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि सूखा-रुखा भोजन भी ठीक तरह से उपलब्ध न हो, तो ज़रा सोचिये ऐसे व्यक्ति की क्या स्थिति होगा? आप निश्चित मानिए, उसे भैरवघाट जल्दी जाना पड़ेगा!

तो ठीक यही स्थिति उन दिनों मेरी थी। आफ़िस में कार्य करते-करते थक जाता था। फिर भी, आर्थिक स्थिति बिगड़ जाने के कारण मुझे पार्ट टाइम काम करना पड़ता था। अब धीरे-धीरे

मैं इस परिणाम पर पहुँच रहा था कि झरना जैसी स्त्री के साथ मेरा व्याह न हुआ होता, तो शायद क्या, निश्चित रूप से अच्छी स्थिति में होता।

आप सोचें चाहे न सोचें किन्तु मैं इतना जानता हूँ झरना यदि मेरे जीवन में न होती, तो यह निश्चित है, कि आज मैं अधिक सुखी होता। पति-पत्नी के लिये पौने दो सौ रुपये कम नहीं होते। किन्तु झरना का निजी खर्च सौ रुपये मासिक से कम नहीं है। कभी-कभी सोचता हूँ इस में उसका भी दोष नहीं है। वह एक लखपती की लड़की है। उसने जीवन में कभी कष्ट नहीं भोगा। मैं उसका यह दुर्भाग्य ही कहूँग जो उसका विवाह मेरे साथ हो गया!

इसका भी एक कारण है। उसके पिता की अभिलाषा थी कि मेरी एकलौती बेटी का विवाह ऐसे लड़के के साथ हो, जिसके पास संपति तो हो ही, साथ-साथ वह यथेष्ट पढ़ा-लिखा भी हो।

किन्तु आप अच्छी तरह जानते हैं। लक्ष्मी और सरस्वती में सदैव मतभेद चलता रहा है और आज भी है। जो व्यक्ति गुणी है, उसके पास धन नहीं और जो धनी है, यदि आप मुझसे स्पष्ट कहलवाना चाहते हैं, तो मैं कहूँगा वह धूर्त है ; वह गुणीजनों के साथ न्याय नहीं शोषण करता रहता है।

सुनता हूं एक पूँजीपति ने गतवर्ष अर्थशास्त्र में डाक्टेरेट की उपाधि प्राप्त की है, किन्तु लोगों का कहना है एक अक्षर भी उसका लिखा नहीं है। उसने अपने यहाँ एक डाक्टर को दो सौ रुपये में नियुक्त कर लिया था, जिसने दो वर्ष में उसकी थीसेस पूरी कर दी थी।

तो आज इस अर्थ युग में गुणवन्तों की यह दशा है!

लेकिन मैं कुछ बहक गया। झरना के पिता को, जो वर्षों वर की खोज में भटकते रहे, हज़ारों रुपये व्यय करने पड़े। मेरे ही एक परिचित व्यक्ति ने जो उनसे मिलता रहता था उनसे कहा—लड़का बी० ए० उत्तीर्ण है और सरकारी नौकरी में है। यदि आप चाहें, तो उससे संबंध कर सकते हैं। किन्तु एक बात मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं, ताकि बाद में आप यह न कहें कि मेरी लड़की को तुमने भाड़ में झोंक दिया, उसके पास धन नहीं है। पर निश्चित है कि लड़का पढ़ा लिखा और चरित्रवान है।

झरना के पिता रुपये में तीन अठन्नी भुनाने वाले व्यक्ति थे। वे किसी की बात का विश्वास बहुत ही कम करते थे, चाहे वह कितना ही सगा क्यों न हो।

मैं देहात का रहने वाला हूँ, यह भी आपसे क्यों छिपाऊँ। कुछ ऐसा हुआ कि एक दिन मैं घर जा रहा था। संयोग की बात कहिए कि मुझे, एक स्थान है प्रताप गढ़ जिले में, वहाँ रुक जाना पड़ा। क्योंकि जो बस मुझे लेकर गयी थी, वह देर से वहाँ पहुँची थी और उससे संबंधित लारी जा चुकी थी। इस प्रकार विवशता में मुझे वहाँ रुकना पड़ा।

मैंने वहाँ पूछताछ की कि मैं रात भर रुकना चाहता हूँ ठहरने के लिए स्थान मुझे मिल सकता है ?"

तभी एक व्यक्ति ने पहले तो मेरी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली, फिर मुझे सूचना दी कि आप की ही जाति के लोगों के यहाँ एक शादी है।

अब मुझे स्मरण आया कि जिसके यहाँ शादी हो रही है, वे मेरे अनुज के साले लगते हैं। इसी समय एक व्यक्ति ने, जो शरीर से हृष्ट-पुष्ट एवं सुशिक्षित दीखता था, आकर मुझसे प्रश्न किया कि आप किसको चाहते हैं ?"

मैंने उत्तर में कह दिया—"यहाँ बिसुन गंज से कोई बारात आयी है ?"

उत्तर में उसने कहा—"मेरे ही यहाँ आयी है। कहिए आप किसको चाहते हैं ?"

चश्मे को ठीक करते हुए मैंने उत्तर कह दिया—"प्रेम कुमार जी आये हैं ?"

"हाँ-हाँ, आइए, मिला देता हूँ।"

इतना कह कर वह व्यक्ति चल पड़ा। एक सँकरी गली से रास्ता जाता था। थोड़ी दूर चलने के पश्चात् हम उस घर के सामने आ पहुँचे, जहाँ शादी की व्यवस्था हो रही थी। इतने में ही मेरी दृष्टि प्रेम कुमार पर जा पड़ी।

रात भर रुकने की बात थी, किन्तु वहाँ मुझे दूसरे दिन भी रुकना पड़ा। वहाँ मेरा अच्छा स्वागत किया गया। उस समय मैं ऐसा कुछ नहीं समझ सका कि आखिर दामाद की भाँति मेरी खातिर

क्यों की जा रही है।

दूसरे दिन एक महाशय ने मुझसे अनेक प्रश्न किये। आप क्या काम करते हैं? कितना वेतन मिलता है? और भी न जाने क्या-क्या पूछा था। इस समय स्मरण नहीं है। किन्तु वे सब प्रश्न उसी प्रकार के थे जैसे आमतौर पर व्याह करने के पूर्व लड़कों से किये जाते हैं। याद आता है, मुझे कुछ सन्देह तो हुआ था, पर उस समय मैं कुछ समझ न सका था।

शाम को जब मैं घर जाने लगा, तो तीन-चार व्यक्ति मुझे लारी में बैठाने आये। एक व्यक्ति कहा—"लौटते समय इधर से ही आइएगा, हम लोग भी साथ चलेंगे।"

मैंने कहा—"अच्छी बात है।"

घर पहुँचने पर पिता जी ने संपूर्ण कहानी सुनायी और कहा कि तुम्हारी इच्छा हो, जाकर लड़की देख आओ, यों मुझे पता लग गया है, लड़की बड़ी सुन्दर है।

तो आप ही सोचिये, कहीं संयोग से सुन्दर लड़की मिले, फिर विवाह करने से कौन इनकार करेगा?

सुन्दर पत्नी और धनी ससुराल कौन नहीं चाहता? मेरे मुँह में भी सच कहता हूं, पानी भर आया। झरना को देख कर मैं दंग रह गया था। लौट आने के पश्चात् महीनों मैं उसके रूप को विस्मरण नहीं कर सका। यही सोचता था कि कौन क्षण होगा, जब मैं झरना को स्पर्श करूंगा।

एक कुंठा को और अभिव्यक्ति दे दूँ, जो उस समय मेरे मन में जन्म ले रही थी। कभी-कभी मैं सोचता था कि जिस समय वह मुझे तश्तरी में पान खिलाने आयी थी, मैंने तश्तरी के नीचे से उसकी अँगुलियों का स्पर्श क्यों नहीं किया? हो सकता है, मेरे साथ व्याह न होता। वे लखपती हैं, मैं एक लिपिक हूं। कम से कम उसके कमनीय कर कमलों का स्पर्श तो कर लिया होता।

मेरे इस कथन का अभिप्राय केवल यह है कि झरना अनिद्य सुन्दरी थी। और आज भी है यों तो सभी अपनी पत्नी को सुन्दरी समझते हैं किन्तु यथार्थ ऐसा नहीं है। जो वास्तव में सुन्दर है, वही सुन्दर है। मैं अधिक दावा तो नहीं करता, किन्तु इतना जरूर कहूंगा कि दस पन्द्रह लाख आबादी वाले इस नगर में झरना जैसी दस-बीस

स्त्रियां ही होंगी।

रूपवती नारी मदिरा की एक बोतल के समान है। सौन्दर्य उसकी सुरा है। रूप का नशा सुरा से कहीं अधिक तेज होता है। इस नशे का प्रभाव एक वार पी लेने से सदव के लिए मस्तिष्क पर छाया रहता है। कभी-कभी तो रूप की मदिरा व्यक्ति को पागल वना देती है। यदि सही ढंग से अध्ययन किया जाय, तो वे जितने पागल सड़क पर घूमते दिखायी देते हैं, इनमें अधिकांश वे हैं, जिन्होंने जाने-अनजाने रूप की मदिरा पी ली है।

मैंने भी पी है और यही कारण है कि झरना के विना मैं जी नहीं सकता। कभी-कभी तो दोष भी मुझे सुन्दर लगते हैं। अजीव स्थिति है मेरे इस मन की। क्योंकि फिर प्रश्न उठता है कि जब झरना के दोष भी आपको प्यारे और सुन्दर लगते हैं, तो फिर उपालम्भ किस वात का ? हाँ तो एक दिन वह भी आ गया, जव हम दोनों एक सूत्र में वैधानिक रूप से बाँध दिये गये।

मैं झरना का पति वन गया और वह मेरी धर्मपत्नी।

रात्रि में दस वजे बड़े जोर की भूख लगी थी। किन्तु अँगुलियाँ जल जाने की वजह से मैं पराठे वना नहीं सका। जी में आया सब्जी ही खा लूँ, कुछ-न-कुछ तृप्ति हो जायगी।

यही सोच कर मैं चारपाई से उठकर रसोई घर गया। मन में आया, झरना आयेगी, तो क्या खायेगी ?

इसी उधेड़-वुन में वैठा था कि झरना आ गयी। मैंने उसे देखते ही अपनी मुद्रा में कुछ परिवर्तन कर लिया। उस समय मेरी भृकुटियों में एक तनाव आ गया था। आँखें वास्तविक स्थिति में न होकर कुछ बड़ी दिखायी दे रही थीं। चेहरे पर कर्कशता के भाव स्पष्ट झलकने लगे थे। किन्तु मैंने उससे कुछ कहा नहीं।

झरना ताड़ गयी, मैं रुष्ट हूँ। भयभीत-सी वह मेरे समीप आयी, वोली—"लाइये, मैं बना लेती हूँ।"

मैं कुछ नहीं बोला। तव उसने कहा—"मैं मिस अरोड़ा से कह रही थी, मुझे देर हो जायगी, मगर दुष्ट मानी नहीं, घसीट ही ले

गया।

कहाँ घसीट ले गयी, यह बात झरना के मन में रह गयी। तभी उसकी दृष्टि मेरी जली हुई अँगुलियों पर जा पहुँची। बोली—"अरे बाबू, आज जल गये!"

मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया।

इतने में उसने मेरा हाथ अपने हाथ में ले लिया। भावना में आकंठ डूबी हुई वह बोली—"हरामजादी की बच्ची मुझे सिनेमा हाउस घसीट ले गयी, नहीं तो भला ऐसा अनर्थ क्यों होता!"

उसकी स्वर लहरी में कल-कल नादिनी प्रेम की निर्झरिणी वह रही थी। मैंने उसकी आँखों की ओर एक बार देखा। उत्तर में उसने मुझ पर ऐसी दृष्टि डाली कि मेरा सम्पूर्ण क्रोध शीतल जल के छीटे पाते ही उफनाते हुए दुग्ध की भाँति शांत हो गया।

और तभी मेरे मुँह से निकल गया—"झरना, बड़ी जलन हो रही है।"

"अच्छा बाबू उठो तो ज़रा," प्यार के उन्माद की टुनकियाँ देती हुई वह बोली—"मैं क्या जानती थी कि तुम हाथ जला बैठोगे!"

झरना ने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे उठाया और चारपाई पर लाकर लिटा दिया। थोड़ी देर तक वह गंभीर बनी बैठी रही। उसकी मुखाकृति में ऐसा आभास होता था, जैसे मेरे जल जाने का उसे वास्तव में दुःख है।

बोली—"खाना भी कुछ नहीं खाया होगा।"

कथन के बाद मेरे बालों पर हाथ फेरती हुई वह बोली—"कितनी बार कहा है कि कुछ बाज़ार से खा लिया करो। आखिर हम किसलिये कमाते हैं? जब स्वास्थ्य ही नहीं ठीक रहेगा तो हम क्या करेंगे।

इसके बाद झरना ने चोली में रखे हुए दो सिनेमा-टिकटों को निकाल कर ज़मीन पर फेंकते हुए कहा—"उस हरमजादी को क्या है। सताइस-अट्ठाइस वर्ष की हो गयी, ब्याह तक नहीं किया! स्वच्छन्दता से खाती-पीती और घूमती है!"

उस दिन पहले-पहल मैंने जाना कि झरना की प्राचार्या अभी तक अविवाहिता हैं। और उनका शादी करने का क़तई इरादा नहीं

है। शायद वे स्वच्छन्द प्रकृति की महिला हैं। उन्हें किसी का बंधन स्वीकार नहीं है। आधुनिक लड़कियों में इस प्रकार की प्रकृति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। वे ब्याह को मात्र एक बंधन स्वीकार करती हैं।

इसी बीच झरना बोली—"आप थोड़ी देर लेटिए, मैं अभी पराठे सेंक देती हूँ।"

इतना कहकर झरना रसोईघर की ओर जाने लगी। उस क्षण उसके चेहरे पर क़तई उदासी न थी। अब वह उल्लसित एवं प्रफुल्लित दिखाई दे रही थी।

आजकल मैं जितना ही झरना को समझने की चेष्टा करता हूँ, समस्या उतनी ही उलझती जा रही है। समझ में नहीं आता आखिर यह समस्या कैसे सुलझेगी ? कभी-कभी सोचता, कि दोषी मैं स्वयं हूँ। झरना को यदि स्कूल में नौकरी करने के लिये न कहता, तो आज मेरी यह दशा क्यों होती ?

नौकरी से अधिक चिन्ता मुझे झरना की थी। रात-दिन उसी को लेकर उलझा रहता ! कभी-कभी ऐसा भी सोचता, कि हो न हो झरना अब प्राचार्या की भाँति एक स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना चाहे। वह भी अब किसी प्रकार का बंधन नहीं चाहती। सच पूछो तो मुझसे भागना चाहती है। अन्यथा रात्रि में कभी आठ बजे, कभी नौ बजे आने में क्या तुक है। कौन समझ सकता है कि इतनी रात तक वह कहाँ और किसके साथ घूमती रहती है।

कई बार मन में आया, उससे स्पष्ट क्यों न कह दूँ—अब तुम किसी और को प्यार करने लगी हो किन्तु ये शब्द मेरे होंठो तक आते-आते रुक जाते थे; और ऐसा प्रतीत होता था, मानों झरना इन शब्दों को सुनते ही वह कह देगी—'ठीक है, यदि आपको मेरे चरित्र पर संदेह है, तो हमारे रास्ते अलग भी हो सकते हैं। मैं इसे आवश्यक नहीं मानती कि जिस मार्ग पर हम चल रहे हैं, वह हमारे लिये सदैव शिव ही सिद्ध होंगे।

चिन्तन के उस क्षण मेरा सम्पूर्ण शरीर पीपल के पात-सा काँप उठता था। झरना, जिसे मैंने जिन्दगी की तरह चाहा हो, मुझसे एक दिन दूर हो जाय, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

लेकिन व्रण में जब मवाद भर जाता है, तो वह चुहचुहाने लगता है। उस क्षण इच्छा यही होती है कि हम जी भर कर उसे खुजलायें। क्योंकि खुजलाना उस समय बड़ा प्यारा लगता है। उस व्रण की भविष्य में क्या स्थिति होगी, हम इसकी कतई चिन्ता नहीं करते। बस, उस समय केवल खुजलाना चाहते हैं और खुजलाते रहते हैं।

यही स्थिति मेरी और झरना की थी। वह अब मेरे लिए एक फोड़ा थी। लेकिन सब कुछ जानते और उसे न चाहते हुए भी मैं यह जानना चाहता था कि आखिर वह अब मुझे क्यों नहीं चाहती ?

सात

आफ़िस में बैठा हुआ टंकन कर रहा था कि तभी चपरासी ने आकर मुझसे कहा—"बाबू जी, आपका फ़ोन है।"

पहले तो मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरा फ़ोन कैसा? मुझे भला कौन फ़ोन करने लगा ? क्योंकि कभी-कभार किसी मित्र ने फोन कर दिया, यह तो बात ही और है। यों मेरे फ़ोन बहुत कम आते थे। महीने-दो महीने में कहीं एक-दो। किन्तु जब मैंने टेलीफ़ोन उठाकर कहा—"हलो ! तो दूसरी ओर से एक परिचित आवाज़ आयी—"मैं झरना बोल रही हूँ।"

अचानक झरना का नाम सुनते ही मैं घबरा गया। क्योंकि इसके पूर्व उसने मुझे कभी फ़ोन नहीं किया था। हालांकि मैंने अपना टेलीफ़ोन नम्बर उसे नोट करा दिया था कि न जाने, कब क्या आवश्यकता आ पड़े।

उस समय मुझे कुछ ऐसी आशंका हुई कि कहीं झरना का कोई एक्सीडेंट तो नहीं हो गया। किन्तु ज्यों ही उसने कहा—"बाबू, माता जी की तबियत अचानक कुछ खराब हो गयी है। यहाँ स्कूल में मुन्ना सूचना देने आया है।"

मैंने आश्चर्य करते हुए कहा—"क्यों क्या बात हो गयी ?"

झरना ने कहा—"घबराने की कोई विशेष बात नहीं है, वृद्धा तो हैं ही। उन्होंने मुझे बुलवाया है।"

"तो फिर ?" मैंने कहा।

उत्तर में झरना ने कहा—"मैं स्कूल से शीघ्र माता जी के यहाँ चली जाऊँगी, और यह भी संभव है कि रात में न आ सकूँ; तो आप कहीं होटल में खाना खा लीजिएगा, सुवह तक मैं आ ही जाऊँगी। अच्छा !"

मैंने उत्तर में कह दिया—"अच्छा ठीक है, जाओ।"

झरना ने पुनः जोर देते हुए कहा—"खाना अवश्य कहीं खा लीजिएगा।"

टेलीफ़ोन का रिसीवर रखकर कुर्सी पर आ वैठा। सोचने लगा—"झरना का रवैया विल्कुल वदलता जा रहा है। कभी माँ के यहाँ जाना है, तो कभी सहेली के यहाँ पार्टी में जाना है। कभी कहीं नहीं जाना, तो कभी कहीं जाना है। आखिर यह कव तक चलेगा ? समझ में नहीं आता वह यह क्यों नहीं सोचती कि आखिर को वह एक गृहिणी है, जिसका अपना एक घर है। ऐसी स्थिति में कालेज की लड़कियों की भाँति वह स्वच्छन्द कैसे रह सकती है ? उसे घर-गृहस्थी की भी तो चिन्ता होनी चाहिए। अगर उसके एक वच्चा हो गया होता तो क्या वह इस भाँति घूमती फिरती ?"

अन्त में मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अव झरना से स्पष्ट कह देना पड़ेगा कि या तो नौकरी त्याग दे, वरना ठीक चार वजे घर लौट आये। कहीं किसी के यहाँ आने-जाने की आवश्यकता नहीं है। जव मेरे यहाँ उसकी कोई सहेली नहीं आती, तो वही क्यों सवके यहाँ जा पहुँचती है। क्या उसकी सहेलियों में इस वात की चर्चा नहीं होती होगी कि झरना उन्हें अपने घर कभी नहीं वुलाती ?

कार्यालय से छूटते ही घर आया। मन पर एक अजीब-सी उदासी छायी हुई थी। हाथ-मुँह धोने के पश्चात् जी में आया, क्यों न मैं भी चलकर माता जी को देख आऊँ। नहीं तो वे भी क्या यह न सोचेंगी—अच्छा दामाद मिला है। फिर रास्ते में कहीं चाय पी लूँगा !

किन्तु जव घड़ी पर दृष्टि गयी, तो साढ़े पाँच वज गये थे। छः वजे मुझे 'उत्तरप्रदेश आयल मिलर्स ऐसोसियेशन' के कार्यालय में पहुँचना था। इस लिये ससुराल जाने का इरादा मैंने त्याग दिया और कपड़े पहिन कर कार्यालय की ओर चल पड़ा।

पर वहाँ अधिक काम न था। यही कोई पाँच-सात चिट्ठियाँ टंकन के लिये होती थीं। कार्यालय के जो स्वामी थे, वे एक कानोडिया जी थे; मस्त मौला आदमी! सात के बाद तभी बैठते थे, जब उन्हें कोई विशेष कार्य होता। अन्यथा मुझे टाइप करने के लिये चिट्ठियाँ देकर चले जाते थे। चपरासी से कह जाते, आफिस ठीक से बन्द कर लेना।

उस दिन जब टाइप करने के लिये मैं पहुँचा, तो वे जाने ही वाले थे। मुझे देखते ही बोले—"मिस्टर वर्मा। एक चिट्ठी है, उसे निकाल दीजिएगा। मुझे एक आवश्यक कार्य है, इसलिये मैं जा रहा हूँ।"

इतना कह कर उन्होंने अपना आलेख मुझे सौंप दिया। इसके बाद मेज़ की ड्रार बन्द करके वे चले गये।

अधिक से अधिक मेरे लिये वह दस मिनट का कार्य था। कानोडिया जी के जाते ही चपरासी ने मुझसे कहा—"बाबू जी! साहब तो गये घूमने। मुझे भी जरा आज कुछ काम है। जल्दी टाइप कर दीजिये, तो हम लोग भी चलें।"

मुझे भी इस बात की प्रसन्नता थी कि जल्दी छुट्टी मिल गयी। तत्काल मैंने चपरासी से कहा—"लो, अभी निकालता हूँ।"

थोड़ी देर में चापरासी ने कार्यालय बन्द किया और हम लोग चल दिये। घर लौट कर आना नहीं था, क्योंकि अभी सात बजे थे। मैं वहाँ से सीधे महात्मा गाँधी मार्ग जा पहुँचा।

यह मार्ग ऐसा था, जहाँ थोड़ी देर के लिए चित्त को शान्ति मिल जाती है। प्रायः सात बजते ही मनचले लोग इधर-उधर चक्कर काटने लगते थे। उड़ती रंगीन तितलियों की दृष्टियाँ पीछा करती हैं। अच्छी-खासी रौनक शाम को यहाँ हो जाती थी।

अवकाश होने के कारण, मैंने भी सोचा, चलो थोड़ी देर के लिये तबीयत बहला आऊँ। वहीं कहीं भोजन भी कर लूँगा।

'क़लपना' जलपान गृह इस मार्ग का एक अत्यन्त प्रसिद्ध रेस्तोराँ था। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह वातानुकूलित था। बहुत बड़ा हाल था, जहाँ कभी-कभी इंगलिश और भारतीय नृत्यों के आयोजन भी होते रहते थे। रेस्तोराँ के ऊपरी भाग में ठहरने की भी व्यवस्था थी। प्रायः यहाँ विदेशी आकर ठहरते थे।

यद्यपि एक लिपिक के लिये इस प्रकार के रेस्तोरां और होटल महंगे पड़ते हैं; किन्तु वर्षों बाद मेरी भी इच्छा हो आयी थी कि चलो चल कर देखें तो सही, कैसा है। नगर में उन दिनों उसकी बड़ी चर्चा भी थी। जेब में पन्द्रह-बीस रुपये पड़े थे। इसके पूर्व मैंने इसे कभी नहीं देखा था। यद्यपि झरना को लेकर जाने की कई बार इच्छा हुई थी, किन्तु अर्थ-संकट के कारण उस समय न जा सका था।

रेस्तोरां के भीतर प्रवेश करते ही तबीयत हरी हो गयी। मन-ही-मन मैंने सोचा कि जीवन का सच्चा सुख वही भोगता है, जिसके पास पैसा होता है। सजावट देखते ही मेरा मन मुग्ध हो उठा। यह भी सोच लिया कि अथ का अभाव भले ही रहे किन्तु प्रेरणा के लिए हमें घूमना और देखना, अध्ययन और अनुभव सबका करना चाहिये।

एक कुर्सी पर चुपचाप जाकर बैठ गया और 'बेयरा' की प्रतीक्षा करते हुए मेज पर पड़े मीनू को उठा कर पढ़ने लगा। क्योंकि वास्तव में मैं सस्ती-से-सस्ती वस्तुओं का ऑर्डर देना चाहता था। किन्तु मैंने देखा, चार रुपये से कम में भोजन किसी प्रकार नहीं हो सकता था।

एक बार मन में आया, क्या अन्तर पड़ता है एक दिन के लिये ? फिर इसी क्षण झरना का कथन भी स्मरण हो आया, उसने कहा था—"खाना जरूर कहीं खा लीजिएगा।"

इतने में 'बेयरा' ने आकर प्रश्न किया—"क्या लायें साहब ?"

"एक कप चाय !"

खाने का विचार मैंने इस लिये त्याग दिया था कि हो सकता है यहां मेरे जैसे व्यक्ति का चार-पांच रुपये में भी पेट न भरे ! कुछ ऐसा निश्चय कर लिया था कि किसी सस्ते होटल में चलकर कहीं खाना खा लूंगा। 'बेयरा' ने मुझे साब् कह कर संबोधित किया था; किन्तु उस समय मेरी स्थिति यह थी कि उसके वस्त्र मेरे वस्त्रों से अधिक स्वच्छ थे ! अतः मैं मन ही मन हीन भावना का अनुभव कर रहा था।

जितने भी व्यक्ति वहां बैठे थे, अधिकांश उनमें ऐसे थे, जिनके पास अपनी-अपनी पिस्तौलें थीं। कुछ ऐसे भी थे, जो खाली थे और उनकी दृष्टि दूसरे की पिस्तौलों पर रह-रह कर जा पड़ती थी।

ठीक यही स्थिति उस समय मेरी भी थी। मैं सोच रहा था, काश झरना भी साथ होती।

उसी क्षण सहसा मेरी दृष्टि एक केबिन के परदे के हट जाने से, उसके भीतर प्रवेश कर गयी। वह केबिन मेरे सामने पड़ती थी। मेझे ऐसा आभास हुआ, जैसे उसके भीतर झरना बैठी है। पहले तो मुझे अपनी आँखों पर कतई विश्वास न हुआ, क्योंकि उसकी माँ अस्वस्थ थी, और वह उसे देखने गयी थी। किन्तु इसके बाद ही मैं अत्यन्त उत्सुक होकर उधर ताकने लगा।

इसी बीच वेयरा आकर चाय रख गया। किन्तु उस समय चाय "कौन पीता? दिल पर जैसे साँप लोट गया था। झरना और यहाँ?"

किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने सोचा कि जिस साड़ी को देखकर मैं झरना के होने का अनुमान कर रहा हूँ, वैसी ही साड़ी दूसरी स्त्री भी तो पहिन सकती है?

इसके बाद मैंने चाय का एक घूंट पिया। किन्तु मेरी दृष्टि उसी केबिन पर जमी हुई थी। उसके भीतर मधुर-मधुर कुछ बातें हो रही थीं, किन्तु स्वर स्पष्ट न थे। ठीक तरह मैं कुछ सुन न सका।

उसी समय उस स्त्री के पैर मुझे दिखाई दे गये, जिन्हें देखकर मैं इस निश्चय पर पहुँचा कि वह झरना ही है, दूसरी कोई नहीं।

तभी मेरे मन में आया कि वह जो दूसरा व्यक्ति बैठा है, वह कौन हो सकता है? किन्तु उसका सही अनुमान लगाना कठिन था। मुझे उस समय केवल एक ही व्यक्ति रह-रह कर स्मरण आता था, और वह था 'अभिनव वस्त्रालय' के स्वामी का पुत्र, जो एक दिन मेरे घर आ चुका था।

मैं उस समय कितना उद्विग्न था, इसका अनुमान आप नहीं लगा सकते! रह-रहकर मेरी इच्छा हो रही थी कि मैं केबिन के परदे को हटाकर झरना से कहूँ—"बोल हरामजादी, यहाँ तेरी माता जी कहाँ बैठी हैं?"

अब झरना के सम्बन्ध में मेरा सन्देह पुष्ट हो गया था कि उसका प्रेम किसी अन्य पुरुष से चल रहा है। इसी कारण अब वह मुझे नहीं चाहती।

किन्तु प्रश्न था कि यह पुरुष हैं कौन, मैं यह जानने के लिए व्याकुल था। झरना को मुझसे छीनने का यह अनधिकार चेष्टा कर कौन रहा है ?

मैं एक पागल की भाँति उठकर खड़ा हो गया। वास्तव में उस समय मेरी स्थिति, किसी पागल से कम न थी। मेरी पत्नी, मेरे ही सम्मुख दूसरे पुरुष के साथ स्वच्छन्दता पूर्वक घूमे, उससे प्रेम करे, यह कम-से-कम मैं गंवारा नहीं कर सकता था !'

मैं उस केबिन की ओर इधर-उधर देखता बढ़ रहा था। तभी मुझे अपनी अशिष्टता का ध्यान आया। क्रोध में मनुष्य पागल हो जाता है। क्या सही है, क्या गलत, इसका उसे किंचित मात्र ध्यान नहीं रहता।

मैंने सोचा—यदि कहीं वह झरना हुई, तो मैं उसे यहीं पीटना प्रारम्भ कर दूँगा ! कोई कुछ कहे, वह मेरी पत्नी है। मेरा उस पर सर्वाधिकार है। मैं उसे प्यार करता हूँ, तो पीट भी सकता हूँ। इसमें किसी को क्या आपत्ति हो सकती है ?

किन्तु इस समय मैं एक ऐसे स्थान पर था, जहाँ लोग शिष्टता का आवरण डाले हुए थे। आवरण शब्द का प्रयोग मैं जान-बूझकर कर रहा हूँ। क्योंकि इस रेस्तोराँ में मुझे कुछ ऐसे भी लोग दिखाई दिये, जो परस्पर प्रेमी और प्रेमिका थे। समाज जिनके इस प्रकार मिलन को अवैधानिक मानता है। इन प्रेमी-प्रेमिकाओं की आँखों में थोड़ी बहुत झिझक था। वे जो कार्य कर रहे थे, वह समाज की दृष्टि में वांछनीय नहीं था। इसका बोध उनके हाव-भाव से सहज ही हो जाता था।

मैं उस केबिन के ज्यों ही निकट पहुँचा कि बेयरा ने मुझे टोकते हुए कहा—"आप कहाँ जा रहे हैं आपकी चाय ठण्डी हो रही है ?"

उसका इतना कहना था कि मेरा संपूर्ण पागलपन प्राय: समाप्त हो गया। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उस समय मैं कोई भयानक अपराध करने जा रहा था। मैं अपनी कुर्सी पर आकर बैठ गया। बेयरा की दृष्टि अब भी मेरे ऊपर लगी थी। अब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि वह या तो मुझे एक पागल समझ रहा है, या अशिष्ट, जिसे इस रस्तोरां में प्रवेश करने की रीति ही नहीं मालूम है।

उस क्षण मुझे अपने क्रिया-कलाप पर घोर पश्चाताप हुआ। मैंने तर्जनी से संकेत करते हुए वेयरा को बुलाया, और कह दिया—"बिल लाओ।"

अब भी मुझे वेयरा की भंगिमा से ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह मुझे निरा पागल समझ रहा है।

इसके दो कारण थे। पहला तो यह था कि मेरी चाय अब भी वैसे ही रखी-रखी ठंडी हो गयी थी। दूसरा कारण यह कि मेरे रंग-ढंग में उसे एक अथवा असामान्य व्यक्ति की गन्ध मिल रही थी।

जब तक वेयरा बिल लाये, मैं निश्चय कर चुका था कि रेस्तोरां के द्वार पर खड़ा होकर झरना की प्रतीक्षा करूँगा। वह जब निकलेगी तब तो मुझे उसको पहिचानने में कोई कठिनाई न होगी।

पचास पैसे चाय का बिल और अठन्नी वेयरा को इनाम देकर मैं उठ खड़ा हुआ। वेयरा मेरा मुँह देखता रह गया। क्योंकि शायद मेरे जैसे ग्राहक उसे कम मिले होंगे। मैंने आठ आने 'टिप' वेकार नहीं दी थी। उसका अपना एक महत्त्व था। अन्यथा मेरे जैसे व्यक्ति के लिए इतनी टिप देना ज़रा कम सम्भव है।

अब रेस्तोरां के फाटक पर सत्याग्रही की भाँति मैं आकर डट गया। मैंने निश्चय कर लिया था कि झरना भले ही मुझसे संबंध विच्छेद कर ले, किन्तु मैं उसे आज अनावृत करके मानूँगा। बहुत दिनों तक उसने मेरी आँखों में धूल डाली है।

खड़े-खड़े वर्षों बाद उस दिन अचानक सिगरेट पीने की मेरी तबियत हो आयी, जबकि आर्थिक संकट के कारण मैंने त्याग दी थी।

रेस्तोरां से लगी, पान की एक दूकान थी। मैंने उससे एक 'कैप्स्टन' सिगरेट ली, जिसका मूल्य उसने चौदह पैसे लिये। मैं आश्चर्य-चकित रह गया। यही सिगरेट कभी एक आने की मिलती थी।

मन-ही-मन मैंने कहा—"मंहगाई किस तेजी के साथ बढ़ती जा रही है।"

उस समय भी मेरी एक दृष्टि रेस्तोरां के द्वार पर लगी थी कि कहीं ऐसा न हो, झरना अपने प्रेमी के साथ झट से निकल जाय!

लगभग बीस मिनट तक मैं प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु वे लोग बाहर न निकले। जबकि इस बीच न जाने कितने जोड़े आये और गये। मैं कुछ अधीरता के साथ एक सिगरेट समाप्त कर, दूसरा थोड़े ही अन्तर से सुलगा लेता था।

मेरे मन में आया, संभव है, यह मेरा सन्देह मात्र रहा हो। जो लोग बाहर गये हैं, उन्हीं में वे लोग भी हों, जिन्हें मैंने केबिन में देखा था। फिर भी मैंने सोचा कि दस-पाँच मिनट और प्रतीक्षा कर लेने में हर्ज ही क्या है।

काश, उस समय झरना रेस्तोरां के द्वार पर मिल जाती। भले ही मुझे जेल की रोटियाँ तोड़नी पड़तीं, मैं उसे मारते-मारते बेदम कर देता। क्योंकि उधर उसका व्यवहार मेरे प्रति नितान्त असह्य हो गया था। उसमें मेरे प्रति अब वह आत्मीयता नहीं थी, जो इसके पूर्व थी।

मैंने घड़ी देखी। पौन घण्टा प्रतीक्षा करते व्यतीत हो गया, किन्तु वे लोग नहीं निकले। उस समय मुझे अपने आप पर भी क्रोध आया। व्यर्थ में मैंने झरना जैसी धर्मपत्नी पर अविश्वास किया। इतनी देर तक रेस्तोराँ में भला कौन बैठा रहेगा?

इतना सोचने पर भी मेरी इच्छा वहाँ से हटने को नहीं हो रही थी। मैंने सोचा एक बार रेस्तोराँ में प्रवेश करके देख लेने में क्या हर्ज है?

इतना सोच कर मैं पुनः उसके भीतर पहुँचा।

मेरी दृष्टि प्रवेश करते ही उस केबिन पर जा पहुँची, जहाँ वे लोग बैठे थे। किन्तु यह देखकर कि वहाँ कोई नहीं है, मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। अब केबिन का परदा खुला हुआ था।

इतने में ही उसी बेयरा ने, जिसे मैंने अठन्नी इनाम दी थी, आकर मुझसे प्रश्न किया—"साब आप किसे खोज रहे हैं?"

वह यह समझ गया था कि मैं कुछ परेशान हूँ। तभी मैंने उस केबिन की ओर संकेत करते हुए उससे कह दिया—"यहाँ मेरे एक मित्र बैठे थे, उन्हीं को देख रहा हूँ।"

बेयरा सब कुछ समझ गया। वह नित्यप्रति इस प्रकार की लीलाएँ देखा करता था। बोला—"साब वे लोग तो गये।"

उसका उत्तर सुनकर मैं कुछ संकुचित हो उठा। फिर भी मैंने

उससे कहा—"बाहर जाते हुए तो मुझे दिखाई दिये नहीं।"

बेयरा समीप आकर मन्द स्वर में बोला—"यहाँ एक दरवाज़ा और भी है।"

"कितनी देर हुई ?" मैंने उससे शीघ्रता में प्रश्न किया।

"पन्द्रह बीस मिनट हो गये।"

"अच्छा !" आश्चर्य से मने कहा।

मैं अत्यन्त लुटा हुआ खोया-खोया सा रेस्तोराँ के बाहर निकला।

मुझे प्रसन्नता इस बात की थी कि मेरी अठन्नी व्यर्थ नहीं गयी।

आठ

रेस्तोराँ के बाहर आकर, मैंने उस पूरी बिल्डिंग को एक बार ध्यान से देखा, जिसके भीतर खुले-आम, दिन-दहाड़े आधुनिक सभ्यता की आड़ में दूसरे की बीवी और बहू-बेटी के साथ इस प्रकार के अवैधानिक कार्य सम्पादित किये जाते हैं।

अब मेरे मन में उस चोर दरवाजे को देखने की लालसा बलवती हो उठी। किन्तु यह सोचकर कि मुझे क्या करना है, मैं घर की ओर चल पड़ा। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि वह झरना ही थी, यद्यपि इसके लिये भी मेरे पास कोई प्रमाण नहीं था।

थोड़ी देर में मैं घर आकर बिस्तर पर लेट गया। अनेक संकल्प विकल्प मन में जन्म लेते रहे थे। जिस नारी को मैं इतना प्यार करता हूँ, वही नारी मुझसे छल करती है।

चारपाई पर लेटा-लेटा मैं सोच रहा था—'नारी का प्यार भी एक प्रवंचना है।' मुझे कुछ ऐसा भी प्रतीत हुआ कि जो पत्नी किसी अन्य व्यक्ति की प्रेयसी होकर अपने पति के साथ उस प्रेमी से भी अधिक प्रेम का व्यवहार करती है। वह प्रेम का अभिनय करती है। यह एक प्रदर्शन है, इसमें सच्चाई सम्भव नहीं। पति और पत्नी के दायरे में आ जाने पर प्रेमी और प्रेयसी का भाव कहाँ रह जाता है क्योंकि जिस उपलब्धि के लिए प्रेमी और प्रेयसी के हृदय में

तड़पते हैं, वह तो प्राप्त हो जाता है। फिर हमारे मिलन में, हमारे हाव-भाव में वह स्थिति कहाँ आ पाती है ? दाम्पत्य सूत्र में बंध जाने के पश्चात् अपने कर्तव्य के प्रति हम अधिक निष्ठावान जो रहते हैं।

झरना के प्रेम में भी मुझे एक प्रदर्शन की गंध मिली। उसके संपूर्ण हाव-भाव तथा क्रिया-कलाप में मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह एक प्रदर्शन है। वह मुझे अपने कृत्रिम प्रेम से इस बात का बोध नहीं होने देना चाहती कि वह मुझे नहीं चाहती।

इन्हीं विचारों में खोया-खोया मैं कब सो गया, इसका मुझे ज्ञान न हुआ। किन्तु प्रातः पाँच बजे, जब मैं गहरी निद्रा में डूबा हुआ एक ऐसा स्वप्न देख रहा था, जिसमें झरना मुझसे कह रही थी—"अब हमारे आपके रास्ते अलग-अलग हैं।" किसी ने द्वार की कुण्डा खटखटायी।

मैं चौंक कर उठ बैठा। उस समय मैं पसीने-पसीने हो गया था। अब भी मैं यही सोच रहा था कि झरना मुझसे दूर होने जा रही है। मैं इस व्यथा को कैसे सह पाऊँगा ?

मैंने जिस समय उठकर दरवाजा खोला, देखा झरना खड़ी है। उस समय मुझे उसे देखकर इतना क्रोध आया कि मारते-मारते उसे बेदम कर दूँ ? फिर भी मैंने धैर्य से काम लिया।

इसी बीच झरना भीतर आ गयी।

मैंने उससे प्रश्न किया—"इतनी सुबह कैसे आ गयी ?"

उत्तर में उसने मेरी ग्रीवा में बाहें डालते हुए मुस्करा कर कह दिया—"यही क्या कम है कि मैंने तुम्हारा वियोग रात्रि में इतनी देर तक सहन कर लिया ?"

इसके पश्चात् मुझे प्यार करती हुई वह बोली—"सुबह उठते ही तुम्हें चाय की आवश्यकता होती है न ! मैंने सोचा भला तुम्हें चाय कौन देगा ?"

यद्यपि मुझे अभिनय का ही कुछ भान हुआ, तथापि वह मुझे इतना प्रिय लगा कि मैंने उत्तर में कुछ कहा नहीं।

मैं उस समय झरना की आँखों को पढ़ने की चेष्टा कर रहा था।

इसी समय उसने कह दिया—"रुको, मैं तुम्हारे लिये चाय

बना लाऊँ।"

इतना कह कर झरना उठ खड़ी हुई। जिस समय वह जा रही थी, मेरी दृष्टि उसकी साड़ी पर थी। उसकी क्रीज़ समाप्त हो चुकी थी। उसमें जगह-जगह सिकुड़नें आ गयी थीं। झरना की आँखें चढ़ी थीं, जैसे वह रात भर की जगी हो।

उस समय मुझे इस संदेह का स्मरण आया कि झरना माँ के घर नहीं गयी थी। वह तो एक बहाना मात्र था। इसने अपने प्रेमी के साथ किसी होटल में रात जरूर गुजारी है। यही कारण है कि वह प्रातः काल इतनी जल्दी आ गयी है।

झरना ने चाय लाकर मेरी टेबिल पर रख दी और कहा—"बाबू तुम पियो मैं ज़रा निपट लूँ।"

इतना कह कर झरना चली गयी। वह मुझसे आँखें मिलाने में जैसे झिझक रही थी। मैंने मन ही मन में सोचा, कुछ दाल में काला अवश्य है। क्योंकि नित्य-प्रति जब तक मैं चाय नहीं पी लेता था, वह मेरे पास बैठी रहती थी।

चाय पीने के बाद मैं शीघ्र ही स्नानागार की ओर चला गया। देखा, झरना नहा रही है। आज उसका इतनी जल्दी स्नान करना भी मेरे लिये एक संदेह का कारण था। किन्तु मैंने उस समय कुछ कहा नहीं। सीधे शौच को चला गया।

थोड़ी देर पश्चात् कपड़े छाँटने की आवाज़ सुनायी देने लगी। जिस समय मैं शौच गृह से बाहर आया, वह स्नानागार से निकल चुकी थी। मैंने देखा अरगनी पर पेटीकोट और ब्लाउज सूखने के लिये त्रिशंकु की भाँति लटके हुए हैं ? इस समय मेरे मन में आया, मेरी भी यही स्थिति है।

एक बार मैंने सोचा—क्यों न सब कुछ अभी स्पष्ट कर दूँ ? किन्तु फिर कुछ सोच कर मुझे चुप रह जाना पड़ा। किसी बात की पुष्टि के लिये प्रमाण का होना आवश्यक है। और जो कुछ भी मैं सोच रहा था, उसमें संदेह ही संदेह था, प्रमाण कुछ नहीं था।

जिस समय मैं स्नान करके बाहर गया, देखा झरना चूल्हे के सामने बैठी जल्दी-जल्दी आटा गूँद रही है। चूल्हे के ऊपर बटलोई में सब्ज़ी पक रही है।

प्रातः काल मैं दस बजे कार्यालय जाता था और झरना को स्कूल

के लिये घर से सात बजे निकल जाना पड़ता था। इसलिये सुबह प्रायः पराठे और सब्जी ही हम लोग खाते थे।

साढ़े छः बजे तक भोजन तैयार हो गया। झरना आकर बोली—"आज जरा मुझे जल्दी जाना है, इंस्पैक्टर साब स्कूल्स निरीक्षण करने आ रहे हैं।"

मैंने तीव्र दृष्टि से उसको देखा। अभी तक मैंने उससे कोई बात नहीं की थी।

वह बोली—"क्या बात है, आज मुझे बहुत घूर-घूर कर देख रहे हो?"

तभी मैंने तीव्र स्वर में कह दिया—"अब तुम्हें स्कूल जाने की जरूरत नहीं है।"

"क्यों, ऐसी क्या बात हो गयी?" मैं सोचने लगा, कहाँ से प्रारम्भ करूँ? इतने में उसने कह दिया—"बाबू, अगर तुम्हारी इच्छा माँ के यहाँ जाने देने की नहीं थी, तो मुझे पहले ही रोक दिया होता। मैं तो जानती हूँ कि मेरे बिना तुम एक मिनिट भी नहीं रह सकते।"

"ठीक है झरना, अभी तक नहीं रोका था, किन्तु अब रोकता हूँ।"

"मैंने कभी आपकी मरज़ी के खिलाफ कोई कार्य नहीं किया, न करना ही चाहती हूँ। मैं आज से स्कूल नहीं जाऊँगी।"

कथन के पश्चात् क्षण भर झरना मौन रही। किन्तु दूसरे ही क्षण कुछ सोचती हुई बोली—"मगर एक बात है, प्रकाश जी आप के मित्र हैं। कहीं यह न सोचने लगें कि जब हमें आवश्यकता पड़ी तो झरना ग़ायब हो गयी। उस समय फिर मुझे ही आप दोषी न ठहरायें......।"

प्रकाश मेरा मित्र है, इससे मैं इन्कार नहीं कर सकता। उसने सदैव मेरी सहायता की है। किन्तु झरना की बातें सुनते ही मेरा माथा ठनका। मैं सोचने लगा—"बात तो यह ठीक ही कहती है।"

उस समय मेरा क्रोध किसी अंश तक शान्त हो गया था। मैंने उत्तर दिया—"झरना, तुम से मैं कुछ बातें पूछना चाहता हूँ। मुझे विश्वास है कि तुम उसका सही-सही उत्तर दोगी।"

झरना ने तत्काल उत्तर दिया—"बाबू, मैंने कभी कुछ छिपाया है तुमसे? किन्तु......।"

इतना कहते-कहते झरना मौन हो गयी ! उसकी आँखें भर आयीं। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह अभी रो देगी।

अश्रु नारी का सबसे बड़ा अस्त्र है। जिस समय वह इसे धारण करती है, बड़ी-से-बड़ी शक्तियाँ यहाँ तक कि पत्थर की चट्टानें भी पिघल जाती हैं।

मेरे मन में उन आँसुओं को देखकर करुणा का उद्रेक हो आया।

इतने में झरना ने कहा—"तो स्कूल जाने के लिए क्या कह रहे हो ? तात्पर्य यह है कि अगर जाना है, तो देर क्यों की जाय ? प्रकाश जी व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी मेरे ऊपर छोड़ गये हैं; वे शायद किसी मन्त्री से मिलने गये हैं।"

झरना के इस कथन को सुनकर मैं चिन्ता में पड़ गया। मैंने सोचा—'प्रकाश कहीं बुरा न मान जाय। यों भी उसने एहसानों से मुझे दबा दिया है।

अब मुझे अपनी पूर्व पत्नी के दाह-संस्कार की घटना का भी स्मरण हो आया। वह न होता, तो निश्चित था कि मैं इस समय जेल की कोठरी में बन्द होता।

तभी मैंने एक दीर्घ निश्वास लेते हुए कहा—"ठीक है, जाओ। अब तो रात में ही मिलना होगा।

झरना जैसे कारागार से मुक्त हो गयी हो ! शीघ्र ही अपना बैग हाथ में लटकाया और चल दी।

अब मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ। झरना के सौन्दर्य में पहले एक भोलापन था, किन्तु अब उसमें एक प्रगल्भता आ गयी है।

स्त्री के भोले पन से मनुष्य एक बार बच सकता है, किन्तु उसकी धृष्टता से बच कर निकल आना कठिन होता है।

यह ठीक है कि झरना के सौन्दर्य में अब मुझे अपेक्षाकृत अधिक कलात्मकता दिखायी देती थी। कभी-कभी तो जान पड़ता, मैं उसका मानसिक दास बनता जा रहा हूँ।

किन्तु इन घटनाओं को जब सोचता हूँ, तो ऐसा प्रतीत होता है, जैसे उल्कापात हो गया है।—'मेरी पत्नी दूसरों के संग होटलों में रात विताये इस आघात को मैं कैसे सहन कर सकता हूँ ? यह तो मेरे पौरुष को एक चुनौती है।'

इतना सोचते-सोचते फिर मेरा माथा ठनका। मैंने घड़ी देखी, सात बज रहे थे। आफ़िस जाने में अभी तीन घंटे का समय था। शीघ्र ही मैंने कपड़े पहिने और मैं नीचे उतर आया।

किन्तु जिस समय मै ससुराल पहुँचा, यह देख कर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि झरना वहाँ बैठी अपनी मां से बातें कर रही है। अब मेरे सन्देह को आकार मिल गया। मैंने मन ही मन सोचा—'शायद झरना माँ को यह बताने आयी है कि यदि वे पूछें तो कह देना मै कल आयी थी। क्योंकि कल मैं जब यहाँ आ रही थी तभी मेरी एक सहेली मुझे अपने घर लिवा कर चली गयीं। फिर जब वहाँ देर हो गयी, तो उसने मुझे आने नहीं दिया। इसी बात को लेकर वे मुझ पर अत्यन्त अप्रसन्न हैं।'

सास ने मुझे देखते ही मेरी आवभगत प्रारम्भ कर दी। तभी मैंने प्रश्न कर दिया—"माता जी, आपकी तबीयत खराब है, आप बैठिए न?"

"हाँ बेटा, आजकल ऐसा ही चल रहा है। क्या करूँ? बुढ़ापा जो है।"

सास का स्वर सुनकर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई तोता बोल रहा है।

इसी बीच झरना ने अपनी माँ से कहा—"अम्मा, एक बात सुनो।"

और झरना अपनी माँ को लेकर एकांत में चली गयी। मुझे ऐसा आभास हुआ, जैसे उसने इसके पूर्व कुछ कह नहीं पाया था, तभी तो उसे साथ लेकर समझाने गयी है।

दो मिनट बाद माँ-बेटी लौट कर आ गयीं। तभी मेरे क्रोध की आँखें खुल गयीं। मै झरना से पूछने ही जा रहा था कि तुम तो कह रही थी स्कूल तुम्हें जल्दी पहुँचना है। तभी अपनी माँ से वह बोली—"अम्मा, मुझे जल्दी है, मैं जा रही हूँ।"

झरना के इस कथन को सुनकर मै मौन हो गया। क्योंकि मैंने सोचा, यदि कुछ कहता हूँ, तो वह कह देगी" जल्दी तो पहुँचना था, किन्तु मैंने सोचा अम्मा को देखती चलूँ।"

तभी मैंने सास की ओर उन्मुख होकर कहा—"सुना है अम्मा, कल तबीयत कुछ ज्यादा खराब हो गयी थी?"

उन्होंने मुँह बनाते हुए क्षीण स्वर में उत्तर दिया—"हां वेटा !"

अब मेरे मन में आया झरना मुझे अंगूठा दिखाकर चली गयी है !

सास के उत्तर को सुनकर मन-ही-मन मैंने कहा—"माँ-बेटी दोनों एक ही रंग में रंगी मालूम देती हैं।"

मैंने प्रश्न किया—"अब तो ठीक है ?"

"हाँ, वेटा।"

"कल झरना कब आयीं थीं ?"

"रात में आयी थी बेटा।"

"अच्छा" कुछ आश्चर्य से मैंने कहा।

इतने में सहसा मेरे मन में आया, झरना ने मुझे तीन बजे के लगभग फ़ोन किया था, किन्तु यहाँ वह रात में आयी थी।

मैंने सोचा, हो सकता है होटल से लौटकर यहां आयी हो।

"अच्छा अम्मा मैं चलता हूँ" इतना कहकर मैं उठ खड़ा हुआ।

तभी मेरी सास ने कहा--"अरे बैठो बेटा, पानी तो पी लो।"

कथन के पश्चात् उन्होंने बैठे-बैठे वहीं से आवाज़ दी—"अरे दुलहिन ! लल्ला के लिये पानी-वानी पीने के लिये कुछ ले आओ।"

फिर मेरी ओर उन्मुख होती हुई बोली—"बेटा, कैसे आये ?"

"यों ही तुम्हें देखने चला आया था माताजी।"

उत्तर के साथ मैं उठकर खड़ा हो गया। बोला—"नहीं, मैं पानी नहीं पियूँगा। मुझे देर हो रही है, मैं जा रहा हूँ।"

तभी मेरी सास बोलीं—"बेटा, जब कभी आते हो, नाराज़ ही बने रहते हो। यह अच्छी बात नहीं।"

मैं क्रोध में था ही। अभी तक अपने को संभालता चला आ रहा था। किन्तु इसके आगे अधिक सहने की सामर्थ्य मुझे न थी। मैं विस्फोट-सा फूट पड़ा—"अपनी लड़ैती से नहीं पूछती हो कि क्या बात हैं, जिसने मेरे साथ-ही-साथ तुम लोगों को भी मूर्ख बना रखा है।"

"आखिर क्या बात है ? बताओ न ?"

"बताना क्या है तुम सब जानती हो।"

इतना कह कर मैं चल पड़ा। घर से निकलते-निकलते मैंने कह

दिया—"अब मैं तुम लोगों का मुँह नहीं देखना चाहता।"

सास पुकारती रही—"अरे बेटा सुनो तो...!"

किन्तु फिर कौन सुनता है !

सड़क पर चलते-चलते थोड़ी दूर आकर मैंने देखा, मेरे साले का लड़का, जिसकी आयु सात वर्ष की होगी, खेल रहा है। मैंने उसे बुलाया—"मुन्ना !"

वह मुझे देखते ही दौड़ पड़ा। उसे लेकर एक मिठाई वाले की दूकान पर जा पहुँचा। पहले उसे दो रसगुल्ले खिलाये। फिर ढाई सौ ग्राम मिठाई लेकर उसके हाथ में थमा दी और कह दिया—जाओ।

मैंने देखा मिठाई पाकर वह अत्यन्त प्रसन्न हो उठा है। तभी मैंने उससे कहा—"बेटा तुम्हारी बुआ कल रात को आयी थीं ?"

मुन्ना ने उत्तर में कहा—"नहीं आज सवेरे आयी थीं।"

"मुन्ना ! तुम झूठ बोल रहे हो।"

"नहीं, मैं सच कहता हूँ।" एक आत्मविश्वास के साथ मुन्ना बोला—'चलो चाहे अम्मा से पूछ लो। बुआ सवेरे आयी थीं।"

"अच्छा ठीक है, तुम जाओ।"

इसके बाद मैं वहाँ से सीधे घर आया। मार्ग में झरना को लेकर मेरे मन में अनेक विचार उठते रहे। झरना, नौकरी करने के पूर्व मिथ्या नहीं बोलती थी। अब वह झूठ भी बोलने लगी है। मुन्ना कहता है—बुआ रात को नहीं आयी थी, जबकि माँ कहती है—वह रात में यहीं थीं।

'माँ की बीमारी का बहाना ! हूँ, तो सास ने भी बीमारी का बहाना बना लिया।' मैंने मन-ही-मन कहा !

उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे सारी दुनिया का सम्पूर्ण वातावरण झरना को लेकर एक ओर है और दूसरी ओर मैं अकेला हूँ।

मैंने कुर्सी पर बैठकर एक दीर्घ साँस ली और निश्चय किया कि आज ही सम्पूर्ण तथ्यों का स्पष्टीकरण हो जाना आवश्यक है। अब इस तरह की घुटन अधिक नहीं सहन की जा सकती। झरना जाती है, जाय। किन्तु मेरे लिए यह सम्भव नहीं है कि वह दूसरे से प्रेम करे और मैं चुपचाप देखता रहूँ।"

मन अधिक खिन्न होने के कारण उस दिन मैं कार्यालय नहीं गया। घर में पड़े-पड़े यह भी निश्चय कर लिया कि आज से पार्ट टाइम कार्य भी त्याग दूँगा।

पहले मैंने सोचा, प्रकाश से इस सम्बन्ध में कुछ विचार-विमर्श करूं, किन्तु यह सोचकर कि लाभ क्या होगा—मैं चुप रह गया। क्योंकि इस प्रकार के मामलों को उघारने से बदनामी अधिक होती है, उपलब्धि कम।

उस दिन संध्या को झरना ठीक सवा चार बजे आ गयी थी। मुझे देखते ही वह आश्चर्य में पड़ गयी। सहमी-सी बोली—"आज जल्दी कैसे आ गये ?"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

झरना ने पुनः कहा—"अरे मैं पूछ रही हूँ, आज जल्दी कैसे आ गये ?"

"जाओ अपना काम करो।" मेरा उत्तर था।

झरना तुनकती हुई, यह कह कर चली गयी—"जब देखो, तब भरे रहते हो। न जाने क्षण भर में क्या हो जाता है !"

मैंने झरना के चेहरे को देखा, जो तेज धूप में आने के कारण तमतमा आया था। ब्लाउज पसीने से भीग गया था। किन्तु आज मुझे उससे कोई सहानुभूति न थी। वह कुर्सी पर बैठने ही जा रही थी कि मैंने कह दिया—"मुझे कुछ नहीं हुआ है। मैं तो अब भी वही हूँ, किन्तु तुम ज़रूर अब वह नहीं हो।"

"क्यों, मुझमें ऐसी कौनसी नयी बात आ गयी ?"

"यह तुम मुझसे क्या पूछती हो ? अपने हृदय से पूछ कर देखो, रात-रात भर जिसके साथ घूमती-फिरती हो।"

झरना की भृकुटियाँ तन उठीं। बोली—"शर्म नहीं आती बाबू, आपको इस तरह की बात कहते हुए ?"

"शर्म तो उनको आती है, जो पानीदार होते हैं। बेशर्म को शर्म कहाँ ?"

"बस आप ही तो एक शर्मदार हैं दुनियाँ में। बाकी तो सब

लुच्चे लफंगे हैं।"

इतना कह कर झरना रसोई घर की ओर चली गयी।

जिस समय वह लौटी, चाय का प्याला उसके हाथ में था— "लीजिए"

"मैं नहीं पियूंगा।" क्रुद्ध मुद्रा में मैंने कह दिया।

झरना अपना प्याला सामने से दायें किनारे रखती हुई बोली— "आखिर क्या बात है ? आप इतने क्यों नाराज़ हैं ?"

"आज सब मालूम हो जायगा। तुम मेरी आँख में धूल झोंकना चाहती हो ? " एक सेकिंड मौन रहने के पश्चात् मैंने पुनः कहा— "मैं ऐसा कुछ नहीं समझता था। मैं कल्पना तक नहीं कर सकता था कि तुम मेरे साथ इतना छल करोगी।"

"खैर ठीक है। आप पुरुष हैं, चाहे जो कहें, किन्तु चाय ने क्या बिगाड़ा है, नाराजगी मुझसे है न कि चाय से।"

"नहीं, मैं अब तुम्हारे हाथ की चाय भी नहीं पी सकता।"

झरना की आँखें भर आयीं। दो चार बूँद मेजपोश पर चू पड़े। शायद वह दिन भर की भूखी थी। प्लेट में दाल-मोठ भी खाने के लिये लायी थी। किन्तु अब तक वह उसी प्रकार रखा था और चाय ठंडी हो रही थी।

तब मैंने कह दिया—"ठीक है, तुम चाय पी लो, तभी बात करूँगा। इधर या उधर। अब मैं और अधिक सहन नहीं कर सकता।"

"मैंने तो नहीं कहा आप सहन कीजिए।" नासिका फुलाती हुई झरना ने उत्तर में कह दिया।

इस कथन के बाद ही वह कुर्सी से उठ खड़ी हुई। दाल-मोठ और चाय का प्याला उठाकर वह रसोईघर की ओर चली गयी।

इसके पश्चात् हम दोनों एक दूसरे से नहीं बोले। हाँ, बीच में एक बार झरना पूछने आयी थी, खाना तो खायेंगे ?

मैंने कुर्सी पर बैठे-बैठे उत्तर में कह दिया था—"नहीं।"

रात्रि में भोजन नहीं बना। मेरे साथ झरना भी भूखी रह गयी। एक दिन वह था, जब मैं उसको भूखी सोते नहीं देख सकता था, किन्तु आज उसके प्रति मेरे मन में कोई सहानुभूति नहीं थी।

रात्रि के लगभग साढ़े आठ बजे थे। झरना ने मेरी और अपनी

चारपाइयों पर बिस्तर लगा दिये। इसके बाद वह अपने बिस्तर पर जाकर लेट गयी।

मैंने द्वार बन्द करने के पश्चात् खिड़कियाँ भी बन्द कर दीं। झरना भयभीत-सी उठकर बैठ गयी। बोली—"ये खिड़कियाँ क्यों बन्द कर रहे हैं ?

"अभी मालूम हो जायगा।" मैंने क्रोध में ही कहा।

झरना उठकर खिड़कियों की ओर बढ़ी। मैंने देखा, उसकी एक आँख मेरे ऊपर लगी हैं। वह काँप रही है। उसकी मुद्रा से ऐसा आभास हो रहा था, जैसे वह मुझे हत्यारा समझ रही है ! वह सोच रही है कहीं ऐसा न हो, मैं उसकी हत्या कर डालूँ।

इतने में मैंने उसे बढ़कर पकड़ लिया। वह चीख उठी। बोली—"क्या मुझे मार डालना चाहते हो ?"

जिस समय झरना ये बातें कह रही था, मैंने उसे खींचकर उसके बिस्तर पर पटक दिया। वह भयभीता थर थर काँपने लगी। अब उसकी आँखों में दया की भीख थी। किन्तु जैसे वह अपने को विवश पा रही थी।

कमरे की बत्ती जल रही थी और मैं एक हिंसक पशु की भांति उसे देख रहा था।

इतने में झरना अत्यन्त सहमी-सहमी बोली—"आखिर मेरा अपराध क्या है ?"

"अपराध ?" शीश हिलाते हुए मैंने कहा—"सचमुच अपना अपराध मानना चाहती हो ? सचमुच तुम्हें नहीं मालूम कि तुम मेरे साथ क्या प्रवंचना कर रही हो।

"नहीं।" झरना ने कहा।

उसकी भय की मात्रा इस समय कुछ कम हो गयी थी, किन्तु वह अब भी लेटी थी।

"यह तो मैं नहीं मानता कि तुम कुछ नहीं जानती हो। हाँ, यह अवश्य मानता हूँ कि हरेक नारी अपने इस अपराध को पति से गोपनीय रखना चाहती है। और तुम भी एक नारी हो।

"आप स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?" झरना इतना कहती हुई एक तेवर के साथ उठकर बैठ गयी !

इसीलिए मैंने खिड़कियाँ और द्वार बन्द कर दिये हैं। कथन के

साथ मैंने कमरे से दो कदम आगे बढ़ाते हुए कहा—"आज सम्पूर्ण स्थिति को मैं तुम्हारे आगे स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। तुमने मुझे सदैव अन्धकार में रखा है। क्या प्रेम का यही मतलब है कि तुम मेरे साथ छल करो ?"

"कदापि नहीं। मैंने स्वप्न में भी कभी आपके प्रति ऐसा नहीं सोचा।" झरना बोली।

जान पड़ा, उसके स्वर में एक आत्मविश्वास है, और है एक ईमानदारी और सच्चाई !

लेकिन।

सच्ची बात यह है झरना, अब मुझे बोध हुआ कि नारी वाणी से जितनी मधुर होती है, हृदय से उतनी ही कठोर। कान पकड़ कर शेर और बकरी को एक घाट पानी पिलाने की उसमें शक्ति होती है। फिर मैं तो एक पुरुष हूँ।"

"किन्तु मैंने आपके साथ कब विश्वासघात किया है ? झरना ने पूछा।

"कल तुम कहाँ थीं ?"

झरना का चेहरा क्षण भर के लिये जैसे सूख गया। वह अपने को सँभालती हुई बोली—"मैं आपसे कहकर गयी थी, कि मैं माता जी के यहाँ जा रही हूँ।"

"किन्तु उस समय तुम माता जी के यहाँ नहीं गयीं", कथन के साथ मैंने तनिक कर्कश स्वर में कहा—"मैंने कल तुम्हें 'कल्पना' रेस्तोराँ में देखा था।"

मेरे इस कथन पर झरना उछल पड़ी। बोली—"मैं इसे कदापि सत्य नहीं मान सकती।" अगर इस सम्बन्ध में आपको कुछ पूछ-ताछ करनी थी, तो सुबह तो आप गये थे, माता जी से क्यों नहीं पूछ लिया ?"

"मैंने तुम्हारी माता जी से पूछा था, किन्तु तुम उसके पहले रिकार्डिंग जो कर चुकी थीं। तुम्हारे आने के बाद मैंने जब उनसे कहा, तो देखता क्या हूँ, रिकार्ड बज रहा है, किन्तु स्वर उसमें तुम्हारे हैं।"

झरना मेरे इस कथन को सुनकर रो पड़ी। बोली—"मैंने एकांत में लेजाकर उनसे चालीस रुपये उधार लिये थे। आपको

पता है, मेरे पास केवल दो साड़ियाँ हैं जिनसे मेरा काम नहीं चलता, जबकि साथ की अध्यापिकाएँ, नित्यप्रति नयी साड़ी पहिन कर आती हैं ?"

मैंने इसके उत्तर में कहा—"यह सब तुम्हारा बहाना है और कुछ नहीं।"

खीझ कर झरना ने कहा—आप कहना क्या चाहते हैं, स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?

"अब मैं इन आँसुओं की माया में नहीं आ सकता। मुझे सब पता है, तुम रात भर कहाँ थीं।"

आवेश में झरना ने कहा—"आप बिल्कुल झूठ कह रहे हैं। अभी आप मेरे साथ चलिए, अम्मा से पूछ लीजिए।" और कथन के साथ झरना उठ कर खड़ी हो गयी।

"झरना, अब मुझे किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। मैंने एक नहीं, तीन बार कहा है, तुम घर नहीं गयीं।"

"मैं कह तो रही हूँ, किस कमीने ने आप से यह बात कही है मैं जानना चाहती हूँ ?"

"ठीक है, तुम अपने भतीजे को कमीना भी कह सकती हो, अब मुझे ऐसा विश्वास हो गया है। क्योंकि जो स्त्री अपने पति को प्रवंचित कर सकती है, वह इस धरती पर क्या नहीं कर सकती !"

"मेरा भतीजा ?"

इस कथन के पश्चात् झरना क्षण भर रुक गयी। जैसे वह कुछ सोच रही थी।

"हाँ, तुम्हारा भतीजा, मुन्ना। उसी ने मुझसे कहा है, तुम रात में कल घर नहीं गयी थीं। आज सुबह गयी हो।"

"किन्तु जिस समय मैं घर गयी हूँ, मुन्ना सो रहा था और उसके जगने के पूर्व मैं यहाँ चली आयी थी। फिर वह किस प्रकार जानता कि मैं वहाँ गयी थी ?"

"खैर, अगर यह भी तुम्हारी बात मान लें......।"

मैंने देखा, मेरे इस कथन को सुनकर झरना किंचित आश्वस्त हुई, जैसे वह अपराधिनी नहीं है। तभी मैंने पुनः कह दिया—"तो तुम रात को किसके साथ घूम रही थीं ? जबकि फ़ोन पर तुमने कहा था—"माता जी की तबियत बहुत खराब है, मैं उन्हें देखने जा

रही हूँ।"

झरना ने निर्भीकता से उत्तर दिया—"रास्ते में मिस अरोड़ा मिल गयीं। बोलीं—जरा मुझे एक साड़ी लेनी है, तुम भी देख लो, फिर चली जाना।"

"किन्तु झरना, जिसकी माँ मृत्यु-शैय्या पर पड़ी हो, वह किसी के साथ साड़ी खरीदवाने जायगी ? तुम मुझे अधिक मूर्ख बनाने की कोशिश मत करो।"

"किन्तु वह जबरदस्ती घसीट ले गयी। मैंने भी सोचा, पाँच मिनट में क्या अन्तर पड़ता है। और वहाँ देखते-देखते आठ बज गये। मैंने कई बार घर जाने की बात कही, किन्तु क्या करती, वह प्राचार्या जो ठहरीं। कुछ तो सौजन्य रखना ही था।"

"सौजन्य रखना था।" मैंने शीश हिलाते हुए कहा—"ऊँ, तो ऐसे तुम कुछ नहीं स्वीकार करोगी।"

इतना कहकर मैं रसोई घर की ओर बढ़ गया। झरना मेरे मनोभावों को निश्चित रूप से समझ गयी थी। तभी उसने बढ़कर मेरा हाथ पकड़ लिया। बोली—"आप मुझे मार डालना चाहते हैं, लीजिए। मैं कुछ नहीं बोलूँगी।"

किन्तु मैं अपना हाथ छुड़ाकर आगे बढ़ गया और हाथ में एक चैला लेकर मैंने उसके ऊपर वार कर दिया। किन्तु वह चैला उसके सिर में न लगकर हाथ में लगा।

झरना ज़ोर से चीख पड़ी और मूर्च्छित होकर ज़मीन पर जा गिरी ! उसके हाथ से रुधिर की धारा वह रही थी, किन्तु अब मुझे उससे कोई सहानुभूति नहीं रही थी।

मैंने सोचा—"मरती है, मर जाय। बला से।

इतने में किसी ने दरवाज़ा खटखटाया।

"कौन है ?" क्रोधित स्वर में मैंने पूछा।

"अरे खोलिए तो।"

"मगर हैं आप कौन साहब ?"

"मैं प्रकाश हूँ भाई साहब।

प्रकाश का नाम सुनते ही, मैं सोच में पड़ गया। पहले मेरे मन में आया, कह दूँ, कल मिलना भाई। किन्तु यह सोचकर कि प्रकाश अपने मन में क्या सोचेगा, मुझे अपना विचार बदलना पड़ा।

मुझे चिन्ता इस बात की थी कि झरना को इस दशा में देखकर वह अपने मन में क्या सोचेगा ?

तभी प्रकाश ने पुनः ज़ोर से द्वार भड़भड़ाते हुए कहा—"खोलिए भाई साहव !"

इतने में झरना उठकर वैठ गयी और जव तक मैं द्वार खोलने के लिये आगे वढ़ा, वह उठकर वाथरूम की ओर चली गयी थी।

नौ

कमरे के भीतर प्रवेश करने के पश्चात् प्रकाश पहले इधर-उधर देखता रहा। उसकी दृष्टि तथा मुखाकृति के भावों से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसने झरना की चीख सुनी हो।

इतने में उसने कुर्सी पर वैठते हुए पूछा—"भाभी कहाँ गयीं ?"

अव मैं इस निष्कर्ष पर पहुँच गया था कि प्रकाश काफी देर से द्वार पर खड़ा हम लोगों की वातें सुनता रहा था। और तभी झरना की चीख सुनकर वह तेज़ी से द्वार भड़भड़ाने लगा था।

मैंने उसके उत्तर में कह दिया—'शायद वाथरूम की ओर गयी हैं।"

"लेकिन क्या वात है, आज आप वहुत उखड़े-उखड़े से दिखायी दे रहे हैं ?"

फिर क्षण भर रुकते हुए वह वोला—"क्या भाभी से कुछ ....?"

"नहीं, नहीं ऐसी वात नहीं।" शीश हिलाते हुए मैंने कहा।

किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे प्रकाश सव कुछ जान गया है। फिर भी अपने को धैर्य वँधाते हुए मैंने मन-ही-मन कहा—"जान भी जायगा, तो क्या होगा ? घर-घर पति-पत्नी में झगड़े होते हैं। फिर ऐसा कौन पुरुष है, जो पत्नी के इस प्रकार के कपटाचरण को पसन्द करेगा ?"

प्रकाश मौन था। किन्तु उसकी दृष्टि, जिसे मैंने चोरी से देखा था—रह-रहकर वाथरूम की ओर चली जाती थी।

इतने में मैंने कहा—"आज इतनी रात को कैसे ?

"अभी तो नौ बजे हैं भाई साहब, बड़ी रात कहाँ हो गयी ?" कलाई घड़ी पर दृष्टि डालते हुए प्रकाश ने कहा—"हम लोगों का सोना तो बारह-एक से पहले कभी होता नहीं। करें भी तो क्या, एक-न-एक काम लगा ही रहता है।"

उस समय मैं सोच रहा था, कहीं झरना आ न जाय, नहीं तो सारा भेद खुल जायगा ! प्रकाश यह भी कह सकता है कि जब कोई पुरुष किसी स्त्री पर हाथ उठाता है तो मुझे उसके पुरुषत्व पर संदेह होने लगता है।

तभी प्रकाश बोल उठा—"मैं आपको परसों के लिए आमंत्रित करने आया हूँ। साढ़े आठ बजे हमारे विद्यालय की ओर से शिक्षा मंत्री के सम्मान में प्रीतिभोज है। उसमें आप अवश्य आइए। भाभी जी तो वहीं रहेंगी, क्योंकि डिनर की सारी व्यवस्था मैंने उन्हीं को सौंप दी है, स्वागत सत्कार की व्यवस्था में वे अब अत्यन्त कुशल हो गयी हैं।"

प्रकाश के अन्तिम वाक्य को सुनकर मुझे एक झटका-सा लगा। मैंने मन-ही-मन कहा—'हुँ, कुशल क्यों न हो जायगी !'

इसी क्षण प्रकाश ने कहा—"भाई साहब, ऐसे फ़र्स्ट क्लास डिनर का प्रबन्ध कराया है कि आपकी तबीयत प्रसन्न हो जायगी। नगर के कितने प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, सबको मैंने आमंत्रित किया है। लगभग ढाई-तीन सौ व्यक्तियों का डिनर है। रेस्तोराँ वाले ने 'पर हेड' सात रुपये चार्ज किये हैं।" थोड़ा-सा रुक कर पुनः बोला—"लेकिन मैंने रेस्तोराँ वाले से कह दिया है, अगर ज़रा-सी भी कोई शिकायत हुई, तो एक पैसा न दूँगा। याद रखना।"

मैं विचार में पड़ गया—स्वागत-सत्कार में इतना खर्च करने के लिए यथेष्ट धन इसे कहाँ से मिल जाता है ?

"अच्छा तो चलता हूँ।" कह कर प्रकाश उठ खड़ा हुआ।

अब भी मैं यही सोच रहा था कि यह जब तब किसी-न किसी मंत्री, गवर्नर आदि को पार्टियां और डिनर दिया करता है। हो सकता है स्कूल से दो-तीन हजार रुपये वर्ष भर में बच जाते हों। पर इससे तो इसका भी खर्च पूरा नहीं होता होगा; क्योंकि महीने में पाँच-छः सौ रुपए से कम खर्च इसका क्या होगा !

"आप सोच क्या रहे हैं ? घर में पड़े-पड़े क्या करेंगे ?" प्रकाश

ने कहा ।

"कुछ नहीं, आऊँगा ।"

"निश्चित ।"

"हाँ, हाँ, निश्चित समझो ।"

"भूल तो कहीं जायेंगे ?"

"नहीं भाई, भूल क्यों जाऊँगा ?"

"अरे भाभी जी ! ऐसी भी क्या नाराजगी है ? न चाय, न पानी !" प्रकाश ने बाथरूम की ओर देखते हुए कहा ।

तभी मैंने उससे कह दिया—"तबीयत कुछ खराब है ।"

"तबीयत खराब है ?" आश्चर्य से प्रकाश ने कहा—"अभी स्कूल में तो बिल्कुल ठीक थीं ।"

"शायद, धूप लग गयी है ।" मैंने कहा ।

किन्तु मैं डर रहा था कि कहीं प्रकाश उस ओर न चला जाय । उसके लिए हमारे यहाँ कोई परदा नहीं था । मेरी अनुपस्थिति में भी वह यहाँ दो-दो, तीन-तीन घंटे पड़े-पड़े झरना से गप्पें लड़ाया करता था । बल्कि उसे इन्टर उत्तीर्ण कराने का श्रेय मेरा कम, उसी का अधिक है । उसका इंग्लिश का एक प्रश्न-पत्र बिगड़ गया था । उसी ने दौड़-धूप की थी । पता लगाकर जयपुर तक गया; तब काम बना ।

इस भय से कि कहीं प्रकाश भीतर न घुस जाय, मैंने उससे कहा—"चलो तुम्हें नीचे छोड़ आऊँ ।"

"अरे नहीं भाई साहब, आप कष्ट न कीजिए । मैं चला जाऊँगा ।"

प्रकाश के इस कथन पर मुझे कुछ संतोष तो हुआ, किन्तु वह फिर भी खड़ा ही रहा ! कुछ गंभीर-सा होकर बोला—"सोचता हूँ, ज़रा भाभी से मिल लूँ, देखूँ क्या तबीयत खराब है !"

मैं पुनः संकट में पड़ गया ।

इसी समय झरना ने कमरे में प्रवेश किया । उसे देखते ही मैं काँप उठा ।

"क्यों भाभी जी, क्या तबीयत खराब हो गयी ?" प्रकाश ने प्रश्न किया ।

झरना का चेहरा उतरा-उतरा-सा था । ऐसा प्रतीत होता था,

"अभी तो नौ बजे हैं भाई साहब, बड़ी रात कहाँ हो गयी ?" कलाई घड़ी पर दृष्टि डालते हुए प्रकाश ने कहा—"हम लोगों का सोना तो बारह-एक से पहले कभी होता नहीं। करें भी तो क्या, एक-न-एक काम लगा ही रहता है।"

उस समय मैं सोच रहा था, कहीं झरना आ न जाय, नहीं तो सारा भेद खुल जायगा ! प्रकाश यह भी कह सकता है कि जब कोई पुरुष किसी स्त्री पर हाथ उठाता है तो मुझे उसके पुरुषत्व पर संदेह होने लगता है।

तभी प्रकाश बोल उठा—"मैं आपको परसों के लिए आमंत्रित करने आया हूँ। साढ़े आठ बजे हमारे विद्यालय की ओर से शिक्षा मंत्री के सम्मान में प्रीतिभोज है। उसमें आप अवश्य आइए। भाभी जी तो वहीं रहेंगी, क्योंकि डिनर की सारी व्यवस्था मैंने उन्हीं को सौंप दी है, स्वागत सत्कार की व्यवस्था में वे अब अत्यन्त कुशल हो गयी हैं।"

प्रकाश के अन्तिम वाक्य को सुनकर मुझे एक झटका-सा लगा। मैंने मन-ही-मन कहा—'हुँ, कुशल क्यों न हो जायगी !'

इसी क्षण प्रकाश ने कहा—"भाई साहब, ऐसे फ़र्स्ट क्लास डिनर का प्रबन्ध कराया है कि आपकी तबीयत प्रसन्न हो जायगी। नगर के कितने प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं, सबको मैंने आमंत्रित किया है। लगभग ढाई-तीन सौ व्यक्तियों का डिनर है। रेस्तोराँ वाले ने 'पर हेड' सात रुपये चार्ज किये हैं।" थोड़ा-सा रुक कर पुनः बोला—"लेकिन मैंने रेस्तोराँ वाले से कह दिया है, अगर ज़रा-सी भी कोई शिकायत हुई, तो एक पैसा न दूँगा। याद रखना।"

मैं विचार में पड़ गया—स्वागत-सत्कार में इतना खर्च करने के लिए यथेष्ट धन इसे कहाँ से मिल जाता है ?

"अच्छा तो चलता हूँ।" कह कर प्रकाश उठ खड़ा हुआ।

अब भी मैं यही सोच रहा था कि यह जब तब किसी-न किसी मंत्री, गवर्नर आदि को पार्टियां और डिनर दिया करता है। हो सकता है स्कूल से दो-तीन हजार रुपये वर्ष भर में बच जाते हों। पर इससे तो इसका भी खर्च पूरा नहीं होता होगा; क्योंकि महीने में पाँच-छः सौ रुपए से कम खर्च इसका क्या होगा !

"आप सोच क्या रहे हैं ? घर में पड़े-पड़े क्या करेंगे ?" प्रकाश

ने कहा ।

"कुछ नहीं, आऊँगा ।"

"निश्चित ।"

"हाँ, हाँ, निश्चित समझो ।"

"भूल तो कहीं जायेंगे ?"

"नहीं भाई, भूल क्यों जाऊँगा ?"

"अरे भाभी जी ! ऐसी भी क्या नाराज़गी है ? न चाय, न पानी !" प्रकाश ने बाथरूम की ओर देखते हुए कहा ।

तभी मैंने उससे कह दिया—"तबीयत कुछ खराब है ।"

"तबीयत खराब है ?" आश्चर्य से प्रकाश ने कहा—"अभी स्कूल में तो बिल्कुल ठीक थीं ।"

"शायद, धूप लग गयी है ।" मैंने कहा ।

किन्तु मैं डर रहा था कि कहीं प्रकाश उस ओर न चला जाय । उसके लिए हमारे यहाँ कोई परदा नहीं था । मेरी अनुपस्थिति में भी वह यहाँ दो-दो, तीन-तीन घंटे पड़े-पड़े झरना से गप्पें लड़ाया करता था । बल्कि उसे इन्टर उत्तीर्ण कराने का श्रेय मेरा कम, उसी का अधिक है । उसका इंग्लिश का एक प्रश्न-पत्र बिगड़ गया था । उसी ने दौड़-धूप की थी । पता लगाकर जयपुर तक गया; तब काम बना ।

इस भय से कि कहीं प्रकाश भीतर न घुस जाय, मैंने उससे कहा—"चलो तुम्हें नीचे छोड़ आऊँ ।"

"अरे नहीं भाई साहब, आप कष्ट न कीजिए । मैं चला जाऊँगा ।"

प्रकाश के इस कथन पर मुझे कुछ संतोष तो हुआ, किन्तु वह फिर भी खड़ा ही रहा ! कुछ गंभीर-सा होकर बोला—"सोचता हूँ, ज़रा भाभी से मिल लूँ, देखूँ क्या तबीयत खराब है !"

मैं पुनः संकट में पड़ गया ।

इसी समय झरना ने कमरे में प्रवेश किया । उसे देखते ही मैं काँप उठा ।

"क्यों भाभी जी, क्या तबीयत खराब हो गयी ?" प्रकाश ने प्रश्न किया ।

झरना का चेहरा उतरा-उतरा-सा था । ऐसा प्रतीत होता था,

जैसे सोकर आ रही हो। उसने अपने उस हाथ को, जिस पर चैले की चोट लगी थी, साड़ी के अंचल में छिपा रखा था। ऊपर से पट्टी भी शायद बाँध ली थी।

"कोई विशेष बात नहीं है। यों ही ज़रा......।"

"अच्छा भाई साहब, नमस्कार।"

प्रकाश नमस्कार करके मुड़ गया। किन्तु उसी क्षण मैंने देखा, झरना की आँखों से आँसू की बूँदें झर पड़ीं। जैसे कोई बच्चा, जिसकी माँ ने उसे मारा हो, किन्तु पिता को देखते ही रो पड़े।

उन आँसुओं का रहस्य उस समय, मैंने सोचा तो बहुत, पर मेरी समझ में नहीं आया।

अब एक ओर मैं जहाँ झरना की उस संस्कृति की, जब उसने अपने चोट खाये हाथ को दूसरे पुरुष के सम्मुख छिपा लिया था—"मन-ही-मन प्रशंसा करता हुआ कह रहा था—'यही भारतीय नारी का आदर्श है। कभी वह अपने पति का असम्मान नहीं देख सकती!" वहीं दूसरा ओर उन बिखरे हुए आँसुओं के रहस्य को समझने में अपने को असफल पा रहा था।

प्रकाश चला गया, किन्तु उसके जाते ही अचानक जीवन का सबसे बड़ा 'शाक' मुझे लगा।

मन-ही-मन मैंने कह लिया—"तुम समझने में शायद भूल कर रहे हो! प्रकाश तो अपना मित्र है।"

'डिनर' में मेरी क़तई जाने की इच्छा नहीं थी। इसके कई कारण थे। एक तो झरना से मेरा बोल-चाल बन्द था। मैं सोच रहा था कि जब झरना से मेरी बात नहीं होती, तो उसके स्कूल की ओर से आयोजित 'डिनर' में मैं क्यों जाऊँ? प्रकारान्तर से मैं अपने में एक हीन-भावना का भी अनुभव कर रहा था।

दूसरी बात यह भी थी कि जाने क्यों मैं सभा-सोसाइटियों से ज़रा दूर रहता हूँ। इसे आप मेरी कूप-मंडूकता भी कह सकते हैं। मुझे स्वीकार करने में भी कोई आपत्ति नहीं है।

इसका भी कारण था। लिपिक की एक अपनी छोटी-सी,

अत्यंत संकुचित दुनियाँ होती है, जिसमें वह तेली के बैल की भाँति चक्कर काटता है।

दफ्तर से घर और घर से दफ्तर। मिया की दौड़ मसजिद तक। यही उसका अपना परिवेश है। इसी में वह सांस लेता है, जीता है और मर जाता है।

आठ-दस घंटे कार्य करने के पश्चात् उसमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि वह कुछ आगे की सोच सके और यदि सोचता भी है, तो साधन इतने सीमित होते हैं कि आगे बढ़ नहीं पाता, पिंजरे में बन्द पंछी की भाँति पंख फड़फड़ा कर चुप हो जाता है!

अन्ततोगत्वा, यह सोच कर कि प्रकाश कह गया है, कहीं बुरा न मान जाय—मैं जाने के लिए तैयार हो गया।

किन्तु उसी क्षण एक नया प्रश्न सामने आ गया। मेरे पास कुल जमा दो पेंट थीं। एक खाकी जीन की, जिसे यह सोच कर बनवाया था कि यह टिकाऊ होती है और मैलखोर भी। उसे कल ही साफ करके रखा था। किन्तु खाकी जीन का पेंट पहिन कर उस पार्टी में जाना, मुझे कुछ जँचा नहीं। क्योंकि इस प्रकार का पेंट एक विशेष वर्ग का पहिनावा है। और जहाँ मुझे जाना था, वहाँ एक से एक बड़े आफ़िसर, अधिकारी तथा संभ्रात नागरिक उपस्थित होंगे।

दूसरी पेंट जो पहिन कर कार्यालय गया था, उसका रंग भूरा था। किन्तु वह कुछ गंदी हो चुकी थी। फिर भी मैंने इसी गंदी पेंट को पहिन कर जाने का निश्चय कर लिया। बुशशर्ट जरूर साफ़ थी, क्योंकि वह बक्स में धुली हुई रखी थी!

वस्त्र पहिनकर मैं ठीक सवा आठ बजे कालेज के गेट पर जा पहुँचा। आने-जाने वालों का तांता लगा था। नहर की पटरीवाली सड़क के दायीं ओर दूर तक कारों का ताँता लगा था। पुलिस के सैकड़ों सिपाही इधर से उधर चौकसी कर रहे थे। जैसे कोई अतिथि महोदय को 'किडनेप' कर ले जायगा! आने-जाने वालों में अधिकांश सेठ लोग थे। कालेज के मुख्य द्वार पर सैकड़ों छात्रों की भीड़ इकट्ठी थी, जिन्हें सिपाही इधर से उधर तितर-बितर कर देते थे, किन्तु वे पुनः द्वार पर आकर जमा हो जाते! छात्रों का यह वर्ग शिक्षा-मंत्री के दर्शनों के लिये उतना अधीर नहीं था, जितना उन्हें

चुहलबाजी का आनन्द प्राप्त करने में।

इसी बीच पुलिस के सिपाही ने एक निरपराध रिक्शेवाले को हंटरों से मारना प्रारम्भ कर दिया। बोला—"साला देखता नहीं, अन्धा है! इधर से रिक्शा लिये चला जा रहा है।"

इतने में बन्दरों की भाँति कई लड़के उस सिपाही की ओर जा लपके। उनका इतना ही कहना था कि 'क्यों मार रहे हो जी?' तभी सिपाही दुम दबाकर वहाँ से खिसक गये।

मुख्य द्वार पर तीन-चार व्यक्ति खड़े थे, ताकि अनाधिकृतव्यक्ति भीतर प्रवेश न कर सकें। मेरे पास कोई निमंत्रण-पत्र नहीं था। मैंने सोचा, ऐसा न हो, कोई अन्दर जाने से रोके। किन्तु ग़नीमत यही थी कि किसी ने मुझसे कुछ पूछा नहीं।

कालेज के भीतर एक बृहद हाल था, उसी में 'डिनर' का आयोजन किया गया था। लगभग उस समय वहाँ पर दो-सौ व्यक्ति उपस्थित थे। काफी मेजें खाली पड़ी थीं। किन्तु वहाँ न मुझे प्रकाश दिखायी दिया और न झरना। इसके सिवा—मेरा वहाँ कोई अन्य परिचित नहीं था। अतः मैं बैठने में भी संकोच कर रहा था।

इतने में सभी की दृष्टियाँ द्वार की ओर जा लगीं। बैठे हुए लोगों में अधिकांश उठकर खड़े हो गये। मैंने भी पीछे मुड़ कर देखा श्वेत खादी का कुरता और धोती पहिने हुए एक व्यक्ति, जिसकी अवस्था साठ की रही होगी—हाथ में एक छड़ी लिये हाल की ओर चला आ रहा है।

सैंकड़ों व्यक्तियों की भीड़ उसके आस-पास चल रही थी।

यही मुख्य अतिथि थे। झरना, मिस अरोड़ा उनके दायीं ओर थीं और प्रकाश बायीं ओर। जिस समय अतिथि महोदय डिनर खाने के लिए बैठे, झरना उनके बाँयी ओर और प्रकाश दाहिनी ओर बैठा था। मिस अरोड़ा तथा तीन-चार अन्य अध्यापिकाएँ मंत्री महोदय के आस-पास परिचारिका की भाँति खड़ी थीं।

मैंने एक दृष्टि उठाकर हाल को देखा। वे सभी सीटें जो अब तक रिक्त थीं, भरी हुई दिखायी दीं।

झरना को मंत्री महोदय के पार्श्व में बैठी देखकर मुझे कतई प्रसन्नता न हुई, जबकि ऐसे अवसर पर मुझे प्रसन्न होना चाहिये था। इस समय आप यह न सोचिएगा कि मैं हीन-भावना से ग्रस्त

था। नहीं, जाने क्यों मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे कोई कीड़ा मेरे हृदय पर रेंग रहा है। मैं उसे बार-बार दूर करने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु वह उड़ कर पुनः आकर रेंगने लगता है। और एक बात और भी आप से स्पष्ट कर दूँ, वह कीड़ा साधारण किस्म का न था।

इतने में 'वेयरों' ने मेज पर पड़ी हुई श्वेत जालियों को, जिनसे खाने का सामान ढका था, उठाना प्रारम्भ कर दिया।

लोगों की दृष्टियाँ अतिथि महोदय पर थीं। जैसे वे श्रीवर महोदय थे। उनके भोजन प्रारंभ के पश्चात् ही अन्य लोग भोजन आरम्भ करेंगे।

डिनर समाप्त हो गया। अधिकांश लोग खिसकने लगे। भोजन मात्र से उनका संबंध था। किन्तु मैं अब भी वहीं उपस्थित था। प्रकाश को इतना अवकाश न था कि मुझसे बात करता। झरना ने मुझे कई बार देखा, किन्तु ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसकी ड्यूटी अतिथि महोदय के साथ रहने की लगी है, जिन्हें छोड़कर वह कहीं जा नहीं सकती। मैं उसका पति हूँ, तो इससे क्या? इस समय वह मन्त्री जी की सेवा में तैनात थी। उसके साथ ही अन्य अध्यापिकाएँ भी परिचारिकाओं की भाँति अतिथि महोदय के इर्द-गिर्द लगी थीं।

इतने में मैंने देखा कि प्रकाश मन्त्री जी से झरना के सम्बन्ध में कुछ कह रहा है और वे मुस्करा कर, उसे किसी बात का आश्वासन दे रहे थे।

जिस कीड़े की बात अभी थोड़ी देर पूर्व मैंने की थी, वह अब मेरे हृदय पर अत्यधिक वेग से रेंगने लगा था और मुझे भय भी हो रहा था कि कहीं काट न खाये! तभी मैं वहाँ से शीश झुकाये एक दीर्घ निश्वास लेता हुआ कालेज के बाहर चला आया।

दस

झरना आठ-दस दिन तक नियमित रूप से स्कूल आती-जाती

रही। अब वह प्रातः सात बजे स्कूल के लिये घर से निकल पड़ती और सवा चार के लगभग लौट आती। मैं भी साढ़े चार के लगभग आफ़िस से सीधे घर पहुँच जाता।

उस समय मुझे चाय तैयार मिलती। हम दोनों आमने-सामने बैठकर चाय पीते। किन्तु हमारे सम्बन्धों में पूर्ववर्ती माधुर्य्य नहीं था। हम दोनों एक दूसरे को हाँ-नहीं में उत्तर देते थे। आत्मीयता के जिस माधुर्य्य के साथ दाम्पत्य जीवन जिया जाता है, उसका हमारे पास सर्वथा अभाव था। हम दोनों अनमने से गाड़ी खींच रहे थे।

अब यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि किसी दिन भी गाड़ी रुक सकती है। इधर मेरे मन में वितृष्णा थी, उधर झरना के मन में भी उस दिन के अपमान की प्रतिक्रिया थी। कोई किसी के आगे झुकने को तत्पर न था।

अब शेष इतना ही था कि एक झटका कहीं से भी लग जाय, तो तार के दो खंड हो जायें। दोनों की दिशाएँ भिन्न हो सकती थीं। और जब दो में से एक भी लचने के लिये तैयार न हो तो निश्चित है कि किसी न किसी दिन एक मार्ग के दो मार्ग हो जा सकते हैं।

यद्यपि इस स्थिति में भी मैं झरना को बहुत चाहता था, किन्तु उस फोड़े की, शल्य-चिकित्सा होनी अनिवार्य थी जिसमें पीव भर गयी थी। अन्यथा जहरवाद होने में देर कितनी लगती है।

मगर झरना इसके लिये तैयार न थी।

इस प्रसंग में मेरा अनुमान तो यह था कि झरना सोचती थी, यदि किसी नारी के पति और प्रेमी दोनों बने रहते हैं, तो पति-पत्नी की निकटता में अन्तर क्या पड़ता है?

क्योंकि मैं बहुत पहले कह चुका हूँ, झरना परकीया प्रेम में विश्वास करती थी। अपने पक्ष को सुदृढ़ करने के लिये उसने अनेक दृष्टान्त तो दिये थे, किन्तु यह बात उसने कभी स्पष्ट नहीं की थी। यद्यपि इस बात को स्वीकार करने के लिये मैं कभी प्रस्तुत न होता और यह वही बिन्दु होता, जहाँ से एक धारा में दो धाराएँ प्रस्फुटित हो जातीं।

झरना इस बात को भली-भाँति जानती थी कि कोई भी पति, चाहे कितना भी उदार सुसंस्कृत क्यों न हो, पत्नी के पर-पुरुष प्रेम

को सहन नहीं कर सकता।

यद्यपि मैंने स्वयं ऐसी कई कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ी थीं, जिनमें पति अपनी पत्नी की इच्छाओं की पूर्ति के लिये, उसे उसके प्रेमी के पास छोड़ आता है। किन्तु फिर उसका परिणाम क्या हुआ, इसका कहीं यथेष्ट उल्लेख नहीं मिला। और जहाँ मिला भी है, वहाँ पत्नी के साथ पति का सम्बन्ध सदा के लिये टूट गया है। तात्पर्य्य यह कि मनुष्य की बहुतेरी उदार भावनाएँ केवल मौखिक, काल्पनिक और अव्यावहारिक होती हैं।

सभ्य मानव की इस प्रवृत्ति का संकेत भले ही इस प्रकार की कहानियां में मिला हो, किन्तु कम से कम मैं इसे सहन नहीं कर सकता था। यह बात तो मैं स्वीकार कर सकता हूँ कि यदि झरना कि इच्छा मेरे साथ रहने की नहीं है, तो वह स्पष्ट कह सकती है, जिसके साथ उसे जाने की इच्छा हो, चली जाय, मुझे कोई आपत्ति न होगी। किन्तु एक म्यान में दो तलवारें रह सकती हैं, जाने क्या बात है, मैं इसे स्वीकार नहीं कर पा रहा था।

यद्यपि कभी-कभी मैं इस तथ्य पर भी विचार करता था कि यदि हरेक वस्तु का बँटवारा संभव है, तो प्रेम में क्यों सम्भव नहीं हो सकता? वेश्यागामी पुरुष तो इसे सहन करते ही रहे हैं। यह बात दूसरी है कि भावना के उद्रेक में पड़कर उन्होंने विपक्षी की हत्या करवा दी हो। और ऐसा तो सदा से होता आया है कि जब किसी हठी बच्चे को बहुत चाहने पर भी किसी ने कोई विशेष खिलौना उसे न दिया हो, तब अवसर पाकर उसने उसे तोड़ डाला हो।

कुछ दिन के पश्चात् झरना की स्थिति में पुनः व्यतिक्रम हो गया। अब कभी वह आठ बजे रात को आती, कभी नौ बजे। कभी भोजन करके आती, और कभी घर आकर भोजन करती।

ऐसी स्थिति में जिस दिन टाइप करते-करते मैं कार्यालय में अत्यधिक थकान महसूस करता और संयोग में घर पर झरना न होती तो मैं भी भोजन नहीं बनाता था। भूखा ही सो जाता।

अब कुछ ही दिनों बाद मेरी आर्थिक स्थिति प्रायः ठीक हो गयी। थोड़ा-बहुत देना था, उससे मैं विशेष चिन्तित नहीं था।

चिन्ता का विषय था भूखा सो जाना। इससे भी अधिक चिन्ता

की बात थी झरना के व्यवहार की, जो यह नहीं सोचती थी कि मेरा पति दिन भर कार्य करते-करते थक जाता होगा और ऐसी स्थिति में यदि उसे ठीक भोजन भी नहीं मिलेगा, तो वह कैसे जीवित रहेगा !

इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उसे मेरी कोई विशेष चिन्ता नहीं थी। अन्यथा वह इतनी रात को क्यों आती और कभी-कभी रात भर क्यों गायब रहती। पूछने पर कभी किसी सहेली के घर जाने का बहाना कर देती, तो कभी माँ के यहाँ जाने का।

इन परिस्थितियों में, यदि आप होते, तो मैं आपसे प्रश्न करता हूँ, आप क्या करते ? निश्चित है जो मैं करने जा रहा हूँ, वही आप भी करते। अभी आप भले यह कहें कि नहीं आपको ऐसा नहीं करना चाहिए था, किन्तु मेरे मित्र जब विपत्ति सिर पर आ पड़ती है, तभी पता लगता है। एक-एक क्षण जीना कठिन हो जाता है। कभी-कभी तो आत्महत्या तक की स्थिति आ पहुँचती है।

अन्ततोगत्वा, मैंने निश्चय किया कि चाहे जो हो व्रण का आपरेशन होना आवश्यक है। भले ही झरना मुझे त्याग कर चली जाय।

चारपाई पर पड़े-पड़े करवटें बदल रहा था। क्योंकि आप जानते ही हैं भूख में नींद भी नहीं आती। थकान इतनी थी कि दो पराठे भी उठ कर सेंक नहीं सकता था। सोचता था बस, झरना आ जाय। उसी की प्रतीक्षा थी। जो कुछ होना है, आज हो जाय।

रात्रि के लगभग साढ़े नौ बजे, झरना ने द्वार खटखटाया। सुनकर भी अनसुना बना रहा। सोचा चिल्लाने दो साली को। किंतु बार-बार द्वार की साँकल खटखटाने की आवाज कुछ अजीब भद्दी-भद्दी-सी लगने लगी। सोचा पड़ोसी क्या समझेंगे ? वे झरना पर संदेह भी कर सकते हैं कि प्रायः रात-रात भर घूमती रहती है। कभी नौ बजे आती है, कभी दस बजे।

अन्त में, चारपाई पर से आँखें मलते हुए उठा। ताकि झरना यह समझे कि मैं सो गया था, आवाज सुनायी नहीं पड़ी।

द्वार खोलते ही झरना भीतर आ गयी। उसके प्रवेश करने में एक तेज़ी थी।

इतने में प्रकाश ने कहा—"नमस्कार भाई साहब !" इसके पश्चात भीतर प्रवेश करते हुए उसने प्रश्न किया—"क्या सो गये थे ?"

दोनों को साथ-साथ देख कर कुछ बात समझ में आयी, कुछ नहीं आयी। प्रकाश के प्रश्न का उत्तर देते हुए मैंने कहा—"हाँ, झपकी आ गयी थी।"

प्रकाश का साढ़े नौ बजे रात्रि में आना अर्थ-हीन नहीं था। इसके पूर्व वह कभी मेरे यहाँ इतनी रात बीते नहीं आया था। जिस समय वह कुर्सी पर बैठ गया, मैंने प्रश्न किया—"आज इतनी रात गये कैसे ?"

"बात यह है भाई साहब कि हमारे यहाँ एक नाटक का रिह-र्सल चल रहा है। पाँच तारीख को गवर्नर साहब आ रहे हैं। उन्हीं के सम्मान में खेला जायगा। भाभी जी इसमें नायिका का रोल प्ले कर रही हैं······।"

—"और आप नायक का, क्यों ?" तपाक से मैंने कह दिया।

प्रकाश को मेरा स्वर पहिचानने में देर नहीं लगी। उसने मुस-कराते हुए तत्काल उत्तर दिया—"भाई साहब आप तो मजाक करने लगे !"

मैंने गंभीर स्वर में झरना पर दृष्टि डालते हुए कहा—"नहीं प्रकाश, सत्य को मजाक समझना भारी भूल होगी। आखिर हम उसे कब तक टालते रहेंगे ! एक-न-एक दिन सत्य अपना नग्न रूप हमारे सम्मुख प्रकट कर ही देता है।"

जिस समय मेरी दृष्टि झरना पर पड़ी थी, उसमें इतनी शक्ति न थी कि वह मेरी दृष्टि के आघात को सहन कर सकती। उधर मैंने प्रकाश के चेहरे को देखा तो ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह रंगे हाथों पकड़ लिया गया है।

किन्तु प्रकाश में एक विशेषता थी। उसे आप चाहे जो कहें, वह कभी बुरा नहीं मानता था और प्रत्येक बात का उत्तर हँसते हुए देता था।

प्रकाश ने मुसकराते हुए कहा—"मैंने तो भाई साहब, सत्य को

सदैव सत्य ही माना है। झूठलाते वे लोग हैं, जो सत्य को पहिचानते नहीं।"

"किन्तु जिस गतिविधि को तुम सत्य समझ बठे हो, क्या वह कभी सत्य बन पायेगी ?"

"मैं तो महात्मा गाँधी के उसूलों पर चलने वाला व्यक्ति हूँ भाई साहब। कोई माने, चाहे न माने। सत्य और अहिंसा-मेरे जीवन के अकाट्य अस्त्र हैं। इन्हीं का अवलंब मेरे जीवन को क्षण-प्रतिक्षण अनुप्रेरित करता है। अपने सिद्धान्तों से डिगने वाला व्यक्ति मैं नहीं हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि जीवन में एक न एक दिन लक्ष्य तक अवश्य पहुँच जाऊँगा।

"लक्ष्य तो मिल गया प्रकाश, अब क्या देर है ?" मैंने गंभीर स्वर में कहा।

"नहीं भाई साहब, अभी तो कुछ नहीं हुआ।"

किन्तु इस बार मैंने अनुभव किया, जैसे प्रकाश ने मेरे कथन का अभिप्रेत नहीं समझा। तभी मैंने उससे कहा—"जो शेष है, वह भी आगे पूर्ण हो जायगा।"

"देखिए भाई साहब आप लोगों का आशीर्वाद कब चरितार्थ होता है।"

"मेरे आशीर्वाद की कोई आवश्यकता नहीं प्रकाश।"

कथन के साथ मैंने झरना पर दृष्टि डाली, जो मेज़ के दक्षिण ओर बैठी हुई थी। दृष्टि मिलते ही उसने शीश झुका लिया।

मैंने कहा—"जब झरना जैसी नायिका का आशीर्वाद तुम्हें प्राप्त हो गया है। तब कमी किस बात की हो सकती है।

प्रकाश कदाचित कुछ कहता, पर बात को दूसरी ओर मोड़ते हुए मैंने पुनः कहा—"किन्तु नाटक का अन्त क्या होगा ?"

"फिर तो सारा मजा किरकिरा हो जायगा भाई साहब।" मुसकराते हुए प्रकाश ने कहा—"यदि अभी से अन्त मालूम हो गया।"

इस बीच मैंने कई बार झरना की ओर देखा। प्रतीत हुआ, जैसे वह सूखती चली जा रही थी। जैसे वह मेरे कथन का एक-एक शब्द हृदय के घाट उतार रही थी।

इतने में मेरी दृष्टि प्रकाश के दायें कंधे के नीचे जा पड़ी। वह

श्वेत खादी का कुर्ता पहिने हुए था। मैंने देखा, उस स्थान पर सिन्दूर लगा हुआ है। मेरा कलेजा धक् से हो गया। संभव था कि यदि कोई दुर्बल हृदय का होता, तो उसका 'हार्ट फेल' हो जाता। किन्तु अभी तो मैं नाटक का अन्त देखने के लिये जीवित रहना चाहता था।

तभी मैंने प्रकाश से कहा—"सुनो, इधर आओ।"

प्रकाश सकपकाया और बोला—"क्या बात है ?"

"आओ, आओ, इधर आओ।"

प्रकाश कुर्सी से उठ कर मेरे समीप आ गया। अब वह मेरे और झरना के बीच खड़ा था। तभी मैंने उसके कन्धे के निचले अंश का स्पर्श करते हुए कहा—"यह क्या है ?"

इतना मेरा कहना था कि प्रकाश का चेहरा उतर गया।

ठीक इसी क्षण मैंने झरना पर भी एक तीखी दृष्टि डाली। जसे वह दृष्टि कह रही हो—'अरी कुलटा देख अपने कृत्य को !'

मैंने पहले ही कहा था कि प्रकाश तनिक भी झेंपने वाला व्यक्ति नहीं था। ऐसी प्रत्युत्पन्नमति के व्यक्ति कम मिलते हैं। उसने सिंदूर के दाग़ को उँगली से रगड़ते हुए कहा—"अरे भाई साहब आपने बड़ी रक्षा की, वरना भाभी जी ने तो आज मुसीबत पैदा कर दी थी।"

कथन के पश्चात् वह झरना की ओर उन्मुख होता हुआ बोला —"भाभी जी, ऐसी भी क्या मजाक। अगर भाई साहब की दृष्टि न जाती, तो निश्चित था कि घर में घुसते ही श्रीमती जी चप्पलों से मेरी आवभगत करतीं।"

इतना कह कर प्रकाश मुसकराता रहा। किन्तु उसकी मुसकान में स्वाभाविकता न थी। वह दबी-दबी सी थी, किन्तु प्रकाश उसे अपनी दुर्बलता का कवच बनाना चाहता था।

तभी झरना बोल उठी—"मैं तो आप से उसी समय कह रही थी, 'मेक अप' रूप में मत आइये। मगर आप नहीं माने।"

"मगर भाभी जी, ऐसा मज़ाक किस काम का ?"

"आप यक़ीन मानिए, मैंने नहीं लगाया। मिस अरोड़ा ने लगाया है। आपने देखा नहीं हम लोग चलते हुए इसीलिए तो हँस रहे थे कि आज घर में पहुँचते ही अच्छी खातिर होगी।"

उस समय मैंने अनुभव किया कि मेरे सामने अच्छा नाटक खेला जा रहा है। नायक और नायिका दोनों मुझे मूर्ख बनाने का प्रयास कर रहे हैं। तभी मैंने आवेश में आकर कह दिया—"प्रकाश, अब यह नाटक बन्द करो।"

मेरे स्वर में इतना तीखापन था, यद्यपि आवाज ऊँची नहीं थी, कि झरना और प्रकाश दोनों के चेहरों का रंग उड़ गया। प्रकाश जैसे कुछ कहने ही वाला था कि मैंने कहा—"सत्य यह है, जिसे तुम झुठलाने की चेष्टा कर रहे हो प्रकाश। सत्य वह नहीं था, जो गाँधीजी के नाम पर तुमने ओढ़ रखा था। इस सत्य को छिपा कर तुम कहाँ ले जा सकते हो?"

इसके पश्चात् मैंने झरना की ओर दृष्टि डाली। वह शीश झुकाये, भयभीत-सी बैठी थी। उस क्षण मेरी दृष्टि उससे न मिल सकी, अन्यथा उस सत्य का नग्न रूप भी दिखाई दे जाता।

इतने में प्रकाश बोल उठा—"भाई साहब बड़ी देर से मैं आपकी बातें सुन रहा हूँ। किन्तु आप जो कुछ भी समझ रहे हैं, वह सत्य नहीं, आरोपित असत्य की कल्पना मात्र है। यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ?"

अन्तिम वाक्य तक आते-आते प्रकाश के स्वर में तीव्रता आ गई थी। और मुझे ऐसा महसूस हुआ कि अपराधी होते हुए भी वह अपने आपको निरपराधी सिद्ध करने का असफल प्रयास कर रहा है। उसके अन्तिम वाक्य से तो मुझे एक चुनौती का भी भान हुआ। ऐसा लगा जैसे वह मुझे ललकार रहा है।

झरना अभी तक शीश झुकाये बैठी थी, अब सजग हो उठी। उसकी दृष्टि कभी प्रकाश पर जाती और कभी चुपके से मुझ पर।

तभी मैंने कहा—"देखो प्रकाश! जिस नाटक के खेलने का अभिनय तुम आज कर रहे हो, उसे मैं गत दो वर्षों से देख रहा हूँ। अब तक मुझे यह नहीं मालूम था कि इसका नायक कौन है? आज वह भी ज्ञात हो गया।"

"भाई साहब।" प्रकाश ने तीव्र स्वर में कहा।

गोली मार दो भाई साहब को, लेकिन बस! चले जाओ यहाँ से।" कथन के बाद मैंने चीख कर कहा—"निकल जाओ "मेरे घर से। मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखना चाहता।"

झरना का शरीर थर-थर काँप रहा था। किन्तु प्रकाश के चेहरे पर कोई शिकन न थी। तभी मैंने पुनः कहा—"तुम मित्र बनते हो, पर तुम्हें लज्जा नहीं आती! हृदय पर हाथ रखकर देखो, तुमने मेरी मजबूरियों का शोषण नहीं किया है? तुम आस्तीन के साँप हो। मैं कहता हूँ जाओ, जाओ।" निकल जाओ।" कथन के पश्चात् यकायक अत्यन्त वेग से मैंने दायें हाथ की मुट्ठी को मेज पर पटक दिया और कहा—"वरना, वरना मैं तुम्हारा गला घोंट दूँगा। मुझे सब कुछ मालूम हो गया है।"

अब मैं ज्यों ही प्रकाश की ओर बढ़ा, झरना बीच में आ खड़ी हुई और प्रकाश की ओर उन्मुख होते हुए बोली—"आप चले क्यों नहीं जाते?"

किन्तु प्रकाश की मुखाकृति पर उस क्षण, क्रोध या आवेग की एक रेखा भी नहीं थी। वह उठकर खड़ा हो गया। बोला—"ठीक है भाई साहब, आपका आदेश है, मैं जा रहा हूँ। किन्तु इतना अवश्य कहूँगा कि आप मुझे बहुत गलत समझ रहे हैं।

चलते-चलते प्रकाश कहता गया—"मैं तो मात्र इसलिए आया था कि भाभी ने कहा, देर हो जाती है, तो आपके साहब बिगड़ते हैं। आप मेरे साथ चले चलिए। किन्तु मुझे स्वप्न में भी आपसे ऐसी आशा न थी।"

उत्तर में मैंने कह दिया—"और तुमसे भी मुझे न थी।"

प्रकाश चुपचाप चला गया।

मैं अब भी आवेश में था। मेरे मन में उस समय इतना अधिक क्रोध था कि मेरा शरीर कांप रहा था। उसके जाते ही मैंने द्वार बन्द कर लिया।

झरना भयभीत हरिणी-सी खड़ी थी। बात बिगड़ने का भय न होता, तो यह निश्चित था कि वह प्रकाश के साथ ही कक्ष से बाहर हो जाती, क्योंकि उसे इस बात का भय था कि अब [illegible]
है।

"झरना! मैंने द्वार और खिड़कियाँ आज फिर बन्द कर [illegible]
किन्तु इतना विश्वास रखो, गला घोंट कर तुम्हारी हत्या [illegible]
क्योंकि जिन हाथों से कभी मैंने तुम्हें प्यार किया है [illegible]
नृशंस कार्य करूँ, यह मेरे लिये संभव नहीं है। तुम्हारे [illegible]

संसार भले ही मुझे कुछ न कहे, किन्तु मेरी आत्मा मुझे कभी क्षमा न करेगी !"

अब मैं मेज़ के समीप आकर रुक गया, क्योंकि अभी तक कक्ष में मैं टहल रहा था। बोला—"किन्तु एक शर्त है, बोलो स्वीकार है ?"

झरना ने कुर्सी पर बैठे-बैठे कनखियों से मुझे देखा। उसकी दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता था, जैसे मेरी ओर देखने में भी उसे भय लग रहा है। किन्तु वह कुछ न बोली।

इस बार उच्च स्वर में मैंने कहा—"बोलती क्यों नहीं ?"

झरना इस बार भी कुछ न बोली। उसने पुनः कनखियों से ही मुझे देखा। उसकी आँखों में आँसू तैर रहे थे। किन्तु वह इस बार अत्यन्त भयभीत दिखाई दे रही थी। उसने दृष्टि उठाकर एक बार द्वार की ओर देखा, दूसरी ओर खिड़कियों को, किन्तु सभी बन्द थे।

झरना की स्थिति इस समय उस चिड़िया की भाँति थी, जो कमरे में घुस आयी हो, और उसके पश्चात् लड़कों ने द्वार और खिड़कियाँ बन्द कर ली हों। वह निकल भागने के लिए तड़प रही हो। कभी द्वार की ओर दृष्टि डालती हो, और कभी वातायन की ओर। किन्तु कहीं से उसे निकलने का मार्ग न दिखाई दे रहा हो।

तभी मैंने उसका हाथ पकड़ कर झकझोरते हुए कहा—"झरना ! मैं तुमसे कुछ कह रहा हूँ। बोलो उत्तर दो।

पर झरना ने कोई उत्तर न दिया। किन्तु इस बार वह रो पड़ी। रोते-रोते बोली—"मुझे निकल जाने दो।"

झरना के इस वाक्य को सुनकर मेरा पारा चढ़ गया। उसके इस कथन ने जलती हुई अग्नि में घृत का काम किया।

मैंने शीश हिलाते हुए कहा—"प्रकाश के पास जाना चाहती हो ?"

झरना की आंखों से टप-टप आँसू की बूँदें गिर रही थीं। बोली—"नहीं, मैं कहीं भी चली जाऊँगी। मुझे जाने दो।"

"कमीनी।" दांत पीसते हुए मैंने कहा—"आज कहती है, मुझे जाने दो।" यही बात तू पहले भी तो कह सकती थी ! क्रोध में

जलते हुए मैंने कहा—"गला घोट कर मार डालूँगा। तूने मुझे समझ क्या रखा है। मैं जितना सरल हूँ, उतना ही कठोर भी हूँ। देखता हूँ, कौन तेरी रक्षा करता है।"

"मैं आपके हाथ जोड़ती हूँ", रोते हुए कर जोड़कर झरना ने कहा—"मुझे जाने दो। मैं आपसे कुछ नहीं माँगती, केवल दया की भीख चाहती हूँ।"

"तुम मुझ से उस समय दया की भीख माँग रही हो, जब मुझे सब कुछ मालूम हो गया है। पर क्या तुमको यह मालूम न था कि जो अपने पति के साथ विश्वासघात करती है उसका क्या परिणाम होता है। शायद तुमने कभी न सोचा हो। तो सुन लो, परिणाम है केवल हत्या और कुछ नहीं !"

हत्या की बात सुनते ही झरना थर्-थर् काँप उठी। बोली—"क्या आप मुझे क्षमा नहीं कर सकते ?"

"क्षमा ! नहीं, कदापि नहीं।"

और झरना निरुत्तर थी।

इसके पश्चात् मैंने कहा—"झरना, तुम्हें जाने से कौन रोक सकता है ? चिड़िया उस समय तक असहाय होती है, जब तक उसके पंख नहीं उग आते। अब तुम्हारे पंख उग आये हैं। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, तुम निश्चित रूप से उड़ जाओगी। मैं तुम्हें बाँध कर रखना भी चाहूँ, तो नहीं रख सकता, क्योंकि तुम स्वच्छन्द विचरण करना चाहती हो। किन्तु इसके पूर्व, एक बात मैं तुमसे अवश्य पूछना चाहूँगा—क्या तुम्हें प्रकाश से प्यार नहीं हो गया ?"

झरना आश्वस्त स्वर में बोली—"नहीं।"

"तुम अब भी झूठ बोलती हो झरना।" मैंने चीखते हुए कहा।

झरना चुप हो गयी।

मैंने कहा—"मुझे सब मालूम है। मुझे यह भी मालूम है कि क्यों तुम मुझे नहीं चाहतीं। मुझे यह भी मालूम है कि तुम्हारी जिन्दगी में मेरे स्थान पर कोई और आ गया है।" इस बार झरना का स्वर बदल गया। उसने दृढ़ता से कहा—

"नहीं, कदापि नहीं, आप मुझ पर केवल अभियोग लगाना चाहते हैं। क्योंकि मुझे त्यागना चाहते हैं। और यही एक कारण है कि आपने सदैव मुझे सन्देह की दृष्टि से देखा है।"

"झरना मेरे सन्देह का आधार बालू की भीति नहीं है।
"अगर तुम सुनना ही चाहती हो, तो सुनो। यद्यपि मैं जानता हूँ मेरे स्पष्टीकरण का एक अर्थ होगा ; किसी को अपनी जीविका से हाथ धोना पड़ेगा। किन्तु मैं विवश हूँ। भले ही मुझे उस 'आया' को अपने वेतन से चालीस रुपये प्रतिमास देने पड़ें।"

झरना 'आया' का नाम सुनते ही काँप उठी। तभी मैंने कहा—"मैं एक नहीं, दो-तीन बार सात-आठ बजे रात्रि के समय तुम्हारे स्कूल गया हूँ। किन्तु 'आया' ने फाटक नहीं खोला। उसने सदैव यही कहा कि सिक्रेटरी साहब का आदेश है, कोई भीतर नहीं आ सकता, क्योंकि वे आवश्यक कार्य कर रहे हैं। और वह आवश्यक कार्य क्या था, इसका रहस्य मुझे बाद में ज्ञात हुआ, जब मैंने उसे सौ रुपये दिये'

"तुम्हें ध्यान होगा तुम्हारे स्कूल के सिक्रेटरी के निजी कक्ष में उत्तर की ओर एक छोटी सी शायद हाथ भर की, खिड़की लगी है। उसकी सांसों से तुम्हारे और प्रकाश के मध्य हो रहे नाटक के रिहर्सल को मैंने देखा है। उसके बाद ही उस स्पेशल सोफे का अर्थ भी मेरी समझ में आ गया था, जिस पर तीन व्यक्ति एक साथ लेट सकते हैं।"

"बिलकुल झूठ।" झरना ने आवेश में कहा।

उस क्षण झरना में इतनी शक्ति कहाँ से आ गयी, यह बात मेरी समझ में न आ सकी, क्योंकि उसके पूर्व वह भयभीत हरिणी-सी कुर्सी पर आ बैठी थी।

'झरना, मेरी आँखों में अब धूल झोंकने की चेष्टा न करो। जिसे तुम अभी तक सन्देह की संज्ञा देती आयी हो, उसका पुष्ट आधार वही दृश्य था। कानों से सुनी हुई बात तो मिथ्या हो सकती है, किन्तु आंखें धोखा दे जायँ, ऐसा कभी नहीं होता।"

"आप पुरुष हैं, कुछ भी कह सकते हैं। नारी का जन्म ही प्रताड़ना के लिये हुआ है, सदा से वह प्रताड़ित होती चली आ रही है। यदि कभी उसने अत्याचार के विरुद्ध मुख खोलने का साहस भी किया, तो उसे कुलटा और व्यभिचारिणी की संज्ञा से अपमानित किया गया।"

"किन्तु मेरे विषय में तुम ऐसा कभी नहीं कह सकती। मैंने

सदैव तुम्हें आगे बढ़ाने में सहायता की है ; किन्तु......।"

"किन्तु क्या ?" झरना ने प्रश्न किया।

"किन्तु. यही कि तुमने मेरे साथ सदैव विश्वासघात किया। मैंने तुमसे एक-दो बार पूछा भी कि अब तुम मुझे क्यों नहीं चाहती, किन्तु तुमने सही-सही कभी इसका उत्तर नहीं दिया।"

"जहाँ तक प्यार करने की बात है, मैं आज भी विश्वास के साथ कहती हूँ, जितना प्यार पहले करती थी, उतना ही अब भी करती हूँ, उससे किसी भाँति कम नहीं। किन्तु यदि कोई सन्देह ही करे, तो उसके लिये क्या कर सकती हूँ !" झरना ने कहा।

"किन्तु झरना ! अब तुम्हारे प्यार में मुझे एक वेश्या की गंध आती है।" मैंने कहा।

"क्या कहा ? लज्जा नहीं आती आपको......।" ग्रीवा झटकाते हुए झरना ने उत्तर दिया।

"नहीं, कभी आ सकती थी क्योंकि तब तुम मेरी थी। अब वह बात कहां !"

वेश्या का नाम सुनते ही झरना का चेहरा तमतमा आया था। भृकुटियों में खिचाव भी आ गया था। बोली—"पुरुष की प्रकृति ही है कि वह अपने अवगुणों पर परदा डालता है, किन्तु नारी के गुण भी उसे अवगुण दिखायी देते हैं। आप भी तो उसी जाति के हैं।"

मुझे झरना का कथन सुनकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ। आखिर वह कह क्या रही है ?

तभी मैंने प्रश्न किया—"मुझमें कौन-सा अवगुण तुमने देखा है, जिसे मैंने तुमसे गोपनीय रखा है।"

झरना ने तैश में आकर कहा—"जो व्यक्ति अपनी पत्नी को विष देकर मार सकता है, उस पर कौन विश्वास करेगा ?"

झरना ने जिस समय यह बात कही थी, मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह स्वयं इस बात से अनभिज्ञ है कि वह क्या कह रही है। ऐसा लगा, जैसे यह बात उसके मुख से अचानक घोड़े पर हाथ पड़ जाने से बन्दूक की गोली की भाँति निकल गयी है।

किन्तु उसके इस कथन को सुनकर मैं अवाक् रह गया ! दो सैकिंड बाद मैंने अपना होश सम्भालते हुए कहा—"अच्छा ! तो यह बात है।"

इस कथन के पश्चात् मेरा पारा जैसे स्वतः चढ़ गया। मेरी भृकुटियों में तनाव आ गया। इसी क्षण प्रकाश का चेहरा मेरी आँखों के सम्मुख आ गया। मैंने मन्द स्वर में कहा—"कमीना कहीं का !"

झरना से यद्यपि मैंने प्रकाश का नाम नहीं लिया था, किन्तु वह समझ गयी थी कि मैंने ये शब्द किसके लिये प्रयुक्त किये हैं। वह कनखियों से मेरी ओर देखती हुई बोली—"मनुष्य कभी अपने अवगुणों को नहीं देखता।"

झरना का इतना कहना था कि मैंने उसके दायें गाल पर तड़ातड़ चार-पांच तमाचे दिये। तभी वह कुर्सी से लुढ़क कर फ़र्श पर गिर पड़ी।

मैं आवेश में कहता जा रहा था—"उसका पक्ष लेते हुए तुझे शर्म नहीं आती कमीनी।"

झरना की आँखें आंसुओं में डूब गयी थीं। वह धोती संभालती हुई बोली—"शर्म किस बात की ? जब उन लोगों को शर्म नहीं आती, जो पत्नी को विष देकर मार डालते हैं, तो मुझे क्यों आये ? मैंने कौन सा पाप किया है ?"

अभी वह अपने को सँभाल नहीं पायी थी कि उसी क्षण उसके कूल्हे पर मैंने एक लात कस कर जमा दी। और कहा—"बुला प्रकाश को ! वह कमीना मेरे सम्मुख कहे कि मैंने अपनी पत्नी को विष देकर मार डाला है। उसने स्वयं विषपान कर लिया था। अगर प्रमाण देखना हो, तो उसके हाथ का लिखा पत्र बाक्स में अब भी रखा है, जाकर देख लो।"

इस बार वह चीख़ उठी। और दोनों हाथों से कलेजे को थामते हुए फर्श पर लेट गयी।

मेरा लात उसके कूल्हे पर न पड़ कर कलेजे में जा लगा था। वह दो-तीन मिनट मूर्छित-सी पड़ी रही। मैं कुछ भयातुर-सा उसे देखता रहा।

मन-ही-मन सोच रहा था, कहीं ऐसा न हो कि इसका भी प्राणान्त हो जाय।

ग्यारह

दूसरे दिन प्रातः छः बजते ही मैं उठ गया था। झरना अब भी बिस्तर पर पड़ी सो रही थी। रात्रि में रोते-रोते उसकी आँखें सूज आयी थीं।

मुझे इस बात का बड़ा पश्चाताप था कि मैंने झरना को क्यों मारा! मैं सोचता रहा, आखिर उसे मारने का मुझे क्या अधिकार है? यही न कि वह मेरी पत्नी है, मैं उसे अपनी समझता हूँ। उस पर मेरा अधिकार है; क्योंकि उसे मैं भोजन और वस्त्र देता हूँ। तन देता हूँ, मन देता हूँ, प्राण सब कुछ,देता हूँ, किन्तु तभी मेरे मन में आया, अब वह भी तो अर्जन करती है। कह सकती है—मैं आपकी पत्नी हूँ, किन्तु संपत्ति नहीं। इसका मेरे पास क्या उत्तर है?

झरना की सूजी हुई आँखें देखकर मेरे मानस में करुणा का उद्रक हो आया। एक बार इच्छा हुई कि उसके पार्श्व में चारपाई पर बैठकर उसे प्यार कर लूँ, उसकी बिखरी हुई केश-राशि को उँगलियों में लपेट लूँ। किन्तु मेरे अंह ने मेरे उन पावों को जकड़ लिया जो आगे बढ़ना चाहते थे। कहा—"तुम पुरुष हो, पौरुष के प्रतीक। कहाँ झुकने जा रहे हो!"

थोड़ी देर मैं उसे खड़ा-खड़ा देखता रहा। उस क्षण मुझे इस बात की भी आशंका थी कि कहीं झरना जग न जाय। मुझे इस स्थिति में देख न ले

इस विचार के आते ही मैं रसोई घर की ओर चला गया। स्टोव जला कर मात्र एक कप चाय बनायी।

जिस समय मेज़ पर बैठा हुआ चाय पी रहा था कि झरना की आँखें कुल गयीं। उसने मुझे देखते ही दृष्टि फेर ली। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मेरी शक्ल से उसे घृणा हो गयी है। उसने करवट बदलकर मुँह दूसरी ओर घुमा लिया मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह पुनः सोने का बहाना कर रही हो।

तभा मेरे मन में आया कि शायद आज वह स्कूल नहीं जायगी। इस बात से मुझे बेहद खुशी हुई। मैंने सोचा अच्छा काँटा दूर हो

जायगा । फिर तो हम दोनों पुनः पूर्व स्थिति में आ जांगे ।

किन्तु उस समय, जब मैं चाय पी रहा था, आपसे सत्य कहता हूँ, मेरे अन्तःकरण ने एकाएक मुझसे कहा—"तुम धन्य हो, तुम्हें धिक्कार है । अब मैं सोचने लगा—"तुम स्वयं कितने नीच हो ! नित्यप्रति झरना तुम्हें चाय बनाकर पिलाती थी । यदि इस क्षण तुम उसके लिये एक कप बना ही लेते, तो क्या छोटे हो जाते ? तुम्हारा पुरुषत्व घट जाता ? छिः ! इस पर भी तुम चाहते हो कि झरना तुम्हें प्यार करे ? कमीनी वह तो नहीं, पर तुम कमीने जरूर हो ।

जिस समय मैं वस्त्र पहिन कर कार्यालय जाने लगा, झरना आँखें मींचती हुई, बिस्तर से उठ बैठी । किन्तु हम दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई । झरना बाथ रूम की ओर मुँह फुलाये चली गयी और मैं घर के बाहर हो गया ।

संध्या को जब कार्यालय से घर लौटा, तो देखा कमरे में ताला बन्द है । सोचा झरना कहीं गयी होगी ।

कमरे की दो चाबियां थीं । एक मेरे पास और दूसरी झरना के क्योंकि मैं कार्यालय साढ़े नौ बजे जाता था और संध्या को पाँच बजे वापस चला आता था । झरना चार बजे के आस-पास घर आ जाती थी । इसलिये कि उसे परेशानी न हो, हमने एक और ताली बनवा ली थी ।

कमरा खोलकर अभी बैठा ही था कि झरना के स्कूल से वही 'आया' आ गयी, जिसने मुझे प्रकाश और झरना के सम्बन्धों का विवरण दिया था । वह आते ही रो पड़ी । बोली—"बाबू जी ! मुझे स्कूल से निकाल दिया । आप से मैंने कहा था, कहियेगा नहीं, नहीं तो मेरी रोज़ी छिन जायगी । मगर आप ने झरना बहिन से कह ही दिया ।"

'आया' का कथन सुनकर मुझे ऐसा लगा, जैसे किसी ने मेरे गाल पर तीन-चार तमाचे जड़ दिये हों ।

एक दीर्घ निश्वास लेते हुए मैंने उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत किया । थोड़ी देर तक मैं हत्प्रभ-सा आँखें बन्द किये बैठा रहा । अब बायें हाथ की एक उँगुली मेरे दाँतों के नीचे थी और मैं नाखून कुतर रहा था ।

इस बीच मैं सोच रहा था कि झरना अब प्रकाश की बाँहों का खिलौना है। मैं उसे छीनना भी चाहूँ, तो नहीं छीन सकता। उसकी अपनी स्वतन्त्र रुचियाँ हैं। यदि वह मुझे नहीं चाहती, तो मैं उसे जबरदस्ती कैसे रख सकता हूँ।

तभी मुझे इस संदर्भ में अपनी प्रथम पत्नी का स्मरण हो आया था। वह मुझे चाहती थी, किन्तु मैं उसे लेशमात्र भी नहीं चाहता था। प्यार करने की बात तो दूर रही मैं उससे वार्ता तक नहीं करता था। यह मेरी अपनी रुचि का प्रश्न था।

यदि पत्नी को पति का प्यार न मिले, तो वह कैसे जी सकती है? संभव है, मेरी पहली पत्नी ने जीवन से ऊब कर आत्म हत्या कर ली हो।

इतने में 'आया' बोली—"बाबू जी! बताइये, अब मैं क्या करूँ?"

इसके पश्चात् एक सेकंड रुक कर उसने कहा—"अगर झरना बहिन जी चाहें, तो मुझे पुनः नौकरी मिल सकती है।"

"लेकिन झरना हैं कहाँ?"

"स्कूल में।" आया ने चमकते हुए नेत्रों से उत्तर दिया। जैसे उसे आशा हो गयी थी कि मैं झरना से कह दूँगा और वह इसे पुनः रखवा देगी।

"ठीक है, तुम जाओ। झरना आती होगी, मैं उससे कह दूँगा।"

"आँ बाबू जी, आपकी बड़ी कृपा होगी। आप जानते ही हैं आजकल नौकरी छूट जाने पर मिलती कहाँ है!"

आया के जाने के पश्चात् मैंने मन-ही-मन कहा—"मेरे कारण बेचारी की अच्छी-भली नोकरी छूट गयी।"

उस समय मेरा सिर पीड़ा के कारण फटा जा रहा था। मुझ में इतनी शक्ति न थी कि मैं दो क्षण भी कुर्सी पर बैठ सकता।

तत्काल मैं चारपाई पर लेट गया।

आज मेरे सामने घोर अन्धकार छाया है। जहाँ तक दृष्टि डालता हूँ, कहीं किनारा नहीं दिखायी देता। नौका एक भयानक तूफ़ान में लहरों के ऊपर तैर रही थी। पुकारना भी चाहूँ तो किसको पुकारूँ? कौन सुनेगा मेरी व्यथा की कथा!

रात्रि के आठ बजे लगभग कुछ तबीयत स्वस्थ हुई। झरना अ
तक स्कूल से लौटकर नहीं आयी थी। उस समय मन में एक आशंक
हुई कि हो सकता है, झरना लौट कर न आये!

अपनी ही इस कल्पना से मुझे ऐसा कुछ लगा, जैसे घड़ी चलते
चलते अचानक बन्द हो गयी हो। एक छटपटाहट! एक भयानक
पीड़ा! अतः झरना को मैं कितना प्यार करता था! कि कोई पति
अपनी पत्नी को कभी इतनी छूट दे सकता है? देर तक सोचता
हूँ, तो जान पड़ता है उसका वियोग, मेरे लिये जीने का एक प्रश्न
वाचक चिह्न है।

फिर भी मैंने मन को आश्वासन दिया कि वह नौ दस बजे तक
भी आ सकती है। कभी-कभी तो वह पाँच-साढ़े-पाँच बजे तक भी
आयी है।

अब रह रह कर मुझे उसे मारने का दुःख अनुभव हो रहा था।
सबसे अधिक दुःख इस बात का था, जो मैंने उससे कहा था—"निकल
कमीनी मेरे घर से।"

आप विश्वास नहीं करेंगे मैं इन सब बातों को स्मरण करके
रोया भी था किन्तु उस समय वहाँ मेरे रुदन को कोई देखने वाला
न था, जो झरना से कहता—मैं उसे कितना प्यार करता हूँ।

फिर मैं उस दिन अपने काम पर नहीं गया। मूड ही कुछ
उखड़ा-उखड़ा-सा था। 'आया' को नौकरी से पृथक् कर देने का दुःख
तो था ही, किन्तु उससे भी अधिक जो बात रह-रह कर मन को
कचोट रही थी, वह थी झरना को मारने की। यदि उस समय वह
होती तो मैं उसे हरेक प्रकार से मनाने की चेष्टा करता।

फिर अकस्मात् उस समय मेरे मन में एक और सूझ आ गयी।
मैंने सोचा; भोजन बना लें, दोनों साथ-साथ बैठकर खायेंगे। यदि
वह भोजन करने से इनकार करती है, तो कह दूँगा—"ठीक है,
यदि तुम नहीं खाती, तो मैं भी नहीं खाऊँगा।

भले ही वह घण्टे आध घण्टे न खाये, किन्तु यह निश्चित है कि
अपने प्रति मेरे मन में इस उभरती हुई पीड़ा को वह अधिक देर तक
सह पायेगी। और फिर, हम दोनों उसी स्थान पर आ पहुँचेंगे,
जहाँ से हमारे मध्य में एक दरार ने जन्म ले लिया था।

मैंने मन ही मन एक ऐसे अकल्पित आह्लाद का अनुभव किया

कि मेरा रोम-रोम स्पंदित हो उठा। उस समय मेरी कुछ ऐसी स्थिति थी, जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका से नये-नये प्रेम के प्रयोग करता हो। भविष्य की सुखद कल्पना से मेरे हृदय में गुदगुदाहट भी कुछ-कुछ हुई थी।

एक बात स्पष्ट कह दूँ। पता नहीं आपको यह सौभाग्य उपलब्ध हुआ है या नहीं। यदि मनाने वाला कोई हो तो मनुहार में बड़ा सुख मिलता है।

इन्हीं भावनाओं से ओत-प्रोत हो मैं रसोईघर में चला गया। अँगीठी जलाकर मैंने उस पर दाल चढ़ा दी।

तत्पश्चात् स्टोर रूम में घी लेने गया। किन्तु वहाँ क्या देखता हूँ कि झरना का बाक्स गायब है। काटो तो खून नहीं! सोचा—किसी ने ताला खोलकर चोरी तो नहीं कर ली!

यह वही बाक्स था, जिसमें झरना के आभूषण और वस्त्र थे। वही मेरे जीवन की कमाई थी। चोरी की कल्पना से मुझे चक्कर आने लगा और मैं वहीं मस्तक पर हाथ रख कर बैठ गया।

कुछ देर तक बैठे-बैठे सोचता रहा कि आखिर यह चोरी हुई कैसे? बाहर का ताला मैंने स्वयं अपने हाथ से खोला है। झरना भी इसे बन्द करके ही गयी होगी।

तभी मुझे स्मरण आया कि कोई भी ताला क्यों न हो, चोरों के पास 'मास्टर की' होती है, जिससे वे साधारण ताले क्या, तिजोरियाँ भी खोल लेते हैं।

उसी समय मेरा ध्यान अपने एक पड़ोसी पर चला गया, जिससे दो-तीन सप्ताह पूर्व पानी के लिये मुझसे लड़ाई-झगड़ा हुआ था। क्योंकि 'पाइप' दो-तीन किरायेदारों का सम्मिलित था।

बिना पड़ोसी की शह से घर में कभी चोरी नहीं हो सकती। मैंने सोचा इस चोरी में निश्चित रूप से पड़ोसी का हाथ है। हम दोनों सुबह से शाम तक घर के बाहर रहते हैं; इसी ने किसी को संकेत कर दिया होगा।

मैं बोखलाया-सा उठा और स्टोर रूम के बाहर आया। वस्त्र पहिन कर पुलिस चौकी में रिपोर्ट लिखाने चल पड़ा।

पुलिस चौकी मोहल्ले में ही थी। घर से लगभग दो फ़र्लांग की दूरी पर। किन्तु जिस समय मैं पुलिस चौकी के निकट पहुंचा, मेरे

मस्तिष्क में एक विचार विद्युति की भाँति कौंध उठा। संभव है, झरना रात्रि की घटना से ऊब कर मैके चली गयी हो, और साथ में वाक्स भी लेती गयी हो। क्योंकि स्त्रियाँ, भले ही मैके वाले उन्हें न पूछें, लड़ाई-झगड़ा होने पर सीधे मैके की ही राह पकड़ती हैं।

इस विचार के उत्पन्न होते ही, मन-ही-मन मैं परम प्रसन्न हो उठा। क्योंकि पुलिस चौकी में रिपोर्ट लिखाने से लेकर बाद तक की जो क्रियाएँ होती हैं, सभ्य मनुष्य एक बार भोग लेने के पश्चात् दो बारा रिपोर्ट लिखाने का साहस नहीं करता। पहले तो रिपोर्ट की लिखाई यदि आप नहीं देते, तो वह लिखी नहीं जायगी। और यदि लिखी भी गयी, तो मुंशी जी की इच्छानुसार।

तत्पश्चात् सिपाहियों का घर पर आना-जाना ! उनका आतिथ्य-सत्कार आदि, इसी प्रकार की क्रियाएँ हैं। सुबह-शाम थाने जाइए। क़वायद-परेड कीजिए। अनेक परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं। मुझे इन सब तथ्यों का ज्ञान इसलिये था कि मेरे ही मकान में नीचे एक किरायेदार रहता था, उसका नाम था रमझू। वह जाति का कहार था। उसकी बीवी का संबंध किसी अन्य व्यक्ति से था। एक दिन वह अपने प्रेमी के साथ भाग गयी।

रमझू का थाने में रिपोर्ट क्या लिखाना हुआ, सिपाही उसके घर का सुबह-शाम चक्कर काटने लगे। उस बेचारे की चमड़ी उधेड़ ली। वह उधार ले-ले कर उन्हें चाय-नाश्ता कराता रहा। अन्ततोगत्वा, बीवी तो गयी ही थी, सैकड़ो रुपये के ऋण का भार उसके शीश पर और आ पडा।

मुझे भी रमझू के साथ थाने की कई बार शकल देखनी पड़ी था। मैं चार-छः बार में ही ऊब गया था। वे परेशानियाँ मुझे अचानक स्मरण हो गयीं।

अस्तु, मैंने पुलीस चौकी जाने का विचार त्याग दिया, और सीधे ससुराल की राह पकड़ी।

मेरी ससुराल, जैसा कि मैंने पूर्व ही आपसे कहा है, नगर में ही नहर के किनारे पर थी।

जिस समय मैं वहाँ पहुँचा, मेरी सास मौजूद थी। उन्होंने दामाद को देखते ही बत्तीसी खोल दी। अत्यन्त आदर-सत्कार से बैठाया। बोलीं—"बिटिया मज़े में है बेटा ?"

उनके इस प्रश्न को सुन कर अवाक् रह गया। मेरे चेहरे के बदलते हुए रंग को देख कर सास ने प्रश्न किया—"क्यों बेटा क्या बात है ? तुम घबराये हुए कैसे दिखलाई देते हो ?"

एक दीर्घ निःश्वास लेते हुए उत्तर में मैंने उनसे कहा—"क्या बताऊँ माता जी, मेरे यहाँ चोरी हो गयी !"

"चोरी ! आश्चर्य से सास बोलीं।

जिस समय उन्होंने यह शब्द कहा था, उनकी दोनों पुतलियों का आकार पूर्व की अपेक्षा कुछ बड़ा हो गया था।

"हाँ माता जी।"

"कैसे बेटा ?"

"यही तो एक रहस्य की बात है। ताला बन्द था, किन्तु कमरा खोल कर देखा तो झरना का बाक्स गायब ! मैंने सोचा, झरना यहाँ आयी होगी, शायद साथ लेती गयी हो।"

"नहीं बेटा, वह तो यहाँ आयी ही नहीं।"

थोड़ा सा रुक कर सास ने आगे कहा—"थाने में रिपोर्ट नहीं लिखायी ?"

"जा रहा हूं, किन्तु मैंने सोचा, यहां भी देख लूँ।"

कथन के पश्चात् मैं वहां से पुलिस चौकी की ओर चल पड़ा। ससुराल से अभी मैंने सौ गज का ही फासला तय किया होगा कि सामने से झरना आती हुई दिखायी दी। वह रिक्शे पर बैठी थी। उसके दोनों पैर सम्मुख रखे हुए बाक्स के ऊपर थे।

बाक्स को देखते ही मेरे शरीर में प्राण आ गये। किन्तु एक परेशानी समाप्त ही हो पायी थी कि दूसरी नयी आ खड़ी हुई। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि झरना अब मेरे साथ रहना नहीं चाहती। यही कारण है कि वह अपना सम्पूर्ण सामान उठा ले आयी है।

इसी बीच रिक्शा मेरे निकट आ गया। मैंने सोचा, देखें झरना मुझे देख कर रुकती है या नहीं। किन्तु जब रिक्शा मेरे समीप से निकल गया और झरना कुछ नहीं बोली, तो मुझे विवश होकर उसे पुकारना पड़ा। किन्तु देखता क्या हूँ कि रिक्शा चला जा रहा है। झरना ने जैसे मेरी आवाज ही नहीं सुनी।

दूसरी बार मैंने पुकारा—"झरना !" किन्तु रिक्शा चला जा रहा था।

इस बार झरना ने मुड़ कर ज़रा मेरी ओर देखा भी, किन्तु रिक्शा का चलना बन्द न हुआ था। मैंने सोचा, शायद दस-पाँच कदम चलने के पश्चात् रिक्शा रुक जाय; किन्तु वह नहीं रुका और थोड़ी ही देर पश्चात् दृष्टि से ओझल हो गया।

अब तो स्पष्ट ही हो गया था कि झरना अपना बाक्स लिये मैके जा रही है। इसके साथ-साथ मुझे ऐसा भी कुछ आभास हुआ कि वह मेरे साथ नहीं रहना चाहती।

इस विचार से मन में वेदना तो हुई थी, किन्तु क्रोध उससे भी अधिक था। जी में एक बार आया, अभी रिक्शे पर बैठूँ और उसे मैके से पीटता हुआ जबरदस्ती घसीट लाऊँ! किसमें कितना साहस है, जो मुझे लाने से रोक सके? मेरे साथ उसकी भाँवरें पड़ी हैं। वह मेरी पत्नी है। मेरा उस पर पूरा अधिकार है।

किन्तु दूसरे ही क्षण यह सोच कर मैं चुप रह गया कि औरत जिद्दी होती है, जिस समय वह ज़िद पर तुल जाती हैं, संसार की कोई शक्ति उसे रोक नहीं सकती। उस क्षण उसे हिताहित की भी चिन्ता नहीं होती।

यह केकयी का हठ ही तो था कि राम को चौदह वर्ष वनवास भोगना पड़ा।

मैंने एक दीर्घ निश्वास ली और व्यथा से पीड़ित मन लेकर मैं घर की ओर चल पड़ा।

जिस क्षण मैंने कमरे में प्रवेश किया, देखा कमरा चिराँध से भरा हुआ है। भीतर प्रवेश करते ही मुझे एक घुटन-सी प्रतीत हुई।

तभी मुझे स्मरण आया कि दाल की बटलोही चूल्हे पर चढ़ा गया था। तत्काल रसोई घर पहुँचा, देखा वह जल कर क्षार हो गयी है। उसी की गंध सम्पूर्ण वातावरण में फैल रही थी।

कमरे की सभी खिड़कियाँ खोलीं। तत्पश्चात् चारपाई पर आकर लेट गया।

हृदय भर आया था। तनिक-सा स्पर्श पाते ही वह आकाश में लटकते हुए बादलों-सा बरसने लगता! लेटे-लेटे मन में अनेक विचार उठ रहे थे, किन्तु स्थायी नहीं थे।

सोच रहा था—"झरना ने ज़रा मुड़ कर देखा, तो किन्तु कोई बात नहीं की। इतनी जल्दी में कितना अन्तर आ गया! क्या वस्र

वह मुझे अपना नहीं मानती ? क्या वह यह नहीं सोचती की मैं उसका पति हूँ ? मैंने उसे प्यार किया है, प्राणों का सारा अमृत दिया है। बदले में केवल चिन्ता ग्रहण की है। मैं व्यथा पी-पी कर रहा हूं।

किन्तु यह कैसे सम्भव है कि जिस झरना को मैंने प्राणों से अधिक चाहा है, वह मुझे भूल जाय ! और यदि वह मुझे भूल जाती है तो मुझे मानना पड़ेगा कि पत्नी का प्रेम भी एक प्रवंचना है। वह उसी समय तक पति से प्रेम करती है, जब तक वह अर्थ की दासता से मुक्त नहीं हो पाती। जीविका का आधार उपलब्ध होते ही उसका संसार उसके स्वतंत्र विचारों के अनुरूप निर्मित होने लगता है। झुकने और समझौता करने की सारी विवशताएँ समाप्त हो जाती हैं। कामनाओं के उदय होते ही उसकी ऐसी बहुतेरी सीमाएँ टूट जाती हैं, जिनकी सामान्य गृहवधुओं को कभी कल्पना भी नहीं होती।

यहाँ प्रश्न उठता है कि नारी पुरुष की आधीनता को क्या इसीलिये स्वीकार करती है कि उसे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं रहती ? मेरे मन में कभी इस प्रकार के विचारों ने जन्म नहीं लिया था। मैंने झरना को अर्थ की दृष्टि से सदैव स्वतंत्र रखा। जहाँ तक सम्भव हुआ उसे कभी यह अनुभव नहीं होने दिया कि मैं अपने विचारों को उस पर सायास लादने की चेष्टा करता हूँ।

किन्तु वही झरना मुझे त्याग कर चली गयी ! उसने मुझसे बात तक नहीं की। फिर भी मैं निराश नहीं था। मुझे पूर्ण विश्वास था कि झरना कल नहीं परसों, परसों नहीं, नरसों तो मेरे पास लौट ही आयेगी।

झरना के बिना दो दिन कट तो गये, किन्तु अनेक घड़ियों में मैंने यही अनुभव किया कि मैं जड़ हूँ, निर्जीव हूँ। मेरी चेतना विलुप्त हो गयी है। मेरी उमंगों और प्रेरणाओं के सारे मधुर स्रोत सूख गये हैं। मुझे भूख नहीं लगती, मुझे नींद नहीं आती। चाय पीते-पीते हाथ के प्याले में आँसू टपक पड़ते हैं।

दिवस तो कार्यालय में कट जाता था, किन्तु निशा की निर्ममता मैं सहन नहीं कर पाता था। झरना का वियोग मेरे जीवन के लिये एक चुनौती था। ऐसा लगता, जैसे मेरा अस्तित्व नष्ट हो रहा है, मैं दिनों-दिन पीला पड़ता जा रहा हूँ।

तीसरा दिन भी किसी भाँति कार्यालय में गुजर गया। शाम को जब घर आया, तो अचानक मेरा हृदय रो पड़ा। कमरे में इधर-उधर दृष्टि डाली तो एक गहरी शून्यता देख-देखकर मैं अपने आँसू रोक न सका। लगता था, जैसे मेरे घर की लक्ष्मी चली गयी हो। दो दिन से झाड़ू नहीं लगी थी और फ़र्श पर धूल की एक पर्त जम गयी थी। जिस कुर्सी पर बैठा था, उसकी बाहों पर धूल पड़ी थी।

तभी मैंने अनुभव किया कि कोई भी वस्तु जड़ नहीं है। यह हमारे सोचने और समझने का दृष्टिकोण है, जो हम किसी वस्तु को जड़ समझ लेते हैं। यह कुर्सी भी किसी के प्यार की भूखी है। किसी के करों का स्पर्श पाते ही उसमें एक कान्ति आ जाती है, जो हमारे मन को विमुग्ध कर लेती है। और वह कान्ति ही उस पदार्थ की आत्म-चेतना है, जिसे हम जड़ की संज्ञा से अभिहित करते हैं।

प्रेम जीने का एक माध्यम है। वह एक ऐसा रस है, जिससे हम जीवन का एंजिन संचालित करते हैं। प्रेम जीवन है, जिसके अभाव में पेड़-पौधे भी शुष्क निष्प्राण और निर्जीव हो जाते हैं।

उसी क्षण मैंने निश्चय किया कि मैं झरना को अभी चलकर लिवा लाता हूँ। वह जिस प्रकार चाहे, रहे, लेकिन घर में आकर। क्योंकि बिना उसके मेरा अस्तित्व कान्तिहीन है, अपंगु है।

और दूसरे ही दिन सचमुच जाकर मैं उसको ले आया होता, किन्तु उस समय मेरे मन में एक आक्रोश व्याप्त था कि वह नारी है, मैं पुरुष हूँ।

संस्कारों का जो प्रभाव काई की भी भाँति मन पर जम जाता है, उससे शनैः-शनै. मुक्ति मिलती है। यह मेरा संस्कार था कि मैं उसे अपने से हीन समझ रहा था, जबकि उसके अभाव में मेरा व्यक्तित्व टूट रहा था।

जिस समय मैं ससुराल पहुँचा झरना वहाँ नहीं थी। मेरी सास बराण्डे में बैठी बच्चों को कहानी सुना रही थी। मुझे देखते ही उनका मुँह कुप्पा जैसा फूल आया। मैं तत्काल समझ गया कि झरना ने ग्रामोफ़ोन में चाभी अच्छी तरह भर दी है। अभी रिकार्ड

बजने लगेगा।

मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं सास से बातें करता। किन्तु विवश था।

तभी वह एक कहानी अधूरी छोड़ दूसरी कहानी की डोर पकड़ कर बोली—"क्यों, दीपक! यह कोई भले घर का क़ायदा है जो रोज़-रोज मेरी झरना को मारते-पीटते रहते हो।"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। तब आवेश में आती हुई वह बोली—"तुम्हारे जैसे दामाद के साथ भला कौन अपनी लड़की भेजना पसंद करेगा?"

सास की ये बातें सुनकर मुझे अत्यन्त पीड़ा हुई। मुझे कुछ ऐसा आभास हुआ, जैसे वह मेरी सास नहीं, मोह ममता बनकर उसका अहं बोल रहा है। उसके पास अमित वैभव है और मैं मात्र एक लिपिक हूँ, जिसे गिने-गिनाये रुपये महीने की पहली तारीख को मिलते हैं जो सात तारीख़ तक मुश्किल से रह पाते हैं।

एक बात आपसे पहले भी कह चुका हूँ और अब पुनः कह रहा हूँ कि मैं वह व्यक्ति हूँ जिसने स्वाभिमान को प्राणों से भी अधिक चाहा है। स्वाभिमान मेरा जीवनाधार है, मेरी तत्परता का कवच, दृढ़ता का तेवर और श्रद्धा की निष्पत्ति है।

मेरी सास ने मेरे स्वाभिमान पर ऐसी चोट की थी कि मैं तिलमिला उठा। बोला—ब्याह करने के पूर्व ही यदि आपने यह सोच लिया होता, तो अधिक अच्छा होता। उस समय तो आपको यह बेटी एक बोझ मालूम होती थी। मैं आपके यहाँ नहीं आया था, आप लोग स्वयं मेरे पीछे-पीछे दौड़ रहे थे।

"तो क्या इसका यह तात्पर्य है कि तुम मेरी लड़की को मार डालोगे?" सास ने ग्रीवा ऊँची करते हुए कहा।

"लड़की अब आपकी नहीं, मेरी है। मैं उसका पति हूँ, वह मेरी पत्नी है। उस पर अब मेरा अधिकार है, आपका नहीं।"

"अधिकार का यह मतलब नहीं है कि तुम उसे मार डालोगे।"

"चाहे जैसा व्यक्ति हो, अपने कर्मों का फल तो उसे भोगना ही पड़ेगा। यदि झरना अनुचित कार्य न करती वह मेरे अनुकूल बनी रहती, तो मैं उसे क्यों मारता? उसने मेरी शिकायत तो आपसे की, किन्तु अपनी करतूत पर परदा डाल दिया आप समझती हैं, आपकी

लड़की बड़ी भोली है; पर आजकल जो नाटक वह खेल रही है, कौन ऐसा पति होगा, जो उसे सहन करेगा ? और मैं इस प्रकार की लड़कियों के माँ-बाप को क्या कहूँ, जो उन्हें स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृंखलता को प्रोत्साहन देते हैं ?" मुझे तो ऐसा लगता है कि यह पीढ़ी की पीढ़ी पतन की ओर जा रही है।"

मेरी सास इतना सुनते ही खीखिया उठीं। उनकी मुखाकृति उस क्षण एक चिढ़ी हुई बँदरिया-सी दिखायी दे रही थी। बोलीं—"तुम जैसे निकम्मे लोग इससे अधिक सोच ही क्या सकते हो। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख होता है कि तुम आजकल की लड़कियों का हँसना-बोलना, उनका घूमना-फिरना भी नहीं देख सकते ? तुम तो यह चाहते हो, कि वह तुम्हारे पाँव की जूती बनी रहे। कमरे में बन्द पड़ी रहे, न कहीं जाय न किसी से बोले, न हँसे !"

बोलते-बोलते अचानक उन्हें खांसी आ गयी। वे कुछ आवेश में बोल रही थीं। दो क्षण बाद बलग़म थूकती हुई बोलीं—"हाय तुमने मेरी बेटी को मारा ! भला कौन माँ इसे सहन कर सकती है।"

मुझे उस समय ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह अपनी बात के आगे किसी की सुनना नहीं चाहती। मैं तत्काल उठकर खड़ा हो गया। बोला—"ठीक है, तुम अपनी लड़की को अपने पास रखो, मैं जा रहा हूँ।"

कथन के साथ मैं वहाँ से चल पड़ा।

अभी पचास कदम मुश्किल से चल पाया था कि देखता हूँ कि झरना प्रकाश के साथ रिक्शे पर बैठी चली आ रही है।

अब मेरा क्रोध पुनः भड़क उठा। उस समय मेरे मन में आया कि झरना की चोटी पकड़ कर रिक्शे से उसे खींच लूँ और वहीं बुरी तरह पीटना प्रारम्भ कर दूँ। उस पर मेरा अधिकार है, मेरा, यह प्रकाश साला उसका कौन होता है !

इतने में रिक्शा मेरे निकट आ पहुँचा। झरना ने रिक्शा चालक को रुकने का संकेत किया।

रिक्शा रुक गया। झरना नीचे आ गयी। किन्तु प्रकाश रिक्शे पर ही बैठा रहा।

उस क्षण प्रकाश की मुखाकृति से ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे वह अपराधी है। फिर भी उसने वहीं से बैठे-बैठे कहा—"नमस्कार

भाई साहब।"

किन्तु मैंने कोई उत्तर नहीं दिया।

इतने में झरना बोली—"क्या आप घर से आ रहे हैं?"

इस कथन के साथ ही साथ वह मेरे अत्यन्त समीप आ गयी। बल्कि उसी क्षण ऐसा भी हुआ कि हवा के झौंके से उसकी साड़ी का पल्लू उड़कर मेरे शरीर का स्पर्श करने लगा। क्षण भर के लिए तो मैं स्वप्न लोक में जा पहुँचा।

मैंने झरना के चेहरे पर जिज्ञासा से एक दृष्टि डाली। उसमें किसी प्रकार की कृत्रिमता न थी। उसके हाव—भाव, बात करने की शैली सब कुछ पूर्ववत थी। सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसके व्यवहार से यह बोध न होता था कि उसने कोई अवांछित कार्य किया है। जबकि मैं सोच रहा था, जिस समय उससे मेरी भेंट होगी, वह मुझसे आँखें न मिला सकेगी!

प्रश्न के उत्तर में मैंने कह दिया था—"हाँ।"

तभी प्रकाश ने रिक्शे पर बैठे-बैठे कह दिया—"अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।"

झरना उसकी ओर उन्मुख होती हुई बोली—"हाँ, आप चलिए।"

दोनों की वार्ता में कहीं भी मुझे उस बात का कोई संकेत नहीं मिला, जिसकी मैं कल्पना करता था। क्योंकि बात करते क्षण मेरी आँखें उन पर लगी रहती थीं।

प्रकाश चला गया।

झरना कहीं से घूम कर आ रही थी, जैसा कि मैंने अनुभव किया। उसके चेहरे पर गुलाब के पुष्प की सी ताजगी थी।

प्रकाश के चले जाने के पश्चात् झरना बोली—"आइए, घर चलें।"

"नहीं, अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगा।"

एक आशा से मैंने कहा—"लेकिन तुम से कुछ बातें अवश्य करनी हैं।"

"तो क्या खड़े-खड़े ही बातें करेंगे?"

"नहीं मेरा विचार था कि तुम मेरे साथ चलतीं।"

"कहाँ चलूँ?" झरना ने मेरी आँखों में अपनी आँखें डालते

हुए पूछा ।

झरना की दृष्टि में उस क्षण एक ऐसी मादकता थी, जो मिलन की प्यासी प्रेयसी की दृष्टि में दिखायी देती है ।

मैंने उससे वार्ता करते समय अनुभव किया कि उसमें किसी प्रकार का विपर्यय नहीं है, विरक्ति नहीं है । मेरे प्रति उसका व्यवहार वही है, जैसा पहिले था । जबकि मैंने इस प्रकार की प्रमदाओं के विषय में सुना है कि उनके मन में पति के प्रति उपेक्षा के भाव होते हैं । बात करना तो दूर रहा, वे उनकी शक्ल भी देखना नहीं पसंद करतीं । उस समय उनका सर्वस्व, यहाँ तक कि देवता भी वही व्यक्ति होता है, जिससे वे प्रेम करती हैं ।

किन्तु उसमें मैंने उस दिन यह एक विचित्रता देखी । उसके व्यवहार से मैं समझ नहीं पा रहा था कि आखिर झरना का वास्तविक रूप क्या है ?

तो उसके प्रश्न के उत्तर में मैंने कह दिया—"घर चलो न ?"

कुछ सोच कर उसने उत्तर दिया—"घर अभी नहीं चलूँगी ।"

"क्यों ?"

"यों ही ।"

"तो क्या मैं इसका यही अर्थ समझूँ कि समष्टि रूप से नारी एक प्रवंचना है ।"

"यह आपकी बुद्धि और दृष्टिकोण पर निर्भर करता है । आप जानते हैं प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों में स्वतंत्र है । किसी पर अपने विचार लादना मैं अनुचित समझती हूं । जहाँ तक शब्दों के अर्थ की बात है, वह प्रयोग पर निर्भर करता है । मनुष्य में जितनी क्षमता और सामर्थ्य होती है, उतनी ही गहराई तक वह पहुंच पाता है । शब्दों के अर्थ व्यक्ति के दृष्टिकोण पर भी एक सीमा तक निर्भर करते हैं । यदि आप सचमुच अनुभव करते हैं कि नारी एक प्रवंचना है, तो मुझे इस पर कोई आपत्ति नहीं है ।"

झरना की बुद्धि पर मुझे आश्चर्य हो रहा था । यही झरना दो-चार दिन पूर्व जैसे गूँगी थी । किन्तु अब अचानक उसकी बुद्धि में एक प्रखरता आ गयी थी । मैंने बिना किसी पूर्वाग्रह के तत्काल जब इस पर विचार किया, तो मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि मनुष्य की मौलिकता का हमें उसी समय सही-सही बोध होता है, जब वह सब

प्रकार से स्वतंत्र होता है।

मुझे मौन देख कर झरना बोली—"तो फिर मैं चलूँ ?"

उदासीन स्वर में मैंने कहा—"जैसी तुम्हारी इच्छा !"

सहसा इतना मैं कह तो गया, किन्तु फिर मेरा मन काँप उठा। सोचा कहीं ऐसा न हो कि यह कह दे—'अच्छा, तो मैं चल रही हूं।"

तभी मैंने एक आशा से पुनः कह दिया—"क्या तुम मेरे साथ थोड़ी देर और नहीं रह सकतीं ?

उसी मन्द स्मिति के साथ उसने उत्तर दिया, जो उसकी विशेषता थी।

"थोड़ी देर क्यों रात भर रह सकती हूं। मैं कैसे भूल सकती हूं कि आप मेरे पति हैं। किन्तु कोई बात भी तो हो।"

"झरना, अब तुम मेरे लिये एक पहेली बनती जा रही हो और इसी पहेली को थोड़ी देर कहीं एकान्त में बैठ कर मैं समझना चाहता हूं।"

"नारी कभी पहेली नहीं रही। दीपक जी ! पुरुष ने ही उसे पहेली बना दिया है। वह सदैव मक्खन-सी कोमल और संत-सी उदार थी।"

इसके पश्चात् साड़ी के पल्लू को सँभालती हुई वह बोली—"मैंने कभी आपके साथ छल नहीं किया। पर यदि आप ऐसा समझते हैं तो समझें। मेरा क्या दोष है।"

"दोष मेरा है या तुम्हारा मेरे निकट अब इसका कोई मूल्य नहीं रहा। मैं बस यही चाहता हूं कि हमारे मध्य जो एक दरार पड़ती जा रही है, वह किसी भाँति पट जाय।"

"अब यह कार्य इतनी सरलता से संभव नहीं है। उसके लिये अधिक समय की आवश्यकता पड़ेगी।" इतना कह कर झरना ने इधर-उधर देखा। फिर वह बोली—"अब मैं चलूँगी रात अधिक हो गयी।"

झरना के इस कथन से मेरे मन को एक आघात लगा। मैं सोच रहा था, कदाचित वह कहेगी कि मेरे मन में आपके लिये वही स्थान बना हुआ है, कहीं कोई अन्तर नहीं पड़ा है।

तभी झरना बोली—"अब मुझे जाने दीजिए।"

मैंने कुछ अनुनय-विनय के स्वर में कहा—"सचमुच तुम घर नहीं चलोगी।"

"आप इतने परेशान क्यों हैं?" एक मन्द स्मिति के साथ उसने कह दिया।

"झरना!" एक दीर्घ निश्वास लेते हुए मैंने कहा—"तुम मुझे समझ नहीं सकी।"

किन्तु झरना के चरण उठ चुके थे। चलते-चलते वह बोली—"मनुष्य अपने ही को अभी तक नहीं समझ सका "दीपक बाबू" दूसरे को समझ लेने का दावा करना उसका भ्रम है।"

झरना चली जा रही थी। और मैं अँधेरे में उसकी छाया देख रहा था।

दूसरे दिन प्रातः मैं सो ही रहा था कि किसी ने द्वार की कुंडी खुटखुटायी। द्वार खुलते ही मैंने देखा कि झरना के स्कूल की 'आया' खड़ी है।

उसे देखते ही मेरा मन संकोच में डूब गया। मैंने तत्काल कहा—"आओ बैठो।"

'मनुष्य कितना स्वार्थी है।' मन-ही-मन मैंने कहा—मैंने इससे वायदा किया था कि झरना से कह कर उसकी पुनः नियुक्ति करवा दूंगा। किन्तु मैंने उसके विषय में झरना से एक शब्द भी नहीं कहा। जबकि उसकी नौकरी मेरे कारण समाप्त हुई थी।'

'आया' कुर्सी पर बैठते ही बोली—"बाबू जी, मेरे लिये कुछ किया?"

'आया' असत्य नहीं बोलूंगा। कल मेरी उससे भेंट हुई थी; किन्तु मैं स्वयं अपने में इतना उलझा हुआ था कि तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ कहने का मुझे ध्यान नहीं रहा। किन्तु आज मैं अवश्य प्रयास करूंगा कि तुम्हारा कार्य हो जाय।"

"बाबू जी, आपकी बड़ी कृपा होगी।" इस कथन के साथ ही उसने युगल कर जोड़ लिये।

"नहीं इसमें कृपा की कोई बात नहीं है।" मैंने गंभीर स्वर में

कहा—"तुम्हारे परिवार में और कौन-कौन हैं ?"
"माँ है और एक छोटा भाई ।"
"छोटे भाई की क्या आयु है ?"
"यही दस वर्ष का होगा बाबू जी ।"
"पढ़ता है ?"
"हाँ, चौथी में है ।"
"तुमने कहाँ तक पढ़ा है ?"
"आठवीं तक ।"
"मैट्रिक क्यों नहीं किया ?"
"क्या करती बाबू जी, पिता जी की मृत्यु हो जाने से सारा खेल बिगड़ गया । मुझे पढ़ाने की उनकी बड़ी इच्छा थी ।"
कहते-कहते उनकी आँखों में आँसू भर आये ।
निर्धनता के धुएं में घुटती हुई उस आया की कातर वाणी सुनकर मेरा हृदय द्रवित हो उठा। वह भी उसी जाति की बुलबुल थी, जो स्वतंत्र होकर डालियों पर इधर से उधर चहकती फिरती है। किन्तु बचपन में ही उसके पंख कट गये हैं और अब वह असहाय, अपंगु दाने-दाने के लिये भटकती फिर रही है !
मैं उसी क्षण कुर्सी से उठ पड़ा। वाक्स से दस रुपये का नोट निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—"लो, इसे रख लो और जाओ, तुम्हारे लिये कोई न कोई प्रबन्ध मैं अवश्य करूँगा ।"
जब वह उठ कर जाने लगी, तभी मैंने पुनः उससे कहा—"देखो तुम इस वर्ष मैट्रिक का फ़ार्म अवश्य भर दो अच्छा । जो कुछ सहायरा मै तुम्हारी कर सकूँगा, अवश्य करूँगा ।"
आश्वासन की दो बूँद पाते ही मुरझाई लता हरी हो उठी ।
द्वार तक पहुँच कर 'आया' मेरी ओर मुड़ कर बोली—"तो फिर बाबू जी, आप से कब मिलूँ ?"
"तुम मुझसे परसों मिलो ।"
"अच्छा बाबू जी, नमस्ते ।"
'आया चली गयी, किन्तु एक नयी जिम्मेदारी मुझे सौंप गयी ।

उस दिन सास की बातों से हमारे संबंधों में एक कसैलापन आ गया था। मेरी इच्छा नहीं थी की ससुराल जाता। किन्तु परिस्थितियाँ मनुष्य को कितना झुका देती हैं। मुझे विवश होकर जाना ही पड़ा।

जिस समय वहाँ पहुँचा, पता चला कि वह घर में नहीं है। इतने में मुन्ना दिखायी दे गया। मैंने संकेत से उसे अपने पास बुला लिया। अब वही मेरा सच्चा साथी था। उसे लेकर मैं मिठाई की दूकान पर पहुंच गया। दो रसगुल्ले का आदेश देकर मैं कुर्सी पर बैठ गया और मुन्ना को भी समीप वाली कुर्सी पर बैठा दिया।

मैंने मुन्ना से मन्द स्वर में प्रश्न किया—"क्यों भैया! तुम्हारी झरना बुआ कहाँ गयी?"

मुन्ना की दृष्टि उस समय थाल में रखी मिठाइयों पर जमी हुई थी। उसने मेरी ओर देखते हुए कहा—"बुआ बकसा लेकर घर चली गयीं।"

"घर चली गयीं?"

"हाँ।"

"किसके?"

"अपने।"

इतने में एक नौकर ने एक प्लेट में दो रसगुल्ले लाकर मुन्ना के सम्मुख रख दिये। वह उठा कर खाने लगा।

उस समय मेरे मन में प्रसन्नता तो थी, किन्तु विश्वास कम था कि वह सचमुच घर गयी होगी। किन्तु मुन्ना से इस संबंध में अधिक प्रश्न करना, मैंने व्यर्थ समझा।

तभी मैंने उससे कहा—"चलो, अब घर चलो।"

किन्तु मैंने देखा, मुन्ना और मिठाई खाना चाहता है। तभी मिठाई वाले से मैंने एक रुपये की मिठाई बाँध देने के लिये कह दिया।

अब मुन्ना को थोड़ी दूर पहुँचा कर मैंने घर की राह ली।

मार्ग में सोचता चला आ रहा था, दोष मेरा है, उसका नहीं!

तब मैंने मन-ही-मन निश्चय किया—अब भविष्य में झरना का मन कभी नहीं दुखाऊँगा। कितने लोगों को इतनी सुन्दर तथा कुशल पत्नी मिल पाती है ?"

क्षण-क्षण में यह अनुभव कर रहा था कि उसके घर से जाते ही मन की सम्पूर्ण शान्ति भंग हो गयी है। जैसे एक तूफान आ गया था और मैं तृण-सा अस्तित्वहीन इधर से उधर उड़ रहा था। झरना के अभाव में मेरी ऐसी स्थिति होगी, मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। अब प्रायः मेरे मन में आता—कभी-कभी जब उमंग में आती, तो वह मुझे बादाम का हलुआ बना कर खिलाती और कहती एक दिन याद करोगे कि कोई कभी था।

अब निश्वास ले लेकर कैसे दिन काटूँ ?

किन्तु जिस समय घर पहुँचा, स्थिति भिन्न मिली। द्वार पर तो ताला लटक रहा था। दृष्टि जाते ही मन अवसाद से भर गया। फिर भी मैं पूर्ण निराश नहीं हुआ। सोचा, संभव है झरना अपना बॉक्स यहीं रख कर कहीं चली गयी हो।

कमरे में प्रवेश करते ही हृदय की धड़कनें और तीव्र गति से चलने लगी थीं। इधर-उधर दृष्टि डाली, किन्तु झरना का बाक्स कहीं दिखायी नहीं पड़ा। सामान रखने वाले कमरे में देखा, वहाँ भी बाक्स न था।

अन्ततोगत्वा, निराश होकर कुर्सी पर बैठ गया। लेकिन उस समय मेरे मन में बार-बार यही प्रश्न उठ रहा था कि आखिर बाक्स लेकर झरना गयी कहाँ ? घर से वह बाक्स लेकर आयी अवश्य है; क्योंकि मुन्ना से असत्य बोलने की आशा है, मैं नहीं कर सकता था झूठ बोलने में उसका स्वार्थ ही क्या था ? और मेरा ख्याल है, सामान्य रूप से बच्चे झूठ बोलते भी कम हैं।

उस समय मैं अत्यंत उद्विग्न हो उठा। मेरी समझ में नहीं आ रहा था मैं कहाँ जाऊँ ? कमरे का सुनसान वातावरण मुझे काट रहा था। मैं एक ऐसी घुटन महसूस कर रहा था, जिसमें प्रमत्त हो जाने की भी संभावना थी। खड़े-खड़े मैं उस खिड़की पर जा पहुँचा, जहाँ झरना खड़ी होकर एक बड़े दर्पण को सामने रखकर कंघी-चोटी करती थी। आज वहाँ मैंने देखा—कान का टूटा एक बुन्दा पड़ा हुआ है। मैंने उसे उठा लिया। उसे कण्ठ से लगाया और रो पड़ा। फिर

उसे जेव में रखकर आँसू पोंछता हुआ मैं टहलने लगा।
अन्त में, द्वार बन्द कर मैं घर के वाहर चला आया।

दो दिवस निरन्तर में उसकी खोज करता रहा, किन्तु वह न मिली। सास ने सीधा उत्तर दे दिया था—"अब यहाँ क्यों आते हो?"

मैं उन दिनों कार्यालय भी नहीं गया। 'पार्ट टाइम' कार्य पहले ही छोड़ चुका था। एक अजीव सी उदास-उदास और मनहूस जिंदगी मैं जी रहा था। कभी-कभी सोचता कि यदि झरना के मन में मेरे प्रति प्रेम नहीं है, वह मेरे साथ नहीं रहना चाहती, तो फिर मेरे मन में उसके प्रति इतना मोह क्यों है? मैं उसके अभाव में इतना दुखी क्यों हूँ? में उसे वाँध कर क्यों रखना चाहता हूँ? किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं मिलता था।

मैं हरेक पहलू से मन को वच्चे की भाँति समझाने का प्रयास कर रहा था। किन्तु इस मन की स्थिति भी कुछ अजीव होती है। वह वच्चे से भी अधिक हठी होती है। सर्वस्व परित्याग कर सकता है, किन्तु मन चाहे खिलौने को किसी शर्त पर भी छोड़ने के लिये वह प्रस्तुत नहीं होता।

अव मेरे मस्तिष्क में निरन्तर झरना वह रही थी, वोल रही थी, हँस रही थी, रो रही थी। कभी-कभी मैं एक प्रमत्त की भाँति पुकारने लगता—"झरना! झरना!"

इसी वीच एक दिन आया फिर मुझ से मिलने आयी तो मैं उसे देखकर चकित हो गया। वह उस दिन वहुत वन-ठन कर आयी थी। सहसा मुझे भगवान का स्मरण हो आया तो मन ही मन मैंने कह डाला —अच्छा, ये नक्शे हैं तुम्हारे! ऐसी रचना भी कर लेते हो उस्ताद! मुझे हँसी आ गयी और मैं अट्टहास करने लगा। किन्तु मेरा अट्ट-हास सुनते ही उसे रोमांच हो आया। उसमें इतना साहस नहीं था कि वह थोड़ी देर भी वहाँ ठहर सकती।

वह ज्यों ही भयभीत होकर जाने लगी, मैं गम्भीर हो उठा। उसे वुलाने के लिये आगे वढ़ा पर वह जीने की अन्तिम सीढ़ी पर

पहुँच चुकी थी। मेरे स्वर को सुनकर एक वार उसने मेरी ओर देखा भी, किन्तु उसमें इतना साहस शेष न था कि वह रुकती।

तीसरे दिन संध्या समय एक पागल की भाँति मैं महात्मा गांधी मार्ग पर घूम रहा था। एक सप्ताह से दाढ़ी नहीं बनी थी। बाल काफ़ी बढ़ आये थे। पेंट की 'क्रीज़' समाप्त हो गयी थी और कई दिनों से वह धुला भी नहीं था। उन दिनों चौबीस घंटे वही पहिने रहता था। यहाँ तक कि उसे पहिन कर सो भी जाता था।

बुशशर्ट की भी यही स्थिति थी। सिर के बालों में कई दिनों से न तेल ही पड़ा था, न दो दिन से स्नान ही किया था।

इतने में मेरी दृष्टि अचानक झरना पर जा पड़ी। वह प्रकाश के साथ रिक्शे पर बैठी कहीं जा रही थी।

मैं उसे देखते ही जोर से चिल्ला उठा—"झरना! झरना!!"

झरना और प्रकाश ने पीछे मुड़कर देखा भी, किन्तु उनका रिक्शा नहीं रुका।

झरना को देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई थी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे मेरा खोया हुआ हृदय मिल गया हो। तो अब फिर उससे मेरी भेंट होगी। अरे एक वाक्य से मैं उसे अपना बना लूँगा। वह मेरे गले में बाहें डाल देगी और मैं उसे वक्ष से लगा लूँगा। मेरी सारी कामनाएँ फिर हरी हो उठेंगी।

मैं रिक्शे के पीछे बिना कुछ सोचे-समझे चिल्लाता हुआ दौड़ रहा था—"झरना! मेरी झरना!"

रिक्शा अपनी गति से आगे बढ़ा रहा था। थोड़ी देर दौड़ जाने के पश्चात् रिक्शा चौराहे पर लाल रोशनी का संकेत पाकर एकाएक रुक गया।

इसी बीच मैं झरना के समीप जा पहुँचा। अभी मैं हाँफ ही रहा था कि उसने भृकुटियाँ चढ़ाते हुए कहा—"इस तरह चिल्लाते हुए आपको शर्म नहीं आती?"

मैं हँस पड़ा। बोला—"झरना जब शर्म उन्हें नहीं आती जो अपने पति को त्याग कर दूसरे के साथ घूमती हैं, तो मुझे किस बात

की शर्म ? मैं किसी दूसरे की बीवी को नहीं, अपनी पत्नी को ही पुकार रहा हूँ।

उसने उत्तर में कहा—"इसका यह अर्थ तो नहीं कि अगर मैं आपकी पत्नी हूँ तो आप सड़क पर सहर्ष मेरी बेइज्जती करेंगे।"

"नहीं झरना मैं तुम्हारी बेइज्जती कैसे कर सकता हूँ। तुम तो मेरी झरोखे की रानी हो।" इस कथन के पश्चात् मैंने झरना के हाथ को पकड़ते हुए कहा—"आओ मेरे साथ चलो।"

"कैसी असभ्यता कर रहे हैं आप ?" इतना कह कर झरना ने मेरा हाथ अपने हाथ से हटा दिया।

उसके इस कथन पर मैं पुनः ठहाका मार कर हँस पड़ा। और बोला—असभ्यता ! अनेक दृष्टियाँ कौतूहल से मेरी ओर देखने लगीं।

मैंने कहा—"असभ्यता ! झरना और असभ्यता ! निबन्ध का कितना सुन्दर विषय है ! सही और खरी बात कहना असभ्यता है अपनी वस्तु को लेना भी असभ्यता है। कोई मेरा घर लूट कर मुझे भिखारी बना दे, और मैं चुपचाप देखता रहूँ। यही सभ्यता की संज्ञा है, झरना ? है न ?"

प्रकाश अपराधी की भाँति मुँह घुमाये बैठा था। उसमें इतना साहस न था कि मुझ से आँख मिलाता।

इतने में चौराहे की हरी बत्ती जल उठी। प्रकाश ने गंभीर स्वर में रिक्शे वाले से कहा—"चलो जी !"

मैंने प्रकाश के कथन पर उसके मुँह की ओर देखा। किन्तु वह मेरी ओर न देखकर सामने देख रहा था।

मैंने तभी प्रकाश से कहा—"मेरी ओर देखने में लड़कियों की भाँति शरमा क्यों रहे हैं ?"

इसके पश्चात् आवेश में आते हुए मैंने उससे कहा—"मित्रता का दम भरने वाले कमीने ! क्या तुझमें इतना भी साहस है कि मेरी ओर दृष्टि उठा कर देख भी सके !"

झरना मेरी गतिविधि को देख कर कुछ हतप्रभ हो उठी पर वह मौन थी। जान पड़ता है उसे इस बात का भय उत्पन्न हो गया कि उसने जो कुछ किया है, वह समाज की दृष्टि में अनुचित है। शायद वह सोच रही थी—समाज की दृष्टि में मैं एक परकीया—

कुलटा ही कहलाऊँगी।

इतने में प्रकाश बोल उठा—"देखिए मिस्टर दीपक ! अभी आपका यह सब पागलपन मिनटों में दूर हो जायगा। आप मुझे अभी जानते नहीं हैं।

मेरा उत्तर था—"अब मैं तुझे अच्छी तरह जान गया हूँ कमीने तू तुझे पुलिस के सिपाहियो की धमकी देना चाहता है। बुला, किसको बुलाना चाहता है !"

प्रकाश ने रिक्शे वाले से कहा—"अबे गधे। चलता क्यों नहीं ?"

जान पड़ा. रिक्शे वाला किसी भले घर का व्यक्ति था। तत्काल प्रकाश को सम्बोधित करते हुए उत्तर दिया—"जबान संभालकर बात कीजिए बाबू साहब मैं आपका नौकर नहीं हूँ। और आज तो आप नौकर को भी गधा नहीं कह सकते, समझे ? हर आदमी की एक इज्ज़त होती है।

रिक्शे वाले की बात सुनकर मेरा हृदय पुलकित हो उठा। मैंने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा—"जियो, प्यारे !"

सभी रिक्शे-ताँगे, जीप, कार, ट्रक बढ़ते जा रहे थे। किन्तु झरना का रिक्शा अब भी खड़ा था और मेरा हाथ उसके हैंडिल पर था। तभी मैंने रिक्शे वाले को संबोधित करते हुए कहा—"उधर बगल में रिक्शा मोड़ लो।"

प्रकाश ने आवेश में आकर रिक्शे वाले से कहा—"एक पैसा मजदूरी नहीं दूँगा। उल्टे तुझे कोतवाली में बन्द करवा दूँगा, यदि रिक्शा तुमने ज़रा भी मोड़ा।"

चोर का दिल बहुत छोटा होता है प्रकाश ! तुममें इतना साहस कहाँ, जो तुम इस रिक्शेवाले को बन्द करवा सको। उल्टे यह तुम्हें कोतवाली पहुँचा सकता है, शायद तुम्हें इसका ज्ञान नहीं है।" मैंने उत्तर में कह दिया।

बढ़ते हुए संघर्ष को देखकर झरना अत्यन्त भयभीत हो उठी। इसी बीच रिक्शेवाले ने प्रकाश को संबोधित करते हुए कहा—"आप पैसे नहीं देंगे, तो मेरा कौन-सा रोंया टेढ़ा हो जायगा। दमड़ी की हंड़िया गयी, कुत्ते की जाति पहिचानी।"

प्रकाश रिक्शे वाले की बात सुनकर आवेश में आ गया। उसने बात ही चुभने वाली कह दी थी। मैं अत्यन्त प्रसन्न था।

इतने में रिक्शे वाले ने रिक्शा बायीं ओर मोड़ कर एक किनारे खड़ा कर दिया। प्रकाश की ओर संकेत करते हुए कहा—"ठीक है बाबू जी, मत दीजिए, जाइए। मुझे नहीं जाना है।"

रिक्शे वाले का स्वाभिमान देखकर हँस पड़ा। प्रकाश खिसिया कर रह गया।

अब उसको संबोधित करते हुए मैंने कहा—"बुलाओ पुलिस वालों को, देखता हूँ आज तुम्हारी शक्ति।"

प्रकाश बड़ी फुर्ती से कूदकर रिक्शे के नीचे आ गया। बोला—"दीपक अभी तुम मुझे नहीं जानते।"

मेरा उत्तर था—"तुम जैसे नीच को न जानना ही अच्छा है।"

जरा होश सँभाल कर बात करो दीपक! वरना मैं तुम्हारा यह पागलपन मिनटों में दुरस्त करवा दूँगा।"

"अपराधी भीतर से कितना कायर होता है प्रकाश! कभी सोचा है? इतना कह कर मैं पहले हँसने लगा, फिर गंभीर हो गया। और उसी आवेश में मैंने प्रकाश के मुँह पर थूक दिया। उसका मुँह थूक के छीटों से इतना भर गया कि रूमाल से मुँह पोंछता हुआ वह मेरी ओर आने लगा। तभी झरना मेरे निकट आ गयी। जान पड़ा, उसने स्थिति की गम्भीरता को भाँप लिया है। एक किनारे ले जाकर बोली—"दीपक, क्या—तुम मुझे प्यार नहीं करते?"

क्षण भर अपलक मैं झरना की आँखों की कोरों को देखता रहा और बोला—मैं तुम्हें पागल की तरह प्यार करता हूँ। किन्तु तुम······।"

इतना कह कर मैं पुनः झरना को एकटक देखता रहा। अब भी उसके अधर उसी भाँति गुलाब के दल से प्रतीत होते थे, अब भी उसका वक्ष प्रान्त समुन्नत था। अब भी उसके कानों की झुमकियाँ हिल रही थीं।

झरना मन्द स्वर में बोली—"दीपक, प्रेम में किन्तु परन्तु नहीं होता, आओ चलो।"

झरना मुझे साथ लेकर कचहरी जाने वाले मार्ग पर चल पड़ी। तमाशबीनों की भीड़ छटने लगी। अब प्रकाश का कहीं पता न था।

कुछ दूर चलने के पश्चात् मुझे रिक्शे वाले का स्मरण हो

आया। फटी कमीज पहिने उस निर्धन व्यक्ति की आँखें जैसे मुझे निहार रही थीं। तभी मैंने झरना से कहा—तुम यहीं रुको मैं उस रिक्शे वाले को पैसे दे आऊँ। वह वेचारा भी क्या सोचता होगा!"

रिक्शे वाला अब भी वहीं खड़ा था। मैंने उसके निकट जाकर पूछा—"कितने पैसे हुए?"

"वावू जी, आपसे क्या पैसे लूँ।" रिक्शे वाले ने विनम्र स्वर में कहा।

"नहीं, नहीं, मैं यह बात नहीं मानता। हरेक व्यक्ति को, चाहे वह किसी वर्ग का क्यों न हो, मजदूरी अवश्य मिलनी चाहिये।

"ठीक है बावू जी, आप जाइए।" रिक्शे वाले ने उत्तर दिया "आप जैसे आदमियों की शराफ़त पैसे से नहीं तोली जा सकती। मैं इतना और कहीं कमा लूँगा।"

"नहीं, नहीं यह नहीं हो सकता।"

इतना कह कर मैंने पेंट की जेब से एक रुपया निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—यह लो, जाओ।"

रिक्शे वाले की बत्तीसी चमक उठी। युगलकर जोड़ता हुआ वोला—"नहीं बावू जी।"

तब मैंने ज़वरदस्ती उसके हाथ में नोट थमाते हुए कहा—"ले जाओ, सोच-विचार मत करो।"

जिस समय मैं उस स्थान पर पहुँचा, जहाँ झरना को छोड़ आया था, देखा, वह वहाँ नहीं थी। मुझे अपने ऊपर कुछ झुंझलाहट हुई। किन्तु इससे अधिक क्रोध मुझे झरना पर हो आया। मन-ही-मन मैंने कहा—"यदि वह मेरे साथ नहीं रहना चाहती, तो स्पष्ट क्यों नहीं कहती? अब मैं उसके मार्ग में अवरोध नहीं बनूँगा। किन्तु उसके पूर्व कि वह मुझसे दूर हो जाय मैं यह अवश्य जानना चाहूँगा कि आखिर मुझ में कमी क्या है। प्रकाश में ऐसी क्या विशेषता है, जो मुझ में नहीं है? केवल यही न, कि अर्थ की दृष्टि से मैं उससे दुर्वल हूँ! किन्तु प्रेम का माध्यम अर्थ नहीं हो सकता!

झरना भूल कर रही है।

लगभग आध घंटे तक खड़े-खड़े इसी चिंतन में लीन बना रहा। अन्त में इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि सचमुच नारी एक प्रवंचना है। वह इतनी रहस्यमयी होती है कि तन देकर भी मन नहीं देती। दे-दे कर छीन लेती है। पूर्णरूप से मने झरना को सुविधाएँ देने की यथाशक्ति चेष्टा की, फिर भी वह मेरी न हो सकी। मृगतृष्णा के पीछे मैं भागता फिरा, किन्तु सब व्यर्थ हो गया।

झरना के प्रति मेरे मन में जो एक वितृष्णा थी, उसके रूप में अब एक विपर्यय आ गया है। उसे मैं घृणा संज्ञा तो नहीं दूँगा, किन्तु कभी-कभी बोध होता है उसके प्रति मेरे मन में अब विशेष लगाव भी नहीं रह गया था। अगर हृदय के किसी एकान्त कोने में 'कहीं' पड़ा भी हो, तो अब उसको निकाल देना है।

मैंने कार्यालय से एक सप्ताह का अवकाश ले लिया था। दिन भर या तो घर में पड़ा रहता, शराब पीता या पागलों की भाँति सड़कों पर घूमता-फिरता। जीवन के प्रति जैसे कोई आकर्षण नहीं रह गया था। लगता था—हम जी के क्या करेंगे जब दिल ही टूट गया।

फिर एक दिन इसी बीच घूमते-घूमते ससुराल भी चला गया था। वहीं मुझे पता चला कि झरना अब एस० जी० गर्ल्स कालेज के होस्टल में रहती है। वहाँ उसे पढ़ने में सुविधा मिल गयी है।

उसका पता लग जाने से मुझे कुछ प्रसन्नता हुई। मैं सोचने लगा—तो अब मुझे जीना पड़ेगा। मुझे जाहे जो हो जाय, पर झरना कभी कष्ट में न पड़े। मुन्ना को उस दिन की बात भी सत्य निकली कि बुआ बाक्स लेकर घर गयीं।

मुन्ना को क्या पता था कि उसकी बुआ घर जा रही है, या किसी 'होस्टल' की शोभा बढ़ा रही है।

एक दिन अचानक मैं एस० जी० गर्ल्स कालेज के होस्टल लगभग आठ बजे रात्रि को जा पहुँचा। बड़ी परेशानियों के पश्चात् म होस्टल सुपरिंटेंडेन्ट से मिल सका। उनसे मैंने कहा, मैं झरना से मिलना चाहता हूँ, वह मेरी पत्नी है।

हास्टल सुपरिंटेंडेन्ट मिसेज वोहरा ने पहले मुझे ऊपर से नीचे तक कई बार देखा। यद्यपि मैं उनके इस देखने का अभिप्राय समझ

गया था किन्तु था तो मैं झरना का पति ही, भले ही मेरे वस्त्र ठीक-ठाक नहीं थे, दाढ़ी के बाल भी बढ़े हुए थे।

मिसेज़ बोहरा ने एक चपरासी को आदेश दिया कि वह झरना से जाकर कह दे कि उनके घर से एक सज्जन मिलने आये हैं।

मैं लगभग दस-बारह मिनट तक खड़े-खड़े झरना की प्रतीक्षा करता रहा। मिसेज़ बोहरा की सभ्यता ने यह भी उचित नहीं समझा कि मुझे बैठने के लिये कह देती! जबकि आठ-दस कुर्सियाँ वहाँ खाली पड़ी थीं।

मेरे मन में इन बातों की भी घोर प्रतिक्रिया हुई। मन-ही-मन मैंने कहा—"मनुष्य की मर्यादा का मापदण्ड मात्र वस्त्र और फ़ैशन रह गया है।"

तत्काल मेरे मन में मिसेज़ बोहरा के प्रति घृणा का उद्भव हो उठा। किन्तु वहाँ मैं उनसे कह ही क्या सकता था।

इतने में झरना प्रातः कालीन कली-सी खिली आती हुई दिखायी दी। उसकी रूप गरिमा पहले की अपेक्षा अधिक निखरी हुई थी। उसे देख कर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे उसकी आयु बढ़ने की अपेक्षा कुछ घट गयी है। वह उस समय अठारह वर्ष से अधिक नहीं दिखायी दे रही थी। एक बार जी में आया, दौड़ कर उसे कंठ से लगा लूँ। इस लालसा से मैंने इधर-उधर देखा भी, किन्तु आज सोचता हूँ; उस समय मेरे मन में लेश-मात्र भी साहस नहीं रह गया था। जैसे वह मेरी नहीं परायी हो।

उसी समय मैंने देखा, झरना मुझे देखते ही उदास हो गयी थी।

कुछ देर तक वह मेरे सम्मुख मौन खड़ी रही। मैं उसकी परेशानी का कारण समझ रहा था। तभी मैंने मौन भंग करते हुए उससे प्रश्न किया—"अच्छी तो हो झरना?"

"हाँ ठीक हूँ!" उसने मन्द स्वर में निर्जीव सा संक्षिप्त उत्तर दे दिया था।

क्षण भर में मैं समझ गया, झरना की आन्तरिक इच्छा थी कि मैं वहां से शीघ्र चला जाऊँ! किन्तु मेरी इच्छा ठीक उसके विपरीत थी।

तभी मैंने उससे कहा—"झरना!"

और बस इतना कहते-कहते मेरी आँखें भर आयी थीं।

झरना तत्काल बोल उठी—"देखिए, यह लड़कियों का होस्टल है। यहाँ नाटक मत कीजिए।"

झरना की बात सुनते ही मेरी तंद्रा भंग हो गयी।

अधमरे जीव-सा तड़प कर मैं रह गया। मन आक्रोश से भर गया। मैंने तत्काल कहा—"झरना, नाटक मैंने नहीं, तुमने किया। उसकी कथा अब चरमबिन्दु पर पहुँच गयी है। लेकिन क्या करूँ मन नहीं मानता? सोचता हूँ, नाटक का अन्त भी देख लूँ।" पेंट की जेब से रूमाल निकाल कर मैंने आँखें पोंछ डालीं और कहा—"मैं तुम्हारी परेशानी समझ रहा हूँ। शायद तुम्हें अब मुझे अपना पति कहने में भी संकोच हो रहा होगा! ठीक है न? अच्छा, तुम विश्वास करो अब, भविष्य में मैं यहाँ कभी न आऊँगा। किन्तु एक प्रार्थना है, मानोगी?"

"देखिए, जो कुछ आप कहना चाहते हैं, जल्दी कहिए। कल मेरा पेपर है।" झरना ने रूखे स्वर में कहा।

'झरना! अब मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम सुखी रहो, यही मेरी आन्तरिक अभिलाषा है। मुझे यह भी पता चला है कि तुम्हारी पहुँच बहुत बड़े-बड़े लोगों तक हो गयी है। और ठीक भी है। जीवन प्रगति की दूसरी संज्ञा है"

मैंने देखा, मेरे इस कथन पर झरना का चेहरा उतर गया।

तभी मैंने उससे कहा—"प्रार्थना मेरी अपनी नहीं है। वह एक असहाय नारी के लिये है। जिस 'आया' को तुमने अपने स्कूल से निकाल दिया है, उसकी कोई गलती नहीं है। वास्तव में दोषी मैं हूं। मैंने ही उसे प्रलोभन दिया था। बहुतेरे प्रलोभन बड़े मधुर होते हैं। उनकी सिद्धि की आशा में अधिकांश लोग बह जाते हैं। वह भी बह गयी है। किन्तु अब उसे खाने के लाले पड़ गये हैं। क्या तुम उसे पुनः अपने यहाँ नहीं रखवा सकतीं?"

झरना मेरे कथन को सुनकर तिलमिला उठी। बोली—"नहीं कभी नहीं, जो नारी, दूसरी नारी की जड़ खोदती है, वह कभी सहानुभूति की पात्र नहीं हो सकती। मैं ऐसी स्त्री का मुँह भी नहीं देखना चाहती!"

"झरना!" कहते-कहते पुनः मेरी आँखें भर आयीं। फिर भी

मैंने कहा—"क्या मैं अब इस योग्य भी नहीं रह गया कि तुम्हारी सहानुभूति पा सकूँ ? यह सहानुभूति, दया उस नारी के प्रति नहीं, मेरे प्रति होगी। क्या तुम इतनी भी भीख मुझे नहीं दे सकती ? मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहता। केवल उस नारी की जीविका की भिक्षा माँग चाहता हूँ। झरना, क्या मैं निराश होकर लौट जाऊँ ?"

"मुझे जो कुछ कहना था, कह दिया। मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकती। स्कूल मेरा नहीं, प्रकाश जी का है। मैं तो वहाँ अध्यापिका मात्र हूँ।"

"झरना ! अब मेरे पास ऐसा कुछ शेष नहीं है, जिसे तुम प्रवंचित कर सको।

"अच्छा, अच्छा ! अब आप जाइए, मुझे देर हो रही है।"

झरना इतना कह कर तीव्रगति से होस्टल की ओर चली गयी। मैं उसे अवाक् देखता रह गया।

मैं थका-थका सा उदास होस्टल के बाहर आया। सम्पूर्ण वातावरण एक गहरी खामोशी में डूबा हुआ था। सड़क के किनारे जलती हुई वत्तियाँ टिमटिमा रही थीं। एस० जी० कालेज से मेरा घर पाँच मील दूर पड़ता था। पैदल चलने की मुझमें शक्ति न थी। फिर भी यह सोचकर कि शायद कुछ दूर चलने पर रिक्शा मिल जाय, मैं चल पड़ा।

शीश झुकाये सोचता चला आ रहा था कि झरना ने मेरे साथ कितना विश्वासघात किया ! जिस पक्षी को पाल-पोस कर बड़ा किया, वही उड़ कर मुझसे दूर हो गया। इससे भी अधिक पीड़ा मेरे मन में उस 'आया' की थी। मेरे ही कारण उस बेचारी की नौकरी छूट गयी थी। उसे अब कहाँ नौकरी मिलेगी ? तीन प्राणियों का खर्च वह कैसे चलायेगी !

इतने में रिक्शे वाले की घंटी बज उठी तो मैं चौंक गया। एक रिक्शा मेरे समीप से होकर निकल गया। रिक्शे वाला तो कुछ नहीं बोला, किन्तु जो सवारी उस पर बैठी थी, उसका स्वर मेरे कर्ण-रन्ध्रों में गूँज उठा—"साले अन्धे होकर चलते हैं। जैसे इनके बाप की सड़क है।"

स्वर कुछ परिचित-सा लगा। मुड़ कर मैंने पीछे देखा, किन्तु अंधेरा होने के कारण आकृति अधिक स्पष्ट न जान पड़ी। फिर भी

प्रकाश के होने का मुझे संदेह हो उठा।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे प्रकाश झरना के यहाँ जा रहा है। मैं वहीं खड़ा हो गया। मेरी दृष्टि रिक्शे का पीछा कर रही थी। मैंने देखा, रिक्शा दाहिनी ओर मुड़ गया है। उस समय मुझे निश्चित हो गया कि वह प्रकाश है और झरना से मिलने जा रहा है।

तत्काल मस्तिष्क पर आक्रोश के बोझ को लादे हुए मैं लौट पड़ा। मन-ही-मन मैंने सोचा—"जो कुछ होगा, देखा जायगा।"

जिन पाँवों में इसके पूर्व चलने की शक्ति न थी, उनमें न जाने कहाँ से अचानक इतनी शक्ति आ गयी। होस्टल से सौ क़दम की दूरी पर एक पेड़ के नीचे मैं जाकर खड़ा हो गया। वहाँ पास ही एक खड़ा हुआ रिक्शा दिखायी दे रहा था और रिक्शेवाला बीड़ी जला रहा था। अँधेरे में जिसकी चिनगारी कुछ चमकती सी तान पड़ती थी।

इतने में चपरासी ने फाटक खोल दिया। एक स्त्री और पुरुष बाहर निकले। ये दोनों और कोई नहीं, प्रकाश और झरना थे। प्रकाश रिक्शे के निकट आ गया था, किन्तु झरना चपरासी से कुछ कहने लगी। वह क्या कह रही थी, यह सुनायी नहीं पड़ता था।

किन्तु मेरा अनुमान था कि वह चपरासी से कह रही थी, मैं देर से लौटूँ, तो फाटक बन्द न करना।

मेरा यह अनुमान दूसरे दिन सत्य प्रमाणित हुआ जब मुझे एक मित्र से यह विदित हुआ कि यह लड़कियों का कालेज है। इसमें होस्टल भी है, जिसमें दूर-दूर की लड़कियाँ, जो विभिन्न नगरों से पढ़ने आती हैं, और जिनके रहने की कोई व्यवस्था नहीं होती, यहीं निवास करती हैं।

जो लड़कियाँ सिनेमा के दूसरे 'शो' तक रात्रि में घूम-घामकर लौटती हैं, वे चपरासी से, बिना होस्टल सुपरिंटेन्डेण्ट की जानकारी के कह जाती हैं कि वह फाटक बन्द न करे। इस अवैधानिक कार्य से चपरासियों को भी कुछ आय हो जाती है।

इतने में झरना रिक्शे पर आकर बैठ गयी। मेरा अनुमान था कि रिक्शा उसी मार्ग से लौटेगा, जिधर से गया है। अतः मैं रिक्शा पहुँचने के पूर्व मोड़ पर आ गया था।

चौराहे पर कई वृक्ष थे, जिनमें कुछ नीम और कुछ शीशम के

थे। इन वृक्षों के कारण वहाँ अँधेरा अधिक रहता था।

"जैसे ही रिक्शा मुड़ा, मैंने आवाज़ दी—" ए रिक्शा जरा रोको!"

रिक्शा तो रुका नहीं, किन्तु उसकी गति मन्द पड़ गयी। तभी लपक कर मैंने उसका हैंडिल पकड़ लिया। प्रकाश और झरना दोनों कुछ भयभीत हो उठे।

इतने में झरना चिल्ला उठी—"चोर! चोर!!"

मैंने निर्भीकता से उत्तर में कहा—"झरना मैं चोर नहीं हूँ। चोर तो तुम्हारे संग बैठा है।"

प्रकाश तत्काल नीचे उतर आया और अकड़ता हुआ बोला—क्या बात करते हो जी?"

"तुम्हारी यह बन्दरघुड़की मेरे लिये व्यर्थ है प्रकाश! अभी तुम किसी मर्द के पाले नहीं पड़े। वरना वह तुम्हारा कचूमर निकाल देता।" इसके पश्चात् झरना की ओर उन्मुख होता हुआ आवेश के साथ मैं बोला—"क्यों अब कल तुम्हारा पेपर नहीं है!"

इतने में प्रकाश ने मेरे सिर पर दो-तीन जूते जड़ दिये। मैं भौचक्का रह गया। जो कुछ नाटक हुआ, उसे तो मैं संभाव्य मानता था, किन्तु प्रकाश से मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

जूते की कोई कील शीश में चुभ गयी थी, जिससे रुधिर की धारा बहने लगी थी।

खून देखते ही मेरा क्रोध दूना हो गया। तत्काल मैं प्रकाश की ओर जा लपका। प्रकाश था तो नाटा ही, किन्तु उसका बदन गठा हुआ था। दोनों में काफ़ी देर तक गुथ्थम-गुथ्थी होती रही।

अन्ततोगत्वा, वह नीचे आ गया और मैं उसके वक्ष पर जा बैठा। अब दोनों हाथों से उसकी ग्रीवा को कसकर दबोचते हुए मैंने कहा—"बोल कमीने अब बोल—तेरे प्राण ले लूँ? अब तेरी समझ में आया, मैं क्या हूँ? बुला, जिसको बुलाना चाहता हो!"

इतने में जब दृष्टि घुमा कर मैंने पीछे देखा, तो झरना वहाँ नहीं थी। तभी मैंने प्रकाश से कहा—"देख अपनी आँखों से प्रेम की सच्चाई!"

प्रकाश नीचे पड़ा हुआ था, गिड़गिड़ाता हुआ बोला—"भाई साहब, मर जाऊँगा। अब तो छोड़ दीजिए। मैं आपसे दया की

भीख माँगता हूँ।"

मैं तुम्हें प्राणों की भीख देने को तैयार हूँ, किन्तु एक शर्त है! बोल स्वीकार है?"

"स्वीकार है भाई साहब।

"पक्का वायदा करो तभी मैं तुम्हें छोड़ सकता हूँ।"

"भाई साहब, मैं आपको वचन देता हूँ जो कुछ आप कहेंगे, मुझे स्वीकार होगा।"

"वचन देते हो?"

"हाँ, भाई साहब।"

तभी मैंने प्रकाश की ग्रीवा को छोड़ते हुए कहा—"देखो, मैं तुमसे और कुछ नहीं चाहता। झरना यदि तुमसे सम्बन्ध रखना चाहती है, तो रखे, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यह स्त्री-पुरुष के मन का सौदा है। ब्याह होने का यह अर्थ मैं नहीं मानता कि पत्नी कोई ऐसी संपत्ति बन जाती है पति का जिस पर आजीवन आधिपत्य रहता है।

"मुझे केवल तुमसे एक बात कहनी है, जिसके लिए तुम प्रतिबद्ध हो जिस 'आया' को तुमने अपने यहाँ से पृथक् कर दिया है, उसे पुनः नौकरी पर रख लेना होगा। बोलो, वचन देते हो?"

"हाँ।"

"तो जाओ, मुझे अब तुम से कुछ नहीं कहना है।" इसके पश्चात् मैं उसके वक्ष पर से उतर आया।

प्रकाश उठ कर खड़ा हो गया। तभी मैंने बढ़कर उसे वक्ष से लगाते हुए कहा—"प्रकाश! तुम्हें कोई गहरी चोट तो नहीं आयी?"

इतना कहते-कहते मेरी आँखें आँसुओं से भीग गयीं। मेरे सिर में जो चोट लगी थी उसमें अब तक दर्द हो रहा था।

किन्तु प्रकाश कुछ नहीं बोला।

भुजपाश से प्रकाश को मुक्त करते हुए मैंने कहा—"झरना से यदि तुम पुनः मिलना चाहते हो, तो जाओ, मिल आओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है।"

कभी मुसकरा अवश्य देता था, किन्तु वे उसका आशय नहीं समझ पाते थे।

यही मेरा छोटा-सा संसार था, जिसमें मैं जी रहा था। इसे अधिक विस्तृत करने की चाह भी मुझमें नहीं थी। बल्कि चाहता तो यह था कि यदि इससे भी अधिक लघु मेरा संसार हो जाता तो अधिक अच्छा था। अब व्यक्ति ही मेरा समाज बन गया था।

हाँ, एक प्रकृति मेरी ओर थी। जिसका जन्म झरना के जाने के पश्चात् हुआ था। भ्रम हो सकता है, किन्तु झरना के अभाव में मैंने उसे अपना जीवन साथी बना लिया था। इसके अतिरिक्त इस संसार में मरा अपना कोई नहीं था। वह थी मदिरा।

दिन तो कार्यालय में किसी भाँति गुज़र ही जाता, किन्तु पहाड़-सी रात कमबख्त काटें नहीं कटती थी। इसके पूर्व मैंने सुना था कि शराब पीने से चिन्ता ग्रस्त मनुष्य को कुछ राहत मिलती है। उसका ग़म कुछ हल्का हो जाता है। पहले मैं इस तरह की बातों पर हँसा करता था, पर अब ऐसे प्रयोग एक अवलम्ब बन गये थे।

मेरे कार्यालय में कुछ लिपिक ऐसे भी थे, जो इसका सेवन करते थे। और एक समय वह भी था, मुझे अच्छी तरह स्मरण है, जब मैं ऐसे लोगों को हेयदृष्टि से देखता था।

लेकिन एक दिन मैंने अपने एक मित्र से कहा—यार आज मैं भी पीना चाहता हूँ। उसने अत्यंत प्रसन्नता से अपने घर पर मुझे आमंत्रित किया।

उसका नाम था रोशन लाल। वह पंजाबी था। शरीर से बड़ा हृष्ट-पुष्ट। आधा दर्जन कच्चे अंडे फोड़ कर वह पी जाता था।

पहले दिन जब मैंने उसके साथ पी, तो मन कड़ुवाहट से भर गया। मैंने रोशन लाल से कहा भी यार तुम इसे कैसे पी लेते हो?

उसने उत्तर में कह दिया था—"तुम कभी पीते नहीं हो न, इसीलिये ये तुम्हें कड़ुवी मालूम हो रही है।"

उसने मेरे लिये अपनी पत्नी से कह कर गोश्त भी बनवाया था, किन्तु मैंने उसे खाने से इनकार कर दिया।

उस दिन मैंने कितनी पी, इसका मुझे क़तई ज्ञान न था। किन्तु भोजन मैंने उस दिन बड़ी रुचि से किया था। शायद रोज की अपेक्षा उस दिन कुछ अधिक ही खा गया था। भोजन करने के पश्चात् उस

दिन रोशनलाल जी के यहाँ ही मैं सो भी गया था।

दूसरे दिन प्रातः काल रोशनलाल ने मुझे जगाया, तब मैं उठा। जबकि इसके पूर्व मेरी यह प्रकृति थी कि प्रातःकाल पाँच बजते ही जग जाता था। उस दिन मुझे बड़ी गहरी और अच्छी नींद आयी थी। झरना के जाने के पश्चात् ऐसी नींद मुझे कभी नहीं आयी थी। यही मेरे लिये एक विशेष आशा की बात थी। क्योंकि लोगों से सुना था कि पागलों को नींद नहीं आती। ऐसी परिस्थिति में कभी-कभी मेरे मन में एक भय समा जाता था कि कहीं मैं पागल तो न हो जाऊँ।

रोशनलाल ने मुझे यह भी बताया कि तुम झरना के विषय में ऐसी-ऐसी बातें कर रहे थे, जो तुमने मुझसे कभी नहीं कही।

उत्तर में मैंने रोशनलाल से इतना ही उस समय कह दिया था कि मित्र मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है।

फिर भी मन में एक जिज्ञासा ने जन्म ले लिया। रोशनलाल से मैंने कहा—"क्यों, मैं झरना के विषय में क्या कुछ कहा था ?"

रोशनलाल बोला—"मेरी श्रीमती जी उस पर बड़ी क्रुद्ध हैं।"

"वह कहाँ थीं ?" मैंने उसे प्रश्न किया।

"तुम्हें कुछ होश भी था ! वे भी यहीं बैठी हुई थीं।

यह सुन कर कि रोशनलाल की पत्नी भी उस समय बठी थी। मैंने बड़ी लज्जा का अनुभव किया। मैंने तत्काल उससे प्रश्न किया —"वह क्या कह रही थीं ?"

उत्तर में उसने कहा—"तुम्हारे विषय में कुछ नहीं कह रही थी। हाँ, झरना पर जरूर बिगड़ रही थीं।"

"क्या कहा था उन्होंने ?"

"यही कह रही थीं कि कैसी बदचलन है, जो अपने आदमी को छोड़ कर दूसरे के साथ चली गयी।"

ये वाक्य सुन कर मुझे बेहद पीड़ा हुई थी। खाना उस दिन मैंने खाया, यहाँ तक कि चाय भी नहीं ली। झरना चली गयी; ठीक है, किन्तु जाने क्यों, उसके सम्मान के प्रतिकूल मैं एक शब्द भी किसी से सुनना नहीं चाहता था।

इससे अधिक ग्लानि मुझे अपने आप पर हुई थी, जो नशे की

स्थिति में मैंने उसके सम्बन्ध में कुछ कह दिया था।

तभी मैंने रोशनलाल से कहा—अच्छा, झरना के लिये मैंने भला क्या कहा था ?"

"कोई विशेष बात नहीं थी।" उत्तर में रोशनलाल ने कहा—"तुम्हारे मन में उनके प्रति जो एक क्षोभ और कसक है, वही निकल आयी थी।"

"फिर भी क्या कहा था ?"

"यही कि मैं उसे बेहद प्यार करता था, किन्तु वह कितनी मक्कार निकली !"

यद्यपि इस कथन में कोई विशेष बात नहीं थी, फिर भी मुझे स्वयं पर अत्यंत ग्लानि हुई। अग्नि को साक्षी बना कर जिसे अपना एक अंग स्वीकार किया था, उसी को उघारने में मुझे संकोच नहीं आया ?

सोचता हूं कुछ भी हो, भली थी या बुरी, थी तो मेरी ही।

और उस दिन मन-ही-मन मैंने निश्चय किया कि झरना के सम्बन्ध में भविष्य में कभी कोई चर्चा नहीं करूँगा। मन का भेद किसी को क्यों दूँ। जब कोई मेरी व्यथा का भागीदार नहीं बन सकता।

रहिमन निजमन की बिथा मन ही राखो गोय—।

तेरह

एक-एक दिन मिल कर उन्नीस वर्ष के रूप में बीत गये। इस बीच धरती पर देश में, समाज में न जाने कितने परिवर्तन हुए, किन्तु मुझमें कोई विपर्यय नही हुआ। अब मैं मात्र व्यक्ति रह गया हूँ।

किन्तु आज भी झरना को मै सर्वथा भूल नहीं पाया हूँ। कभी-कभी अचानक नीले व्योम में विद्युत कौंध जाती है। प्रकाश से अन्तःप्रांत आलोकित हो उठता है। पलकें भीग जाती हैं। सारा जीवन रस आँसू बन कर टपकने लगता है।

ऐसा क्यों है, यह तथ्य समझ में नहीं आता।

झरना मुझसे दूर-बहुत दूर जाने कहाँ रहती है, मैं इतना भी नहीं जानता हूं। किन्तु उसकी याद आज भी मुझे क्यों सताती है? जब इस पर विचार करता हूं, तो कुछ भी समझ में नहीं आता! किसी की याद हमें क्यों आती है? और ऐसी स्थिति में जब उसने अपना संबंध पूर्णतः विच्छेद कर लिया हो, उसका हमारा कोई नाता न रह गया हो।

इस विषय पर मैं उन्नीस वर्षों से निरंतर सोचता चला आ रहा हूँ। कभी उस स्मरण को मोह की संज्ञा देता हूँ, और कभी उसी को सही मानी में प्यार स्वीकार करता हूं। क्योंकि स्वार्थवश तो सभी प्रेम करते हैं, किन्तु जिस पावन प्रेम की चर्चा प्रायः दृष्टान्त रूप में की जाती है, मेरे विचार से वह प्रेम यही है, जब हमारा आपके साथ स्वार्थ का सम्बन्ध न रह गया हो, तब भी हम आपको विस्मरण न कर पायें।

हो सकता है, झरना मुझे भूल गयी हो, किन्तु मैं अभी तक न उसे विस्मरण कर पाया हूँ और न कर पाऊँगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

इस अवधि में आर्थिक दृष्टि से मैंने उन्नति भी की है। अब मैं उसी कार्यालय में आफ़िस सुपरिंटेंन्डेंट हूँ। मेरे अधीनस्थ लगभग पचीस लिपिक कार्य करते हैं। किन्तु मुझे सब निस्सार-सा लगता है। कभी-कभी मन में यह भावना भी जन्म लेती है कि काश झरना मेरे साथ होती और देखती कि मैंने कितनी उन्नति की है तो वह कितनी सुखी होती! अब तो मैंने एम० ए० भी उत्तीर्ण कर लिया है। किन्तु वास्तविकता यह है कि मेरी निजी स्थिति में इससे कोई विशेष अन्तर नहीं आया।

फिर एक दिन आफ़िस में सुपरिंटेंन्डेंट हो जाने के पश्चात् मेरे कार्यालय में एक टाइपिस्ट का स्थान रिक्त हुआ। सैकड़ों अभ्यार्थी प्रार्थना-पत्र लिये घर का चक्कर काटते थे। कितनों ने सिफ़ारिशें लगायीं। कितनों ने घूस देने का प्रलोभन दिया, किन्तु मेरे लिये सब व्यर्थ था। अब मुझे किसी से क्या लेना-देना है!

हाँ, मैंने उस समय यह अवश्य अनुभव किया कि मैं लोगों की दृष्टि में अब एक बड़ा आदमी बन गया हूँ। किन्तु यह बड़प्पन उस व्यक्ति की दृष्टि में किस काम का है, जो समाज से नितान्त कटा

हुआ हो और एक कूप-मंडूक की भाँति जीवन-यापन करता हो।

तेईस जून को 'इण्टरव्यू' था। एक स्थान के लिये लगभग सौ व्यक्तियों ने प्रार्थना-पत्र प्रेषित किया था।

हमारे यहाँ एक नये आफ़िसर आये थे, जिनका नाम मिस्टर पुरी था। वही नियुक्ति के मुख्याधिकारी थे, किन्तु उन्होंने मुझे भी सहायता के लिये बैठा लिया था।

उस इण्टरव्यू में लगभग दस लड़कियाँ भी आयी थीं। पुरी साहब एक पंजाबी लड़की में बिशेष रुचि रखते थे। जो मात्र मैट्रिक उत्तीर्ण थी,

जिस समय वे लंच के लिए जाने लगे, बोले—"देखिए मिस्टर वर्मा हो सकता है, लंच के पश्चात् मैं न आ सकूँ। आप इन्टरव्यू ले लीजिएगा। लेकिन मैं चाहता हूँ कि सुन्दर कौर को रख लिया जाय। उसका पिता मेरे यहाँ कई बार आया था।"

इतना कह कर वे चले गये।

मुझे क्या आपत्ति हो सकती थी? पुरी साहब आफ़िसर थे।

इन्टरव्यू लगभग तीन बजे समाप्त हो गया। नियुक्ति भी प्रायः सुन्दर कौर की निश्चित हो गयी। नियुक्तिपत्र मात्र उसे देना रह गया था। यद्यपि उसे भी मैंने टंकित कर दिया था, किन्तु पुरी साहब के हस्ताक्षर के लिये रुका हुआ था।

अन्य अभ्यार्थी निराश होकर लौट गये।

रात्रि में लगभग आठ बजे मुझसे एक लड़की मिलने आयी। उस समय मदिरा की बोतल और गिलास मेरी मेज पर थे। मैंने उसे देखते ही बोतल मेज के नीचे रख दी। किन्तु मेरा अनुमान था कि उसने सब कुछ देख लिया है।

इसके पूर्व वह इन्टरव्यू में भी मुझे मिली थी। उसने बड़ी विनम्रता से नमस्कार किया था।

तत्काल मैंने उससे प्रश्न किया—"कहिए, कैसे आयीं?"

मेरे स्वर में एक रूखापन था।

लड़की कुछ घबरायी हुई-सी थी। बोली—"आप ही से मिलने आयी थी।"

"देखिए, नियुक्ति के सम्बन्ध में मैं कुछ नहीं कर सकता। जो होना था, हो गया।"

इसी बीच लड़की की आँखों से दो आँसू चू पड़े।

मैं इस त्रिया-चरित्र को एक लम्बे अरसे से देखता चला आ रहा था। नारी का सबसे बड़ा संबल उसका आँसू है। अतः मैंने उससे कह दिया—"आप जाइए, मैं अब कुछ नहीं कर सकता।"

लड़की ने कहा—"साहब, मेरी माँ कई वर्षों से बीमार है, मेरा इस संसार में और कोई नहीं है। आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि…।"

इस कथन के पश्चात् उसने हैंड बैग से एक पत्र निकाल कर मेरी ओर बढ़ा दिया।

सर्व प्रथम मेरी दृष्टि लेखक पर गयी, क्योंकि मेरा इस संसार में अब अपना कौन था, जो मुझे पत्र लिखता।

किन्तु हस्ताक्षर देखते ही मैं अचानक चौंक पड़ा। ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे बिजली करेंट छू गया हो। तत्काल उस लड़की पर, जो अब तक भयभीत हरिणी सी मेरे सम्मुख खड़ी थी, मैंने दृष्टि डाली। उसे सिर से पाँव तक एक नहीं, कई बार देखा। वह लगभग उन्नीस बीस वर्ष की युवती थी।

इसी बीच मैंने कुर्सी की ओर संकेत करते हुए उससे कहा—"बैठ जाइए।"

लड़की संकोच करती हुई बैठ गयी।

मैंने पत्र को दुबारा पढ़ा।

देव स्वरूप, वर्मा जी,

नमस्कार।

सरिता को आपकी सेवा में भेज रही हूँ। आपके यहाँ टाइपिस्ट का एक स्थान खाली है। मुझे पूर्ण विश्वास एवं आशा है कि आप इस लड़की की नियुक्ति अपने कार्यालय में अवश्य कर लेंगे।

आपकी…

झरना

पत्र में सबसे बड़े आश्चर्य की बात थी कि उसे लिखा किसी ने था, हस्ताक्षर उस पर झरना का था।

तभी मैंने उस लड़की से कहा—"पत्र तो शायद किसी और का लिखा है?"

"जी हाँ, मैंने लिखा है।" लड़की ने मधुर कंठ से उत्तर दिया।

"झरना आपकी कौन हैं?" मेरा दूसरा प्रश्न था।

"माँ।"

"जी।"

क्या कहा माँ ?" आश्चर्य से मैंने कहा !

लड़की के इस उत्तर को सुन कर एक ओर जहाँ मेरे मानस में प्रसन्नता की एक लहर दौड़ गयी थी, वहीं आश्चर्य भी कम न हुआ।

मन-ही-मन मैंने कहा—"झरना की लड़की सरिता !"

अब उस लड़की को मैंने ध्यान से देखा। वास्तव में उसकी मुखाकृति झरना से मिलती थी। ठीक वैसी ही घनी भौहें, कजरारी आंखें तथा रोमन नासिका।

मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह झरना की अनुकृति है।

किन्तु मेरे मन में उस समय बार-बार एक प्रश्न उठ रहा था कि इसका पिता कौन है ? तभी मैंने सरिता से प्रश्न किया—"तुम्हारे पिता का क्या नाम है ?

अत्यंत साधारण ढंग से सरिता ने कह दिया—"श्रीयुत दीपक वर्मा।"

क्या कहा—"दीपक वर्मा ?" मैंने आश्चर्य से प्रश्न किया।

"जी हाँ।"

अपना नाम सुन कर मैं आश्चर्य-चकित रह गया। तत्काल मैंने उससे कहा—"किन्तु दीपक वर्मा के तो कोई लड़की नहीं थी।"

मेरा कथन सुन कर सरिता की आँखें प्रसन्नता से चमक उठीं। तभी उसने कहा—"क्या आप उन्हें जानते हैं ?

"जानने की ही बात नहीं है, वे मेरे अत्यन्त घनिष्ट मित्र थे। बड़े दुखी थे वेचारे। उन्नीस वर्ष पूर्व उनका देहान्त हो गया।"

"किन्तु......।" सरिता इतना कहते-कहते रुक गयी।

वह जो कुछ कहना चाहती थी, उसका आशय मैं समझ गया था। तभी मैंने कहा—"तुम्हारा ख्याल ग़लत है। वे अत्यन्त सज्जन व्यक्ति थे।

साड़ी का पल्लू कन्धे पर सरकाती हुई सरिता बोली—"आप कहते हैं सज्जन व्यक्ति थे।' जरा सोचिए, मेरी माँ के साथ उन्होंने कैसा दुर्व्यवहार किया !

पर, अब भी मैं कहता हूँ—"वे सज्जन व्यक्ति थे। तुम्हें एक ही पक्ष का ज्ञान है।"

कथन के पश्चात् मैं क्षण भर रुका। बोला—"उनकी जो तस्वीर तुम्हारे सम्मुख रखी गयी है, वह सही नहीं है। तुम्हारी माँ ने अपने बचाव के लिये ऐसा किया है। तुम्हारी माँ को उन्होंने नहीं छोड़ा था, तुम्हारी माँ स्वयं उन्हें छोड़ कर चली गयी थी, मुझे अच्छी तरह ज्ञात है। उस समय तो तुम्हारा जन्म भी नहीं हुआ था।"

सरिता की मुखाकृति गंभीर हो उठी। किन्तु उसके चेहरे की बनती-बिगड़ती रेखाओं से कुछ एसा आभास हो रहा था, जसे मेरी बातों पर उसे क़तई विश्वास नहीं है। वह अपनी माँ के संबंध में इस प्रकार का एक शब्द भी सुनना नहीं चाहती।

तत्काल बोली— 'किन्तु मेरी माँ देवी हैं। उन्होंने कितनी कठि-नाइयों से मुझे पाला-पोसा है, इसे मैं ही जानती हूँ। कितने ही पुरुषों ने उन्हें कितना अपमानित और लांछित किया है, आप कैसे जान सकते हैं।"

यह सुनकर कि झरना अपमानित और लांछित की गयी, मुझे अत्यन्त पीड़ा हुई। तभी मैंने सरिता से पूछा—"आजकल वे क्या कर रहीं हैं?"

"कुछ नहीं," इसके पश्चात् सरिता रो पडी। बोली– "वे अस्पताल में बीमार पड़ी हैं।"

झरना की बीमारी की बात सुनकर मेरे हृदय में फिर एक उद्वि-ग्नता छा गयी। मेरा मन यह सोच-सोच कर अत्यधिक व्यग्र गम्भीर और उदास हो उठा।

"क्या बीमारी है?" तत्काल मैंने प्रश्न किया।

"वो चार-पाँच वर्ष से बीमार हैं।" इतना कहते-कहते सरिता का कंठ भर आया। बोली—"टी० बी० हो गयी है।"

"टी० बी०!" आश्चर्य से मैंने कहा।

"हां, दोनों फेफड़े खराब हो गये हैं।"

कथन के पश्चात् सरिता रो पड़ी।

"रोती क्यों हो? मैंने आश्वासन देते हुए सरिता से पूछा।

किन्तु मैं स्वयं रो रहा था। अन्तर इतना ही था कि आँसुओं को मैंने आँखों में रोक रखा था।

"डाक्टर ने कह दिया है, बचने की कोई आशा नहीं है।"

सरिता ने हिचकियाँ लेते हुए कहा।

उस क्षण मेरी क्या स्थिति थी, मैं कह नहीं सकता।

मन एक आशंका से भर गया था। मेरे मन में तत्काल आया कि अभी-अभी चलकर एक बार झरना को देख क्यों न आऊँ। हो सकता है उससे फिर भेंट न हो। अन्तिम क्षण में उससे दो बातें तो कर लेता। झरना, हाय मेरी झरना!

एक अजीब सी बेचैनी मेरे मन में भर गयी थी। मैं उस क्षण कुछ सोच ही नहीं पा रहा था कि क्या करूँ? तभी मैंने सरिता से प्रश्न किया—"अस्पताल में हैं।"

"हाँ, जी।"

"जनरल वार्ड में? मैंने पूछा!

"जी।"

"बेड नं० क्या है।"

"सात!"

इस कथन के पश्चात् सरिता ने मुझ से कहा—"क्या आप उनसे परिचित हैं?

मैं घोर संकट में पड़ गया। फिर भी मैंने सरिता से उत्तर में कहा—"अभी मैंने थोड़ी देर पूर्व कहा था न, तुम्हारे पिता से मेरा घनिष्ट सम्बन्ध था।

इस वाक्य को सुनकर सरिता की मुखाकृति पर एक कांति छा गयी। किन्तु जैसा मेरा अनुमान है, वह कान्ति इसलिये नहीं थी कि मैं उसकी माँ को जानता हूँ। बल्कि उसे किसी अंश तक विश्वास हो गया था कि शायद अब उसकी नौकरी लग जायगी।

किन्तु झरना की बीमारी की बात सुनकर इस बीच कई बार ऐसा आभास हुआ, जैसे मेरा हृदय बैठा जा रहा है। उस क्षण मैंने कई बार पीने की आवश्यकता महसूस की। किन्तु संकोचवश नहीं पी रहा था।

तभी मैंने सरिता से कहा—"अच्छा अब तुम जाओ।" नियुक्ति तो हो चुकी है, अब मैं कर ही क्या सकता हूँ? फिर भी देखूँगा क्या कर सकता हूँ।"

सरिता ने उत्तर में हाथ जोड़ते हुए कहा—"आपके मित्र की लड़की हूँ। माँ से भी आप परिचित हैं। इसके अतिरिक्त......।"

इतना कहने के पश्चात् वह रो पड़ी। बोली—"इस संसार में अब मेरा कोई नहीं है बाबू जी। इतना ध्यान रखिएगा।"

जिस समय सरिता ने 'बाबू जी' कहा था, आप विश्वास मानिए, मेरा हृदय जैसे फटा जा रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे वह मेरी ही लड़की है, किसी और की नहीं।

सरिता के जाने के पश्चात् मैंने थोड़ी सी शराब पी। और मेज की ड्रार से इन्टरव्यू की फ़ाइल हाथ में लेकर मैं कमरे से बाहर हो गया।

सड़क पर सामने जाता हुआ एक रिक्शा दिखायी दिया। तत्काल उसे आवाज़ दी—"ऐ रिक्शा !"

रिक्शा रुक गया।

मैं उस पर उछल कर जा बैठा। बोला—"कैन्ट।"

रिक्शा चला जा रहा था। उस समय बैठे-बैठे मैं सोच रहा था कि यदि पुरी साहब ने 'न' कर दिया तो? यद्यपि सरिता सुन्दर कौर से हरेक मानी में श्रेष्ठ है। सुन्दर कौर मैट्रिक है, और वह इन्टरमीडिएट है। सरिता की 'स्पीड' साठ शब्द प्रति मिनिट है, जब कि सुन्दर कौर की मात्र तीस है।

"किन्तु सिफारिश के युग में योग्यता कौन देखता है।"

इसके पश्चात् मैंने मन ही मन कहा—"फिर भी एक बार प्रयास करने में अपना क्या जाता है।"

मैं जिस समय पुरी साहब के यहाँ पहुँचा, साढ़े नौ बज रहे थे। नीचे से घंटी बजायी। थोड़ी देर पश्चात् श्रीमती पुरी छज्जे पर झाँकती दिखायी पड़ गयीं। मैंने उन्हे देखते ही तत्काल कहा—"साहब हैं?"

श्रीमती पुरी मुझे भली भाँति पहिचानती थीं। देखते ही उन्होंने कह दिया—है।" ऐसे अवसर पर दूसरा कोई होता तो वे स्पष्ट कह देतीं—"सो रहे हैं।"

मैं सीधे ऊपर चला गया। पुरी साहब चारपाई पर लेटे हुए थे। मुझे देखते ही कुछ आश्चर्य से बोले—"इस समय कैसे?"

अत्यन्त विनम्र स्वर में मैंने कहा—"सर्, एक अत्यन्त आवश्यक कार्य था। अन्यथा इस समय आपको कष्ट देने का साहस मुझमें नहीं था।"

पुरी साहब बोले—"बोलो, क्या काम है ?"

"सर् ।" मैंने संकोच के साथ कहा—"सुन्दर कौर का नियुक्ति-पत्र तो आपके आदेशानुसार मैंने टाइप कर दिया, किन्तु ।"

बीच में ही पुरी साहब बोले—"तो क्या हुआ, कल हस्ताक्षर हो जाता । इसकी कौन-सी जल्दी थी ।"

"नहीं साहब, यह बात नहीं है । मेरी एक लड़की है, मैं चाहता था.........।"

"तुम्हारी लड़की !" आश्चर्य से पूरी साहब ने कहा—"भले आदमी, जब तुम्हारी बीवी नहीं है, तो लड़की कहाँ से आ गयी ?"

इसी बीच श्रीमती पुरी भी सोफ़े पर आकर बैठ गयी थीं । वे पुरी साहब का कथन सुनकर हँस पड़ीं ।

"सर, बीवी तो है । किन्तु कहाँ रहती है, इसका ज्ञान मुझे आज तक नहीं था ।"

"तो आज कैसे हो गया ?"

"वही लड़की जिसके लिये आपसे सिफ़ारिश करने आया हूँ, आज आयी थी । उसी ने बताया कि वह अत्यन्त बीमार है और अस्पताल में पड़ी है । बचने की कोई आशा नहीं है ।"

इतने में श्रीमती पुरी प्रश्न कर बैठी—"क्या बीमारी है ?"

"टी० बी० हो गयी है ।"

"टी० बी० ?" आश्चर्य से श्रीमती पुरी ने पूछा ।

कुछ सोचते हुए पुरी साहब बोले—"और कोई बात तो नहीं है, मैंने उसके पिता को वचन दे दिया है......।"

तभी मैंने कहा—"सर आप आफ़िसर हैं, मैं क्या कह सकता हूँ ! यों दो-तीन महीने में एक जगह और होगी । उस समय सुन्दर कौर की नियुक्ति हो जायगी ।"

"खैर, जब तुम्हारी ही लड़की है, तो क्या कहूँ ! जैसा चाहो, कर लो ।" कथन के पश्चात् पुरी साहब अपनी श्रीमती की ओर उन्मुख होते हुए बोले—"रुक्मिणी ! हमारे आफ़िस सुपरिटेंडेंट की ज़िन्दगी भी एक अफ़साना है । इनकी बीवी इन्हें छोड़कर आज से अठारह बीस वर्ष पहिले चली गयी । मगर साहब, इन्होंने दूसरी शादी नहीं की और अब पता चला है कि वह अस्पताल में है ।"

श्रीमती पुरी एक ठंडी साँस लेते हुए बोली—"अच्छा !"

मुझे शीघ्रता थी। मैं वहां इससे अधिक एक मिनिट भी रुकना नहीं चाहता था। मेरा ध्यान झरना पर लगा था। मैं चाहता था कि जितनी जल्दी उसे एक बार देख लेता।

तभी मैंने पुरी साहब से कहा—"अच्छा सर आपने बड़ी कृपा की। मैं आपके एहसानों को कभी विस्मरण नहीं कर सकता। अब आप विश्राम कीजिए, मैं जा रहा हूँ।"

नमस्कार करके मैं नीचे आ गया। प्रसन्नता से मेरा हृदय गद्-गद् हो उठा था। रिक्शा नीचे खड़ा था। तत्काल मैं उस पर जा बैठा। बोला—"चलो, लाजपतनगर। जरा तेजी से चलना। पैसे जो कहोगे, दे दूँगा। अच्छा!"

मैं सोचता चला जा रहा था—"उन्नीस वर्षों बाद आज मैं झरना को देखूँगा। वह न जाने कैसी होगी? बीमारी की दशा में उसका रूप-रंग न जाने कैसा होगा?

मगर मैं उससे कहूँगा क्या? यह भी संभव है, वह मुझसे मिलने से इन्कार कर दे।

लेकिन यदि मेरे प्रति उसके हृदय के किसी कोने में स्थान न, होता, तो वह सरिता को मेरे पास भेजती ही क्यों? कुछ भी हो। उसे एक बार देख तो लूँगा। मैंने उसे कहाँ-कहाँ नहीं खोजा! उसके पिता ने तो स्पष्ट कह दिया था—"अच्छा हो, कहीं मर जाय। मैं अपने घर में उसे कदम नहीं रखने दूँगा। कलंकिनी!"

जिस समय अस्पताल पहुँचा, घड़ी में ठीक साढ़े दस बजे थे। इस बात का बोध मुझे पहिले से ही था कि रात्रि में किसी को रोगी से मिलने नहीं दिया जाता। फिर भी एक आशा लेकर गया था कि उसे बाहर से ही झाँक कर देख लूँगा। मन को शान्ति तो मिल जायगी।

रिक्शा से ज्यों ही उतरा कि रिक्शा-चालक ने कहा—"बाबू जी पैसे देते जाइये। अब मैं जाऊँगा।"

अस्पताल शहर से लगभग आठ मील के व्यवधान पर बना था। रात्रि में देर से लौटते समय सवारी का मिलना आसान नहीं था। अस्तु, मैंने रिक्शेवाले से मुड़ कर कहा—"देखो तुम घबराओ नहीं। तुम्हें नहीं मालूम है दोस्त उन्नीस वर्ष पश्चात् मैं अपनी बीवी से मिल रहा हूँ। मुझे कितनी खुशी है, तुम नहीं सोच सकते। तुम जो

कुछ कहोगे मैं दे दूँगा। मैंने कभी रिक्शेवाले का पैसा नहीं मारा। अच्छा ! मैं अभी आता हूँ।"

रिक्शा चालक मौन हो गया।

किन्तु जिस समय अस्पताल के मुख्य द्वार पर पहुँचा, चपरासी ने रोक दिया। कहा—"आप कहाँ जा रहे हैं ?"

मैंने अत्यन्त गिड़गिड़ाते स्वरों में उससे कहा—"एक रोगी को देखना है, बस अभी दो मिनट में चला जाऊँगा।

"आप तो पढ़े-लिखे हैं, यह मिलने का समय नहीं है।"

इसके पश्चात् चपरासी ने कहा—"कल चार बजे शाम को आइएगा।"

"भाई मेरी पत्नी है। तुम से क्या कहूँ। उन्नीस वर्ष बीत गये, मैंने उसे नहीं देखा। सुना है, अत्यन्त बीमार पड़ी है। जनरल वार्ड में सात नम्बर बेड है।"

चपरासी तरुण था। रेखें उठ रही थीं। जिस समय मैं पहुँचा था स्टूल पर बैठा बीड़ी पी रहा था। उसके पास कुर्सी पर एक नर्स बैठी थी, जिससे वह गप्पे लड़ा रहा था।

मेरी बातें सुन कर नर्स का हृदय द्रवित हो उठा। किन्तु पुरुष तो चट्टान होते हैं न !

चपरासी बोला—"देखिए मैं कुछ नहीं जानता। आपके लिये नौकरी से हाथ धोऊँ। ऐसा मैं नहीं कर सकता।"

मैंने बड़ी अनुनय-विनय की, किन्तु वह चपरासी टस से मस न हुआ। बल्कि उसने कहा—"आप लोगों को क्या पता अभी परसों एक चपरासी इसी काम के लिये निकाल दिया गया है।"

चपरासी के स्वर वृश्चिक की भाँति डंक मार रहे थे।

नारी करुणा की मूर्ति होती है, यह सोच कर मैंने दूसरा तीर चलाया। नर्स की ओर उन्मुख होते हुए हाथ जोड़ कर मैंने कहा—

"सिस्टर, मेरे ऊपर दया करो। एक क्षण के लिये उसे दिखा दो।"

सिस्टर कुर्सी से उठ कर खड़ी हो गयी। संकेत से उसने मुझे एक किनारे बुलाया। कहा—"पाँच रुपये इसे दे दीजिए, तब स्वयं मान जायगा।"

पाँच रुपये का एक नोट निकाल कर चुपके से मैंने सिस्टर के

हाथ में थमा दिया। तभी सिस्टर ने कहा—"जाने दो गोविन्द बड़े दुःखी हैं बेचारे।"

"अच्छा ठीक है जाइए। लेकिन एक बात का ध्यान रखिएगा, पाँच मिनिट से अधिक समय न लगे।"

"नहीं, मैं इससे पहिले ही लौट आऊँगा। आप विश्वास मानिए।

जनरल वार्ड में एक खामोशी छायी हुई थी। लगभग अधिकांश रोगी निद्रा स्त थे। पाँव डरते-डरते सात नम्बर बेड की की ओर चढ़ रहे थे।

इतने में एक स्त्री बड़ी जोर से चिल्ला उठी—"हाय दइया! मैं मर जाऊँगी।"

मैं उस स्त्री की दर्दनाक आवाज़ सुन कर चौंक उठा। इधर-उधर देखा, रोगियों के सिवा वहाँ कोई न था।

दीवारों पर लिखे बेड नंबर को पढ़ता हुआ, मैं सात नंबर की ओर बढ़ रहा था! यदि मैं पूर्व के जीने की ओर से प्रवेश करता तो निश्चित था कि अब तक झरना के पास पहुँच गया होता, किन्तु मैं पश्चिम वाले जीने से ऊपर चढ़ा था, जिससे उल्टे जा रहा था।

अन्ततोगत्वा सात नम्बर बेड आ गया। सात नंबर बेड के रोगी को ऊपर से नीचे तक कई बार देखा तो मुझे अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। मैंने सोचा, शायद यह सात नंबर नहीं है। शीघ्र ही दीवाल पर दृष्टि डाली। वहाँ स्पष्ट हिन्दी-अंग्रेजी में सात लिखा हुआ था।

फिर एक बार मन में आया, सरिता ने कोई और नंबर तो नहीं बताया था? तभी स्मरण आया कि नहीं, उसने बेड नंबर सात ही कहा था।

मैं रोगी के सन्निकट पहुँचा। वह झरना ही थी। सूख कर काँटा हो गयी थी। कपोलों की हड्डियाँ उभर आयी थीं, आँखें गढ्ढों में धँस गयी थीं। किन्तु थी वह झरना ही।

उसे देखते ही मैं अपने को सँभाल नहीं सका। झुक कर उसे प्यार करने ही जा रहा था कि तभी किसी ने पीछे से कहा—"कौन हैं जी?"

स्वर सुनते ही मैं घबरा गया।

तभी एक नर्स मेरे निकट आकर बोली—"तुम कौन हो? यहाँ

कैसे घुस आये ?

मैं उसे क्या उत्तर देता ? मैंने तत्काल हाथ जोड़ लिये।

वह बोली—"आओ मेरे साथ आफ़िस में। तुम इतनी रात को यहाँ कैसे घुस आये ?"

जिस समय आफ़िस में पहुँचा, वहाँ एक नर्स और बैठी हुई थी। मैंने अत्यंत अनुनय-विनय के साथ उन्हें अपनी कहानी सुनायी, तब पन्द्रह मिनिट पश्चात् कहीं वहाँ से मुझे मुक्ति मिली।

दूसरे दिन कार्यालय से तीन बजे अवकाश लेकर मैं चला आया था। चौराहे पर आकर मैंने अस्पताल के लिये रिक्शा तय किया।

जिस समय अस्पताल पहुँचा, पौने चार बज रहे थे। मिलाई में अभी पन्द्रह मिनिट शेष थे। किन्तु उस समय मुझे बार-बार सरिता का स्मरण हो आता था। यदि वह झरना के समीप होगी, तो हम दोनों संकोच वश खुल कर कैसे बातें कर सकेंगे ? एक बार मन में आया, काश वह आज देर से आती।

मुझे झरना से मिलने की उतावली थी। घड़ी देखी, दस मिनट शेष थे। मैं ज़ीने से सीधे ऊपर चढ़ गया। जनरल वार्ड के सम्मुख पहुँच कर मैंने देखा, दो-चार व्यक्ति मिलाई के लिये वहाँ पहुँच चुके हैं।

मेरे पाँवों में शक्ति आ गयी। मैं सात नंबर बेड के समीप धड़-धड़ाते हुए जा पहुंचा। झरना शायद सरिता की प्रतीक्षा कर रही थी। किन्तु मुझे देखते ही उसकी आँखों में एक चमक आ गयी।

मैंने देखा, वह पीली पड़ गयी है। दो क्षण हम एक दूसरे को अवाक् देखते रह गये। तभी मैंने भावना में आकर उसे प्यार कर लिया।

झरना के चेहरे पर उस समय एक कान्ति आ गयी। जैसे कोई पौधा सूख रहा हो, उसे जीवन मिल जाय।

मुसकराते हुए झरना ने मन्द स्वर में कहा—"बाबू, तुम आ गये। मुझे विश्वास कम था।"

इसके पश्चात् ही मैंने देखा, उसकी आँखों की कोर से आँसू छलक पड़े हैं। मुझसे न रहा गया। मैंने जेब से रूमाल निकाल कर उन्हें पोंछ दिया। किन्तु उस क्षण मेरी भी आँखें भर आयीं।

झरना मुझे एकटक देख रही थी। किन्तु मैं उसे देखने में संकोच

का अनुभव कर रहा था। अपराधी वह नहीं जैसे मैं स्वयं था।

वेड के समीप ही एक छोटी सी वेंच पड़ी थी। जिस पर दो व्यक्ति मुश्किल से वैठ सकते थे। झरना ने उसकी ओर संकेत करते हुए कहा—वैठ जाओ।

इसी वीच झरना उठकर वैठ गयी। मैं अभी तक खड़ा था।

झरना बोली—"इधर आओ, मेरे पास।"

इसके पश्चात् आँचल को सँभालती हुई पुनः वह बोली—"डरो मत, मैं वही झरना हूँ। मुसीबतों ने मुझे इस परिस्थिति में पहुँचा दिया है।"

मैं अभी तक वेंच पर वैठा हुआ था। उसके शब्दों को सुन कर मेरी आंखें पुनः भर आयी थी।

तभी झरना पुनः बोल उठी—"किन्तु मेरा विश्वास मत करना, अच्छा! मैंने तुम्हारे साथ विश्वाघात किया है। सुन रहे हो न? लेकिन क्या तुम मेरे पास नहीं बैठोगे? आओ न!"

भरी-भरी आँखें लिये मैं झरना के पैताने जाकर वैठ गया। उसने मेरे चेहरे को देखते हुए कहा–"तुम रो क्यों रहे हो?"

कथन के पश्चात् वह मेरे वालों को सहलाने लगी। वोली—"मेरे प्राण, तुम मेरा विश्वास नहीं करोगे मैं जानती हूँ। किन्तु तुम्हें एक वार देखने के लिये ही मैं अभी तक जीवित थी। पहले मैं तुम्हें समझ नहीं पायी थी यह सच है। एक दिन तुमने कहा भी था कि जव समझ पाओगी तो वहुत पछताओगी।"

इतना कह कर झरना मेरी गोद में लेट गयी। मैं संकोच में डूवा जा रहा था। लोग देखेंगे तो क्या कहेंगे!"

यद्यपि वास्तविकता तो यह थी कि एक पागल की भाँति मैं भी उसे प्यार करना चाहता था।

किन्तु सुकुमार मनोभावों पर पत्थर रख कर मैं मौन हो गया।

झरना की सूखी केश-राशि को सहलाते हुए मैंने कहा—मैं भी तुम्हें एक वार देखना चाहता था। न जाने किन-किन गलियों में तुम्हें खोजता हुआ भटकता फिरा, किन्तु तुम्हें न पा सका। अन्त में निराश होकर वैठ गया।

अच्छा वावू, क्या अव भी तुम मुझे प्यार करते हो?"

झरना के कथन में आश्चर्य था, उसकी आँखों में एक चमक

थी।

"झरना, क्या यह कहने की बात नहीं है ?"

झरना मेरे कथन को सुन कर हर्ष-विह्वल हो उठी। वह उठ कर बैठ गयी। बोली—"मुझे अपने घर ले चलोगे ? आज रात भर तुमसे बातें करना चाहती हूँ।" वह धीरे-धीरे बोल कर कठिनाई से बात पूरी कर पाती थी। मैं इस विचार में पड़ जाता था कि ऐसे पर मैं क्या कहूँ ? उसने मुझे मौन देख कर पुनः कहा—"बोलते क्यों नहीं ? मुझे नहीं ले चलोगे ?

इस बार उसने कुछ झुँझला कर रुखे स्वर में कहा—"मत ले चलो।"

इतना कह कर तनिक पीछे खिसक गयी। बोली—"प्रातः-काल सुन लेना···।

मेरी आंखें भर आयीं। पर मैं मौन था।

तभी वह पुनः बोली—"आखिर तुम रुष्ट हो गये न ? ऐसा न करना ! मैं सोचती हूँ सुबह तक···।"

कथन के पश्चात् उसने दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—"तो आखिरी रात अपनी गोद में एक बार लिटा लो। मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ। मैं अब भी तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।"

मैं अपने आँसू न रोक सका। झरना कहती गयी—यहाँ, थोड़े से समय में तुमसे क्या-क्या कहूँ ! इस क्षण तो बस यही इच्छा है, तुम मुझे अपनी गोद में लिटा लो।

इतना कह कर झरना ने अपना शीश मेरी गोद में रख दिया।

इसी बीच उसे जोर की खाँसी आयी। बलग़म ! बलग़म के साथ खून !

उसने बड़ी चेष्टा की थी कि बलग़म मेरे वस्त्रों पर न पड़े, किन्तु उसके उठते-उठते सम्पूर्ण बलग़म और रुधिर मेरे बुशशर्ट और पैंट पर आ गिरा था।

थोड़ी देर पश्चात् उसने कहा—"तुम्हारे कपड़े खराब हो गये बाबू।" इतना कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू निकल आये। बोली—"अभी सरिता आती होगी, मैं उससे साफ़ करवा दूँगी, बुरा मत मानना। आज न सही, लेकिन कभी तो मैं तुम्हारी थी, यही समझ कर क्षमा कर देना।"

और झरना आँचल से बलग़म पोंछने लगी तो इसके लिए मैंने उसे मना कर दिया।

जब से मैंने उसकी तृष्णा विकल वाणी के मोह-लालसा भरी बातें सुनीं मैं सदा यही सोचता रहा, ऐसी दशा में इसका यह आह्वान मैं भला कैसे परिपूर्ण कर सकूँगा।

मेरी आँखें भर आयी थीं। बोला—"तुम चिन्ता मत करो।" और मैंने रूमाल से बलग़म को पोंछ दिया।

झरना बोली—"बाबू! तुम डाक्टर से कहो न, मुझे छुट्टी दे दे। मैं अब यहाँ नहीं रहूंगी। क्या तुम्हें जान नहीं पड़ता कि मैं बिल्कुल ठीक हो गयी हूँ।"

उत्तर में मैं क्या कहता? तभी मौन देख कर वह प्यार भरी ढिठाई से उसने कह दिया। मैं आज तुम्हें नहीं जाने दूँगी या तुम्हारे साथ चलूँगी।"

मेरा हृदय भर आया था; पर मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि मैं क्या करूँ। तभी फिर झरना ने कहा—बाबू! तुम सोच क्या रहे हो? सभी अपनी स्त्रियों को ले जाते हैं।

क्या अब मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ?

अब मैं अपने आँसू रोक न सका।

झरना की बातें सुन कर मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था, या तो वह मुझे पाकर अत्यंत आह्लादित है कि अपने को सम्हाल नहीं पा रही है, या फिर जो कुछ कह रही है, सब उन्माद की देन है।

मैंने उसे धीरज देते हुए कहा—"तुम घबराओ नहीं, शीघ्र स्वस्थ हो जाअगी।"

"हाँ, मैं स्वस्थ तो हूँ। यह तुम कह रहे हो।" इसके पश्चात् उसने कहा—"स्पष्ट क्यों नहीं कहते कि नहीं ले चलना चाहते।" इतना कहते-कहते वह संज्ञा-हीन-सी होकर लुढ़क पड़ी। उसकी पलकें बन्द हो गयीं। पहले तो मैं घबरा गया। लेकिन तत्काल उसने आंखें खोल दीं। मेरा अन्तर्मन उद्वेलित हो उठा था। अतः भरे कंठ से मैंने कहा—"तुम आज भी मुझे समझने में भूल कर रही हो अगर मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति•••!"

इतना कहते-कहते मेरा कंठ अवरुद्ध हो गया। नेत्र डब-डबा आये। रूमाल निकाल कर मैं आंखें पोंछने लगा।

इतने में ज्यों ही शीश उठाया, देखता क्या हूँ, सरिता झरना के पीछे खड़ी है। मुझे अत्यंत संकोच हुआ। मैं उसकी ओर ठीक से देख नहीं पा रहा था क्योंकि नाटक के इस दृश्य को संभवतः उसने खड़े-खड़े देख लिया था।

वह हतप्रभ-सी हम लोगों को देख रही थी। तभी झरना की दृष्टि सरिता पर जा पड़ी। वह भोजन लेकर आयी थी।

उसको देखते ही झरना ने कहा—"बेटी! भोजन मैं यहाँ नहीं करूँगी। हम लोग घर चल कर आज साथ-साथ खाना खायेंगे।"

सरिता भौचक्की खड़ी थी। तभी झरना बोली—"देखो, तुम एक काम करो! जाओ डाक्टर से कहो, मेरी माँ जाना चाहती है। अब वे ठीक हो गयी है। जल्दी करो बेटी, वरना मुझे भय है कहीं देर न हो जाय।"

सरिता ने ज़िद नहीं की, वह चली गयी।

तभी झरना बोली—"बाबू! क्या मैं इतनी पतित हो गयी हूँ कि एक रात के लिये तुम मुझे शरण नहीं दे सकते? मैं विश्वास दिलाती हूँ, प्रातः काल होते ही चली जाऊँगी। फिर उसने इधर-उधर देखते हुए कह दिया—"संकोच मत करो। कोई देखेगा नहीं।"

इस कथन के पश्चात् उसने मेरे कंधे को झकझोरते हुए कहा—"तुम बोलते क्यों नहीं? जाओ डाक्टर से कहो, मुझे छुट्टी दे दे। मैं तुमसे रात भर बातें करना चाहती हूँ, जिसे तुमने देखा नहीं।" और जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

इतने में ही अस्पताल की घंटी बज उठी। झरना उसका स्वर सुनते ही घबरा गयी। उसकी आँखों में आँसू भर आये। चेहरे पर एक उदासी भरी कालिमा सी छा गयी। बोली—"मैं जानती थी, तुम मुझे नहीं ले चलोगे। मैंने तुम्हारे साथ विश्वाघात किया है न?"

"नहीं झरना, ऐसी कोई बात नहीं है। पहले तुम स्वस्थ तो हो जाओ, मैं तुम्हें अवश्य घर ले चलूँगा। तुम विश्वास मानो। इस समय मैं तुम्हारी कामना टाल नहीं सकता। लेकिन···।"

"अरे जाओ, एक उपेक्षा भाव से झरना ने कहा—"तुम क्या ले चलोगे? मगर सुबह सुन लेना···। फिर सिसकियां भर-भर कर वह कहती गयी—"बाबू! तुम जीवन के अन्तिम क्षण में मेरी एक सुकुमार भावना को पावों से रौंद रहे हो!

इतने में घंटी बजाने वाली ने मेरे समीप आकर कहा—"बाबू जी, जाइए, मिलाई का समय समाप्त हो गया।"

मैं उठ कर खड़ा हो गया तो झरना ने मेरी बुशशर्ट पकड़ ली। कहा—"नहीं, मैं तुम्हें भी नहीं जाने दूँगी।"

पर इसी बीच सरिता को आते देख कर झरना ने मेरी बुशशर्ट छोड़ दी।

सरिता आते ही बोली—"मां डाक्टर ने कहा है, आज तो कुछ नहीं हो सकता। किन्तु मरीज़ को यदि ले जाना है, तो उसके अभिभावक से लिखा लाओ कि अपनी 'रिस्क' पर वह ले जा रहा है।"

"तो तुमने क्यों नहीं लिख दिया?" आवेश का निरोध करती-करती झरना ने सरिता से कहा—"मैं अब यहाँ एक मिनट भी नहीं रहना चाहती। मैं आज ही घर लौट जाना चाहती हूँ।"

माँ के इस दुराग्रह को देखकर सरिता रुँआसी हो उठी। बोली—"लेकिन लिख कैसे देती माँ, जब उन्होंने कल के लिये कहा है।"

"तुम मूर्ख हो, जब मरीज नहीं रहना चाहता, तो क्या डाक्टर उसे बाँध कर रखेगा? देखती हूँ, मुझे कौन बांध कर रखता है।" झरना का माथा गरम हो उठा था। तत्काल मैंने उससे कहा—" झरना, तुम इतनी जिद क्यों कर रही हो? रात भर की ही तो बात है।"

"हां-हां, रात भर की बात है, यह मैं भी जानती हूँ। आपको भी एक बहाना मिल गया न? हाय आपकी समझ में यह बात नहीं आ रही कि यह मेरी अन्तिम रात है:"

इतना कहते-कहते झरना फिर रो पड़ी। बिस्तर पर लेट गयी।

मेरे मस्तिष्क में उस क्षण एक ही बात बार-बार आ रही थी कि झरना का मस्तिष्क कुछ विकृत हो उठा है। ऐसी स्थिति में इसे घर ले जाना उचित नहीं है। मैं चुपके से वहाँ से खिसक आया।

तभी झरना ने मुझे देख लिया। वह चारपाई से उठती हुई बोली—"आप मुझे छोड़ कर नहीं जा सकते!"

तत्काल मैंने सिस्टर से कहा—"इनका मस्तिष्क कुछ विकृत हो गया है आप इन्हें सँभालिए।"

इतने में झरना मेरे निकट आ गयी, बोली—"जीवन के अन्तिम

क्षण में मैंने आप से एक भीख माँगी, उसे भी आपने ठुकरा दिया। मगर मैं आसानी से आपको नहीं जाने दूँगी। आप मुझे भी साथ ले चलिए।"

सिस्टर ने झरना से कहा—"आप अपने बिस्तर पर चलिए। मैं इन्हें कतई नहीं जाने दूँगी।

इसके पश्चात् उसने मेरी ओर संकेत करते हुए कहा—"मिस्टर आप जा नहीं सकते। यहीं बैठिए। अच्छा।"

पहले वह मुझे छोड़ कर चली गयी, उस क्षण मैं हृदय में हाहाकार लिये चला आया।

झरना अपने बिस्तर की ओर जा रही थी। इसी समय मैं चुपके से खिसक आया। किन्तु अभी चार पांच सीढ़ी ही उतरा था झरना के चीखने के स्वर मेरे कानों में गूँज उठे। वह सिस्टर से कह रही थी—"मुझे जाने दो। यह मेरी अन्तिम रात है। मुझे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं।"

चौदह

उस दिन रात्रि के ग्यारह बज गये, फिर भी मुझे नींद नहीं आयीं। कभी खिड़की से बाहर झाँकता और कभी कमरे में ही टहलने लगता। एक अजीब-सी मनः स्थिति उस दिन मेरी थी!

अस्पताल से लौटने के पश्चात् मैंने काफी मात्रा में मदिरा भी ले ली थी, ताकि सब कुछ भूलकर सो जाऊँ, फिर भी नींद नहीं आ रही थी। बार-बार झरना का स्मरण हो आता। हड्डियाँ कहीं-कहीं उभर आयी थीं और आँखों के नीचे गड्ढे पड़ रहे थे। कपोलों की हड्डियाँ भी उभर आयी थीं! हाथ-पांव भी पतले हो गये थे। मुखाकृति पर वह श्री तो नहीं थी, किन्तु जब मुस्कराती, तो यही प्रतीत होता था कि है तो यह झरना ही।

इन सब के बावजूद जो बात रह-रह कर मेरे मन को कुरेद रही था, वह मेरी निर्दयता थी। बार-बार मैं यही सोचने लगा कि मानवता की देवी मुझे कभी क्षमा न करेगी कि झरना के इतने अनुनय विनय के पश्चात् भी मैं उसे साथ क्यों नहीं लाया?

उसकी रोती हुई आँखें जैसे मेरे सम्मुख आ खड़ी हुईं। मैंने यह भी सोचा—"संभव है, उसका कथन सत्य हो जाय! प्रातः काल होते होते उसकी साँसें टूट जाँय! उसकी यह अन्तिम अभिलाषा थी कि वह रात भर मेरे साथ रहना चाहती थी। किन्तु मैंने उसे स्वीकार नहीं किया? जबकि उसे देखने के लिये, उस दिन रात्रि में अस्पताल तक भागा गया था। वह क्या सोचती होगी? यदि सचमुच वह मर गयी, तो उसकी आत्मा को कभी शांति नहीं मिलेगी।"

वह मुझसे कुछ कहना चाहती थी। शायद वह दर्द की उस कहानी को सुनानी चाहती थी, जो अब तक अनकही रह गयी है, जिसका कथानक चित्र की भाँति आँसुओं से घुल कर निखर चुका है!

किन्तु उस क्षण मुझे हो क्या गया था? मैं उसे संग क्यों नहीं लाया? यद्यपि सरिता ने आकर कहा था कि डाक्टर ने कहा है—कल ले जाना!"

लेकिन मैंने उसे लाने के लिये क्या किया? संभव है, मेरे कहने से डाक्टर ले आने की अनुमति दे देता।

इसी समय किसी ने द्वार की कुंडी खुटखुटायी तो एकाएक मैं घबरा उठा। मुझे कुछ ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे झरना की मृत्यु हो गयी हो और सरिता संदेश देने आयी है। क्योंकि अब उसका भी कौन है? वह किससे माँ के दाह-संस्कार की बात कहे? वह भी तो अभी बच्ची ठहरी!

मैंने लपक कर द्वार खोला। किन्तु मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। झरना द्वार के निकट थकी-सी बैठी थी।

"झरना! मैंने कहा।"

अत्यन्त क्षीण स्वर में उसने कहा—"हाँ बाबू तुम नहीं लाये तो मैं आ गयी। मगर तुम चुप क्यों हो रहे! हाय अपने घर क्या मैं आ भी नहीं सकती थी। क्या करूँ? तुम्हें देखने के बाद मैं बेशर्म बन गयी, अगर मुझे अपना मान-सम्मान प्यारा होता तो मैं कदापि न आती बाबू!

जैसे वर्षा के दिन हों और एकाएक कौंधा लपक गया हो। अगर यह धरती इस समय फट जाती और झरना के साथ मैं भी उसमें समा जाता तो मैं कृतार्थ हो जाता। मगर मैंने अपनी प्राणों से

भी प्यारी पत्नी झरना की अवमानना की, फिर भी मैं जीवित हूँ।

'मगर तुम जो कुछ भी कहो, अब तो मैं आ गयी ।

इसके पश्चात् कुछ जोर से साँस लेते हुए झरना ने कहा—"भले ही तुम मुझे मार कर पुनः घर से निकाल दो।" अब उसकी यह दयनीय स्थिति मैं कैसे सहूँ ? उसकी इन अश्रुगर्भित बातों का मेरे पास क्या उत्तर है ?

झरना की ये बातें सुनकर मेरे नेत्रों में बार-बार आँसू आ जाते हैं। लेकिन आँसू बहाने से भी अब होता क्या है ? विवश होकर पूछा। मैंने अवरुद्ध कंठ से उसका हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा— "चलो, अन्दर चलो।"

"बाबू ! हृदय से कह रहे हो न ?" झरना ने कक्ष के भीतर प्रवेश करते हुए पूछा।

मैंने उसे कोई उत्तर न देकर पलँग पर ले जाकर लिटा दिया। तभी उसने कहा—"मेरे पास पैसे नहीं हैं बाबू। रिक्शा वाला खड़ा होगा। उसने मेरी बड़ी मदद की है।

"खैर, तुम चिन्ता न करो। लेटी रहो। मैं पैसे देकर अभी आता हूँ।"

जिस समय मैं लौटकर आया, देखा, झरना मेरी राह देख रही है। उसने कहा—"बाबू मेरे पास ज़रा बैठ जाओ, ! आज मैं तुम्हें जी भर का प्यार करना चाहती हूँ। तुम्हें नहीं मालूम, अस्पताल से मैं चुपके से भाग आयी हूँ। किसी ने देख नहीं पाया कोई जानता भी नहीं कि मैं कैसे निकल आयी।

मैं उसके निकट पलँग पर जाकर बैठ गया।

इसी समय झरना ने मेरा दायाँ कर पकड़ कर अपने वक्ष पर रख लिया। हौले-हौले ऊपर उसे सहलाती हुई बोली – "बाबू क्षमा कर दोगे न ? उन्नीस वर्ष बीत गये। मैंने कैसी-कैसी मुसीबतें उठायी क्या बताऊँ ? दूसरी कोई होती, तो आत्महत्या कर लेती। किन्तु मैं मर भी नहीं सकती थी।" चुपचाप सुनता गया, कोई उत्तर नहीं दिया मैंने। उसने पूछा, मेरी बात सुन रहे हो न ?'

"हाँ-हाँ, कहो।" मैंने कह दिया।

"जानते हो क्यों ? इसी सरिता के कारण। बाबू, तुम कहीं यह मत समझ लेना कि यह प्रकाश की लड़की है। वास्तव में यह

तुम्हारी ही है। तुम विश्वास नहीं करोगे, यह मैं जानती हूँ, क्योंकि दूध का जला हुआ मट्ठे को भी फूँक-फूँक कर पीता है। मगर सरिता तुम्हारी ही लड़की है।"

मैं सोचता हूँ, मैं चुप ही बना रहूँ, यही उत्तम होगा। क्योंकि उत्तर देने से ही बात और बढ़ जाती है यों भी वह कम बातें नहीं कर रही। इसका उसकी अस्वस्थता पर बुरा प्रभाव भी पड़ सकता है।

इसी क्षण उसने मेरे हाथ को अपने निकट खींचते हुए कहा—"बाबू! आओ तुम भी लेट जाओ! यह वही पलँग है न, जिस पर हम तुम साथ-साथ सोया करते थे। पर मेरे साथ लेटने में तुम घबरा तो नहीं रहे हो?"

"नहीं झरना, घबराने की कोई बात नहीं है।" एक दीर्घ निश्वास लेते हुए मैंने कहा।

"तो फिर क्यों नहीं लेटते?" इतना कह कर झरना ने मुझे कुछ जोर से खींच लिया तो मैं उसके वक्ष पर गिरते-गिरते बचा। किन्तु शीघ्र ही यह सोच कर कि वह अस्वस्थ है, मैं उसके पार्श्व में लेट गया।

अब झरना मेरे केशों को सहलाते हुए बोली—"बाबू, हो सकता है फिर मिलना न हो। इसलिए आज मुझे जी भर कर प्यार कर लो।"

मैंने अनुभव किया कि झरना का शरीर काँप रहा है। मैंने उसे धैर्य देते हुए कहा—"तुम घबराओ नहीं, तुम स्वस्थ हो जाओगी। जितना भी खर्च होगा, मैं करूँगा।"

"सच?"

झरना के इस प्रश्न में एक आश्चर्य था किन्तु उल्लास भी कम न था!

तभी उसने कहा—"नहीं बाबू, अब खर्च मत करना! मैं बचूँगी नहीं।"

"ऐसा न कहो झरना! तुम निश्चित रूप से स्वस्थ हो जाओगी।"

"बाबू, तुम मेरी बात मिथ्या क्यों समझ रहे हो?" इसके पश्चात् पलँग के दाईं ओर सरकती हुई वह बोली—तुम भी आराम

से लेट जाओ तो एक बात बताऊँ।

उस दिन उन्नीस वर्ष पश्चात् झरना के संग लेटा हुआ था। झरना मेरी ग्रीवा में हाथ डाल कर बोली—"बाबू, जीवन की संपूर्ण तपन शीतल हो गयी। हालांकि तुमने मुझे बहुत गलत समझा, लेकिन मैंने तुम्हारे प्यार में कभी कटौती नहीं की। आज भी मैं तुम्हे उसी रूप में देख रही हूँ। तुम मेरे स्वामी हो और मैं तुम्हारी पत्नी। यह देखो।

इतना कहकर उसने अपना हाथ दिखाया। बोली—"देखो, अभी तक चैले की मार का यह निशान बना हुआ है। है न? अपना ही समझकर तो तुमने मुझे मारा था।

"तुम भूल गये होगे, किन्तु मैं तुम्हें न भुला सकी। प्रकाश से प्रेम करने का अर्थ तुमने गलत समझा। बाबू! मैंने तो तुमसे पहले भी कहा था, इसमें अन्तर क्या पड़ता है किन्तु वह कितना कमीना निकला! मुझे उसकी शक्ल से घृणा है। जानते हो, उसने मेरे साथ क्या व्यवहार किया था? मैं उसकी प्रेयसी थी, किन्तु वह इतना नीच था कि मुझे मिनिस्टर की सेवा में भेज रहा था कमीना। मैंने उससे कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आती?"

मुस्कराते हुए उसने उत्तर में कहा—शर्म! अरे इसमें शर्म की क्या बात है? यह तो संसार है झरना! जीने के लिए आदमी को सब कुछ करना पड़ता है।"

"कुछ भी हो, किन्तु मुझे ऐसा जीवन नहीं चाहिए।" मैंने उत्तर में उससे कह दिया था।

"तो ठीक है, आप कल से स्कूल मत आइए। सौ रुपये हराम में नहीं आते।" क्रोधवश में प्रकाश ने मुझसे तत्काल कह दिया था।

क्षण भर बाद झरना फिर बोली—"बाबू तुम उस समय की मेरी पीड़ा को समझ नहीं सकोगे! सरिता गर्भ में थी। मेरी आँखों के सम्मुख अंधकार छा गया। मैंने सोचा—तुम्हारे पास अब मैं कौन सा मुँह लेकर जाऊँ?

"नहीं झरना, तुमने भूल की। तब भी मैं तुम्हें स्वीकार कर लेता।" मैंने कहा।

"बाबू! तुम धन्य हो। किन्तु मैं यहाँ न आकर मैके चली गयी। पिता जी ने भी शरण न दी। रात्रि में उन्होंने मुझसे कहा—'अब

तुम मेरी बेटी नहीं हो। निकल जाओ मेरे घर से।'

मैं चुपचाप वहाँ से चल पड़ी! माँ रोकती रही किन्तु मैं न रुकी। इसके बाद मैंने कितनी मुसीबतें उठायी हैं, स्मरण करती हूं, तो कलेजा फटने लगता है। क्या-क्या मैंने नहीं सहा? किन्तु एक बात मैंने अनुभव की कि इस समाज में जीने के लिये नारी को लाइसेंस चाहिए। स्त्री में कितनी ही साहस क्यों न हो, बिना लाइसेंस के वह जी नहीं पायेगी। बाबू, तुम से क्या कहूँ, उन्नीस वर्ष में मैंने चालीस मकान बदले हैं। जब मैं अकेली थी, कोई बात नहीं था। किन्तु सरिता के बड़ी होते ही मेरा जीवन समाज की आँखों में खटकने लगा था। मैंने सिलाई का स्कूल खोला। लोगों ने ताला तोड़ कर मेरी मशीनें चोरी करवा दीं। लोग समझते थे, मैं लड़की सप्लाई करती हूं। बाबू यह आपका समाज है। मैं जानती हूँ, यदि मेरे पास भी लाइसेंस होता, तो किसी में ऐसा करने का साहस न होता।"

तनिक रुककर झरना बोली—"बाबू प्यास लगी है!"

झरना के शब्दों में एक याचना थी।

"रुको मैं लाता हूँ।" मैंने कहा।

"नहीं बाबू, तुम लेटे रहो, मैं पी लूँगी। यह वही घर तो है न, जहाँ मैं रहती थी। जो कभी मेरा भी था। वे दिन सोने के थे बाबू! मैं जन्मान्तर में भी उन्हें न भूल सकूँगी।

"आज भी यह घर तुम्हारा है झरना! तुम ऐसा क्यों सोचती हो।" कथन के साथ पानी लेने चला गया।

मेरा मन झरना की बातें सुनकर अत्यन्त दुखी हो उठा था। मुझे इस समय समाज पर तरस तो आ रहा था। पर मैं सोचने लगता कि इस व्यथा कथा का मूल कारण मैं भी तो हूँ। अगर मैं जी तोड़ परिश्रम करके झरना के सारे खर्च निर्वाह करता रहता, तो ऐसा कुछ न होता। मेरी तो यह धारणा बन गयी है कि प्रेम कलह का तो नाम भर बदनाम है। मूल कारण आगे के जीवन का आर्थिक संघर्ष है।

पानी पीने के पश्चात् झरना बोली—"बाबू तुमने खाना खा लिया है न?"

"हाँ।" मैंने उत्तर में कह दिया।

किन्त उसी समय मुझे स्मरण आया कि झरना ने भी कुछ खाया

है, या नहीं ! तभी मैंने उससे प्रश्न किया—"और तुमने ?"

"मैंने भी खा लिया है, सरिता ले गयी थी न ?"

मैं भीतर से वहुत दुःखी था। झरना की दृष्टि बचा कर मैं स्टोर रूम में चला गया। थोड़ी-सी पीने के पश्चात् मैं पुनः आकर पलंग पर बैठ गया। तभी झरना बोली—"बाबू ! एक बात और पूछना चाहती हूँ। सच बताना।"

मैं उसका मतलब कुछ-कुछ भाँप गया था।

झरना बोली—"बाबू सुना है तुम शराब भी पीने लगे हो ?"

"हाँ झरना, क्या करता ? यदि नारी को जीने के लिये एक लाइसेंस चाहिए, तो पुरुष को भी एक जीवन साथी। तुम्हारे चले जाने के बाद मेरा इस संसार में कोई नहीं था, आज भी नहीं है। ऐसी दशा में यह मदिरा ही मेरी संगिनी थी।

"किन्तु क्या मेरे कहने से तुम इसे छोड़ नहीं सकते ?"

"कोशिश करूँगा, पर वचन नहीं दूँगा झरना।"

"नहीं बाबू, अगर दे सको, तो वचन दो। वरना······। तुम मुझे कितना प्यार करते थे। आज क्या मेरी इतनी सी बात नहीं मानोगे ?"

एक निश्वास लेते हुए मैंने कहा—"कुछ कह नहीं सकता !"

"नहीं बाबू, कह कर झरना मेरे वक्ष से लिपट गयी। बोली मैं तो बचूँगी नहीं, किन्तु सरिता के लिए भीख माँग रही हूँ। वह तुम्हारी ही लड़की है।"

झरना यदि मुझ पर विश्वास कर सको तो चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है।

"बाबू अब रात थोड़ी रह गयी है। एक बार जी भर कर प्यार कर लो न ?" इसके पश्चात् झरना मेरी ग्रीवा में बाँह डालकर मुझ से लिपट गयी। कोई आध घंटे पश्चात् वह बोली—"बाबू बड़ी प्यास लगी है। एक बार और पानी पिला दो। शायद अब मैं नहीं बचूँगी।"

झरना ने दो घूँट पानी पीने के बाद गिलास मुझे थमा दिया। बोली—"बस !"

और इसके पश्चात् वह मेरी गोद में शीश रख कर लुढ़क गयी।

मैंने पुकारा झरना ! झरना !!

झरना की आँखें मुँद चुकी थीं। फिर भी उसने क्षीण स्वर कहा—"बस बाबू ! मैं चली।

आज सोचता हूँ, झरना शायद एक-दो दिन और जीती, किन्तु मुझसे भी भूल हो गयी।